ॐ

श्री अमोलकऋषिजी म. स्मारक ग्रन्थमाला पुष्प संख्या ४६

अमोल-सूक्ति-रत्नाकर

[प्रथम—भाग]

संयोजकः—

स्वर्गीय, जैनाचार्य, बालब्रह्मचारी, जैनधर्म दिवाकर, शास्त्रोद्धारक, महर्षि श्री १००८ श्री अमोलकऋषिजी महाराज साहब के सुशिष्य —

पं. मुनिश्री कल्याणऋषिजी महाराज
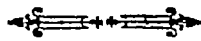
वीराब्द २४८१ अमोलाब्द १६

अर्धमूल्य दो रुपया

विक्रम संवत २०१२ जून १६५५

सादर समर्पण

परम पूजनीय, वंदनीय, ऋषिराज, पंडित रत्न मुनि

श्री १००८ श्री। आनंद-ऋषिजी महाराज साहब

के कर कमलों में !

मुनि-पुंगव !

आप श्री की मुझ पर अनन्य कृपा-दृष्टि और सहृदयता पूर्ण वात्सल्य भावनाएँ रही हैं। आपने परम पुनीत भागवती दीक्षा-साधना में मुझे सहायता पहुँचा करके एवं अन्य अनेक विध उपकार करके मुझे कृतकृत्य किया है। आपके इन्हीं सद्गुणों से अनुगृहीत होकर मैं आज आपके गुण-गौरवान्वित हाथो मे यह अपनी सामान्य कृति श्रद्धा पूर्वक समर्पित करता हूँ, अतः कृपया इसे सहृदयता-पूर्वक स्वीकार करके मुझे उपकृत करें।

संवत् २०१२
जून १९५५

विनीतः—
चरण कमल-चंचरीक
कल्याण ऋषि

प्रकाशक का वक्तव्य

सुज्ञ वाचक वृन्द !

बाल-ब्रह्मचारी पंडित रत्न मुनि श्री १००८ श्री कल्याण ऋषिजी महाराज द्वारा संयोजित और संकलित "अमोल-सूक्ति-रत्नाकर" नामक संस्कृत-साहित्य का बहु मूल्य सार आज आपके गुण-ग्राहक हाथों मे प्रदान करते हुए हृदय आनंद का अनुभव कर रहा हैं।

इससे आपको जो जो श्रेष्ठ और ग्राह्य विदित हो; वह सब संयोजक ऋषि जी की ही कृपा समझें एवं जो कुछ त्रुटि पूर्ण प्रतीत हो ; अथवा विपरीत ज्ञात हो, वह सब हमारी जबाबदारी समझें।

पं० मुनिश्री को सूक्ति-संकलन के इस विशाल कार्य में सहयोग देने वाले और प्रस्तुत ग्रंथ के संशोधन, मुद्रण आदि मे मनोयोग से प्रयत्न करने वाले सभी सज्जन और विद्वान् भी धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक के प्रकाशन में जिन जिन सज्जनो ने उदारता पूर्वक आर्थिक सहायता प्रदान की है; उनकी शुभ नामावलि पुस्तक में अन्यत्र दी गई है; उन्हे हम अनेकानेक धन्यवाद देते हैं।

"श्री अमोल जैन ज्ञानालय" (धूलिया) संस्था को परम संतोष है कि सर्व-साधारण जनता के हित की दृष्टि से " भारतीय नीति-साहित्य" में इस संग्रह के रूप में एक नैतिकता प्रधान पुस्तक की इसके द्वारा श्री वृद्धि की जा रही है।

आशा है कि जनता इसका सदुपयोग करके हमारे परिश्रम को सफल करेगी।

भवदीयः—

मन्त्री —कन्हैयालाल मिश्रीलाल छाजेड़

श्री अमोल जैन ज्ञानालय गली नं० २

धूलिया (प० खा०)

परिचय और आभार

प्रिय पाठको !

किसी भी ग्रन्थ के प्रकाशन में आर्थिक सहायता की तो अपेक्षा रहा ही करती है, जो सज्जन इस अपेक्षा की पूर्ति मे खुले दिल से दान देकर अपनी उदारता प्रदर्शित करते हैं, सामान्य परिचय के साथ उनका आभार प्रकट करना भी हमारा एक जरूरी कर्त्तव्य हो जाता है।

"अमोल सूक्ति रत्नाकर" के इस प्रथम भाग मे हमारी प्रकाशन संस्था को जिनसे आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, यह है उन महानुभावों की शुभ नामावलिः—

खापर (प. खा) निवासी "श्री वर्धमान जैन-श्रावक-सङ्घ"— यह श्रीसंघ संगठित रूप से इसी प्रकार सदा धर्म-कार्य मे दान दिया करता है, इस ग्रन्थ में मिले है रु. ५२५)

अकलकुआ (प, खा.) निवासी "श्री वर्धमान जैन श्रावक संघ"—यह संघ भी धर्मार्थ-दान देने में कभी संकोच नहीं करता। इस ग्रन्थ में मिले हैं रु. ४०१)

वाणियाविहर (प. खा.) निवासी "श्री वर्धमान जैन स्थानक वासी श्रावक संघ"—यह संघ भी सत्कार्यों में अपनी उदारता प्रकट किये विना नहीं रहता। इस ग्रन्थ में मिले हैं रु. ३०१)

खेडगाँव (प. खा.) निवासी श्री हरकचंदजी विरदीचन्द्रजी संघवी–आप बड़े विद्या प्रेमी हैं, एक निर्धन छात्र को आपने मैट्रिक तक पढ़ाया, अपने गाँव में एक पाठशाला भी खुलवाई, ज्ञान का ही प्रचार समझ कर आपने इस ग्रन्थ में सहर्ष प्रदान किये हैं रु. ३०१)

खेड़गाँव (प. खा) निवासी श्रीमान् दीपचंदजी संघवी के सुपुत्र राजमलजी–आपने एक धर्मशाला वनवाई तथा कई छात्रों को अपने खर्च से पढ़ाया, एक निर्धन छात्र को बी ए. तक पढ़ाया, इसी से आपकी धर्म प्रेम और विद्यादान में तत्परता नापी जा सकती है, इस ग्रन्थ मे भी आपने दिये हैं रु. ३०१)

वाणियाविहर (प. खा) निवासी "वैष्णवसमाज"–यह समाज साम्प्रदायिक कट्टरता से दूर रहकर प्रत्येक सत्कार्य में और खास तौर पर ज्ञान के प्रचारार्थ दान देने में कभी पीछे नहीं रहता। इस दृष्टि से इतर समाजियों के लिए यह एक आदर्श समाज है, इसलिए सभी के लिए अनुकरणीय है। इस ग्रंथमें मिले हैं रु. २०१)

कुकुरमुंडा (प. खा.) निवासी तीन सज्जन हैं:—(१) श्री गणेशमलजी पूनमचन्द्रजी सिंघी १२०) रु० (२) श्री पारसमलजी अन्नराजजी सिंघी ५०) रु० और (३) श्री धनराजजी लालचंदजी सिंघी ३१) रु. तीनो धर्मात्मा और उदार हैं, दान देते समय विद्या-प्रचार आपका मुख्य ध्येय रहता है। इस ग्रन्थ मे दिये रु. २०१)

वाणियाविहर (प. खा.) निवासी स्व. श्रीमती पानाबाई के सुपुत्र श्रीमान् मूलचन्द्रजी सा. बोथरा–आप एक सुश्रावक हैं, दान देने से आपको काफ़ी प्रसन्नता का अनुभव होता है। अपनी माताजी की पुण्य स्मृति मे आपने इस ग्रन्थ में प्रदान किये हैं रु. १५१)

वाणियाविहर (प खा.) निवासी सुश्राविका श्रीमती चाँदा-बाई के सुपुत्र श्रीमान् केशरीमलजी सा. बोथरा-आप बड़े मिलन-सार उदार महाशय हैं, दान मे आपका हाथ सदा ऊपर रहता है। अपनी माताजी की आज्ञा से आपने सहर्ष इस ग्रन्थ में प्रदान किये हैं रु. १५१)

"श्री अमोल जैन ज्ञानालय" को ओर से मैं उपर्युक्त सभी सज्जनों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ तथा कुछ अनिवार्य कारणों से जिनका "विस्तृत-परिचय" नहीं निकाला जा सका, उन से क्षमा याचना करता हूँ।

[सूचनाः—स्मरण रहे कि उपलब्ध आर्थिक सहायता के ऊपर सम्पादन-पारिश्रमिक एवं अतिरिक्त व्ययभार संस्था ने उठाया है।]

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्रीः-श्री अमोल जैन ज्ञानालय, गली नं. २
धूलिया (प० खा०)
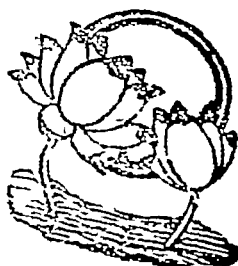
संयोजक-निवेदन

श्रद्धालु पाठकगण !

आज आपके हाथो मे संस्कृत-सूक्तियों का यह संग्रह प्रदान करते हुए मुझे आनंद का अनुभव हो रहा है; क्योंकि सूक्तियों का प्रभाव हृदय पर और मानसिक पटल पर शीघ्र ही हुआ करता है।

मैं संस्कृत-साहित्य का कोई अनुपम अथवा दिग्गज विद्वान् नही हूँ; अतः जैसा चाहिये वैसा संग्रह तो यह नहीं बन पड़ा है; फिर भी मानव-जीवन के विकास मे यह सहायक हो सकता है। इसी आशा से आज इस संग्रह को जनता के सामने उपस्थित कर रहा हूँ। यदि यह सार्थक सिद्ध हुआ तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा। जनता ने यदि इसका आदर किया तो मेरी भावना है कि इसका दूसरा भाग भी तैयार करूँ।

यदि कोई सज्जन महानुभाव उदार दृष्टि से इसमें दिखाई देने वाली त्रुटियाँ बतलावेंगे तो दूसरी आवृत्ति संशोधित रूप से निकल सकेगी। यहाँ पर मैं उन आदरणीय विद्वानो और कवियों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ; जिनकी बहुमूल्य कृतियों से और ग्रंथों से इन सूक्तियो का संग्रह किया गया है उन ग्रंथों की और ग्रंथकारों की सूची इसी पुस्तक में अन्यत्र दी जा रही है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सूक्तियों का चुनाव भिन्न-भिन्न विषयो में अनुक्रम से किया है। इन्हीं सूक्तियों का हिन्दी तात्पर्य छायानुवाद शैली से स्फुट अर्थ के साथ छपा है। यदि भावाभिव्यक्ति मे कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो उदार पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।

मेरे गुरु भाई दूरदर्शी मुनिराज श्री मुलतान ऋषिजी म० का भी पुस्तक के संग्रह कार्य में और इसे मूर्त रूप देने में अत्यधिक सहयोग और सहायता प्राप्त होती रही है; इसके लिए मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अन्त में यही निवेदन है कि आप इसे मनोयोगपूर्वक पढ़े। यदि इस कृति से किसी को लाभ पहुँचा तो मैं अपना यह परिश्रम सफल समझूंगा।

६ जनवरी १९५५ —कल्याण ऋषि
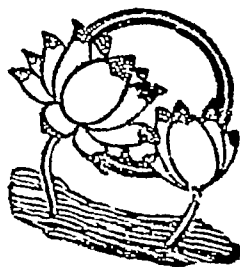
ग्रन्थ और कवि
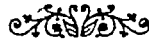
जिन ग्रन्थो से सूक्तियाँ संकलित की गई हैं, उनकी आकारा
क्रम से सूची:—

क्रमांक	ग्रन्थ
१	अध्यात्मतत्त्वालोक
२	अध्यात्मकल्पद्रुम
३	अध्यात्मकल्पतरु
४	अध्यात्मसारप्रबन्ध
५	आत्रेयसंहिता
६	आचारोपदेश
७	अध्यात्म रामायण
८	इतिहास समुच्चय
९	उपदेशतरंगिणी
१०	उपदेशप्रसाद
११	उपदेश माला
१२	कल्याण मन्दिर
१३	कर्पूर प्रकर
१४	करुणावज्रायुध
१५	कस्तूरीप्रकर
१६	काव्यानन्दः
१७	कात्यायन स्मृतिः
१८	किरातार्जुनीयम्
१९	कुमारपालप्रबन्ध
२०	गरुड़ पुराण
२१	चाणक्यनीति
२२	जैनपञ्चतन्त्र
२३	तत्त्वामृत
२४	दक्षस्मृति
२५	दानचन्द्रिका
२६	देवी भागवत
२७	धर्म कथा
२८	धर्म कल्पद्रुम
२९	धर्म परीक्षा
३०	धर्म विन्दु
३१	धर्मरत्नप्रकरण
३२	नलचम्पू
३३	नारदपञ्चरात्र
३४	नीति शतक (भर्तृहरि रचित)
३५	नीतिशास्त्र (माघरचित)
३६	पद्मपुराण

क्रमांक	ग्रन्थ
३७	परिग्रहाष्टक
३८	पाराशरसंहिता
३९	पार्श्वनाथचरित्र
४०	पुण्य धन कथा
४१	पूर्वमीमांसा
४२	प्रबन्धचिन्तामणिः
४३	प्रशमरति.
४४	बृहस्पति स्मृतिः
४५	भगवद्गीता
४६	भागवतस्कन्ध
४७	भक्तामर
४८	भाल्लवीय श्रुति
४९	मत्स्यपुराण
५०	मनुस्मृति
५१	महादेव स्तोत्र
५२	महाभारत
५३	महावीर चरित्र
५४	मार्कण्डेय पुराण
५५	मार्गशीर्ष एकादशी
५६	मोहमुद्गर
५७	मौन एकादशी
५८	यति धर्मसमुच्चयः
५९	यति धर्मसंग्रह.
६०	योगवासिष्ठ.

क्रमांक	ग्रन्थ
६१	योग शास्त्र
६२	योगसार
६३	वचनामृत
६४	वराहपुराण
६५	विक्रमचरित्र
६६	विवेकविलास
६७	विवेकचूड़ामणि
६८	वीतराग स्तोत्र
६९	वृद्धचाणक्यनीति
७०	वेदान्तदर्शन
७१	वैराग्यशतक (परमानन्द)
७२	वैराग्यशतक (पद्मानन्द)
७३	वैराग्यशतक (भर्तृहरि)
७४	शिवपुराण
७५	शिवगीता
७६	शंखस्मृतिः
७७	श्राद्धविधि
७८	सुभाषित रत्न भाण्डागारः
७९	सुभाषित रत्न सन्दोहः
८०	सुभाषितसञ्चय
८१	संवेगद्रुमकन्दली
८२	साङ्ख्यदर्शन
८३	सिन्दूर प्रकरः
८४	सूक्तमुक्तावलिः

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त वहुत-सी सूक्तियाँ इधर-उधर बिखरी हुई भी इस ग्रन्थ मे संकलित की गई हैं। सो उनके रचयिताओं में से जिनके नाम मालूम हो सके हैं उनकी शुभनामावलिः—

१—आचार्य उमास्वाति
२—महाकवि कालिदास
३—नयविमल मुनि
४—महाकवि बिल्हण
५—महाकवि शोभनमुनि
६—महाकवि क्षेमेन्द्र
७—आचार्य शुभचन्द्र

सुभाषित-महत्त्व

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु, रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

इस संसार मे असली रत्न तीन हैं—जल, अन्न और सुभाषित वचन। मगर मूढ लोगों ने पत्थर के टुकड़ों को हीरा, पन्ना आदि को रत्न का नाम दे रक्खा है।

विश्वकवि कालिदास की यह उक्ति कितनी तथ्यपूर्ण है। हीरा, पन्ना, स्फटिक आदि पाषाणों की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है? जो व्यक्ति प्यास का मारा छटपटा रहा है, जिसका कंठ सूख गया है और जो एक बूंद जल के लिए तरस रहा है, उसे जल के बदले बहुमूल्य हीरा दिया जाय और कहा जाय कि जल की क्या कीमत है? लो, यह लाखों की कीमत का हीरा ले लो। तो क्या वह प्यासा मनुष्य उस हीरे से सन्तोष पा सकेगा? हीरा उसके प्राणों की रक्षा कर सकेगा? नहीं, इसी प्रकार भूख के कारण जिसका पेट पीठ से चिपक गया है, जिसकी आँखें तिलमिला रही हैं, वह हीरा लेकर अपनी भूख नहीं मिटा सकता—प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता। प्राणरक्षा के लिए तो अन्न और पानी ही चाहिए। इसी कारण यह दोनों रत्न गिने गये हैं।

महाकवि के कथनानुसार तीसरा रत्न सुभाषित-सूक्ति-है।

वह कथन, जिसमें शब्द थोड़े हो, किन्तु सारगर्भित, प्रभावशाली और अनूठा भाव प्रकट करने वाले हों, जिसे सुनते ही श्रोता के चित्त मे चमत्कार उत्पन्न हो जाय, सुभाषित कहलाता है।

सुभाषित वाणी अमृत के समान रसमय होती है। उसमें अपूर्व प्रभाव होता है। श्रोता उसे सुनकर भाव-मुग्ध हो जाता है। यहाँ तक कहा गया है:—

संसारविषवृक्षस्य, द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
सुभाषितरसास्वादः, संगतिः सुजने जने ॥

यह संसार नाना प्रकार की आधियो, उपाधियों और व्याधियों से परिपूर्ण होने के कारण विष के वृक्ष के समान है। किन्तु इस विषवृक्ष में भी दो अमृतमय फल लगते हैं। वे अमृतमय फल हैं—सुभाषित वाणी के रस का आस्वादन और सतपुरुषों की संगति।

अमृत से विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है। अतः इस कथन का अर्थ यह हुआ कि जो मनुष्य सुभाषितों का अध्ययन, मनन और चिन्तन करता है अथवा सत्संगति में अपना कालक्षेप करता है, वह संसार के दुःखों और कष्टों से अपने आपको बचा लेता है। भीषण से भीषण प्रतीत होने वाले कष्ट भी उसकी अन्तरात्मा को प्रभावित नहीं कर सकते। सुभाषित-जनित आन्तरिक आनन्द के रस मे उसकी समस्त व्यथाएँ और वेदनाएँ सुख रूप ही बन जाती है।

ऐसी स्थिति मे सुभाषित की तीन रत्नो में गणना करना सर्वथा ही उचित है। तीन रत्नो में भी जल और अन्न तो केवल शरीर की रक्षा करने के लिए ही उपयोगी होते हैं, वे भौतिक शरीर

को सशक्त एवं सामर्थ्यवान् बना सकते हैं, परन्तु सुभाषित-रत्न आत्मा की खुराक हैं। उनसे आत्मिक तृप्ति होती है। वे आत्मा में अपूर्व उत्साह और अप्रतिहत वीर्य-शक्ति उत्पन्न कर देते हैं, जल और अन्न तो कभी-कभी हानि भी उत्पन्न कर देते हैं, विसूचिका आदि व्याधियाँ भी उनके कारण उभर आती हैं, पर सुभाषित वाणी किसी भी स्थिति में हानि उत्पन्न नहीं कर सकती। वह एकान्त आनन्दमय होती है।

अन्न और जल का सेवन किया जाता है तो कुछ समय के लिए तृप्ति-लाभ होता है; और फिर ज्यों की त्यों भूख और प्यास सताने लगती है। परन्तु सुभाषित वचन का प्रभाव तो ऐसा अद्भुत होता है कि समग्र जीवन में परिवर्त्तन कर देता है।

इतिहास इस कथन की सत्यता के प्रमाणों से भरा हुआ है। हम देखते हैं कि सुभाषित के प्रभाव से कइयों का जीवन ही बदल गया। कइयों ने सुभाषितवाणी से प्रभावित होकर अपने जीवन में ऐसे-ऐसे कार्य कर दिखाए कि वे इतिहास के पृष्ठों में अमर हो गए।

भगवान् अरिष्टनेमि के लघुभ्राता रथनेमि का वृत्तान्त जैन साहित्य में प्रसिद्ध है। भ० अरिष्टनेमि के द्वारा परित्यक्ता भगवती राजीमती को रथनेमि अपनाना चाहते थे। मगर राजीमती ने अविवाहित रहकर तपोमय जीवनयापन करना ही निश्चित किया था। रथनेमि को निराशा हुई और उस निराशा के फलस्वरूप वह भी साधु बन गये। साधु बन जाने पर भी राजीमती-विषयक वासना उनके अन्तःकरण से दूर न हुई। उनके हृदय में राजीमती को पाने की लालसा अव्यक्त रूप में विद्यमान ही रह गई। एक

बार ऐसा प्रसंग आ गया कि दोनों का एकान्त में अचानक ही मिलना हो गया। बस, रथनेमि की सुषुप्त वासना प्रज्वलित हो उठी। उसने काम-भोग की याचना की। तपोमूर्त्ति राजीमती ने रथनेमि को समझाया। इस संबंध में शास्त्रकार कहते हैं:—

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥

संयमवती राजीमती के सुभाषित वचनों को सुन कर रथनेमि धर्म मे सदा के लिए स्थिर हो गये, जैसे अंकुश से हाथी वश में हो जाता है।

स्पष्ट है कि लोकलज्जा, साधु-वेष और तप आदि भी जिस विषय-वासना को समूल नष्ट न कर सके, उसे सुभाषित वचनों ने दूर कर दिया। इससे सुभाषित की अपूर्व प्रभावक शक्ति का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

यह धार्मिक क्षेत्र की घटना है। इतिहास में भी सुभाषित की सामर्थ्य को प्रकट करने वाली अनेक घटनाएँ उपलब्ध हैं। भारत के अद्वितीय स्वातन्त्र्य के पुजारी, मेवाड़ के ही नही, विश्व के महान् साहसी योद्धा महाराणा प्रताप, सम्राट् अकबर की बलवती सेना से लड़ते-लड़ते उकता गये। पहाड़ों में रहने पर भी जब शान्ति से न रह सके और अत्यन्त विषम परिस्थिति में पड़ गये तब अपने ध्येय से विचलित हो गए। उन्होंने अकबर से सन्धि करने का निश्चय कर लिया। मुगलसम्राट् के पास अपना दूत भेज दिया। तब पृथ्वीराज के एक ही सुभाषित ने उनकी चेतना को जागृत कर दिया। एक ही दोहे ने उनके क्षात्र तेज को पुनः जागृत कर दिया।

एक सुभाषित-वचन ने प्रताप के विमल यश को मलीन होने से बचा लिया और प्रताप को सदा के लिए स्मरणीय बना दिया।

अपनी पत्नी के अन्ध-प्रेम में पागल बने हुए महान् कवि तुलसीदास को भगवद्भक्ति की ओर मोड़ने वाला कौन था? उनकी पत्नी के मुख से निकला हुआ एक सुभाषित ही तो! उसी एक सुभाषित ने तुलसी के रामा-प्रेम को राम-प्रेम के रूप मे परिणत कर दिया और उसी के फल-स्वरूप रामायण जैसे अमर काव्य की सृष्टि हुई।

श्लोकवार्त्तिक और अष्टसहस्री जैसे जैन दर्शनशास्त्र के अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थो की रचना करने वाले प्रचण्ड तार्किक स्वामी विद्यानन्दि को जिनेन्द्र देव का भक्त बनाने का श्रेय एक सुभाषित को ही है।

अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्?।
नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्?॥

इस एक ही सुभाषित को सुनकर विद्वद्वर विद्यानन्दि जैनधर्म में दीक्षित हो गए और उनकी कृतियों ने जैन दार्शनिक साहित्य को सजीव बना दिया।

वास्तव मे सुभाषित वाक्य मे अपूर्व शक्ति होती है। वह सीधा हृदय से जाकर टकराता है और मनुष्य के जीवन मे अद्भुत परिवर्त्तन कर देता है। यही कारण है कि कविजन मुक्त कंठ से सुभाषित-वचन की प्रशंसा करते हुए थकते नही हैं। सुभाषित वचन की एक बड़ी विशेषता तो यह है कि वह मधुर होकर भी असर कारक होता है। उसकी मधुरता के विषय में कहा गया है:—

द्राक्षा म्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता।
सुभाषितरसस्याग्रे, सुधा भीता दिवं गता॥

सुभाषित के अनूठे मधुर रस से लज्जित होकर द्राक्षा का मुख म्लान हो गया—वह मुरझा गई, शक्कर-मिस्री पत्थर बन गई और सुधा-डर की मारी स्वर्गलोक में भाग गई। तात्पर्य यह है कि सुभाषित का माधुर्य इन सब मधुर वस्तुओ से भी बढ़कर है।

सुभाषित वचन सर्वत्र सर्वदा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं। मित्रों की गोष्ठी मे वही व्यक्ति प्रशंसा का पात्र बनता है, जिसने अनेक सुभापितो को अपने गले का हार बनाया हो। सुभाषित-संग्राहक रोते को हँसा देता है, मुर्दे में जान फूँक देता है, कायर को वीर बना देता है, जन समूह को अपना अनुयायी और प्रशंसक बना लेता है तथा बड़ी ही सरलता से श्रोताओ के मन पर जादू कर देता है।

उपदेश और व्याख्यानो में सुभाषित-वाक्य वही काम करते है जो भोजन में नमक करता है। नमक-हीन भोजन रुचिकर नही होता, उसी प्रकार सूक्तिविहीन उपदेश भी रुचिकर नहीं होता। अतएव उपदेशकों और व्याख्याताओं के लिए तो सुभाषितों का कंठस्थ करना अनिवार्य ही है। मगर इसका आशय यह न समझा जाय कि सुभाषित वचन दूसरों का मनोरंजन करने के लिए ही उपयोगी हैं। नही, उससे अपने मन को भी प्रसन्न किया जा सकता है और उसे सन्मार्ग की ओर लगाया जा सकता है। इसी कारण संस्कृत के एक कवि कहते हैं.—

खिन्ने चापि सुभाषितेन रमते स्वीयं मनः सर्वदा,
श्रुत्वाऽन्यस्य सुभाषितं खलु मनः श्रोतुं पुनर्वाञ्छति।
अज्ञाञ्ज्ञानवतोऽप्यनेन हि वशीकर्तुं समर्थो भवेत्,
कर्त्तव्यो हि सुभाषितस्य मनुजैरावश्यकः संग्रहः ॥

अर्थात्–अपना निज का मन जब खिन्न हो जाता है, तब सुभाषित को सुनकर ही प्रसन्न होता है। दूसरे के सुभाषित को सुनकर पुनः पुनः उसे सुनने के लिए उत्कंठित होता है। सुभाषितों के प्रभाव से मनुष्यों—अज्ञानियो और ज्ञानियों-दोनो को वशीभूत करने में समर्थ होता है। अतएव मनुष्यों को सुभाषितों का संग्रह अवश्य करना चाहिए।

कवि की सलाह है कि सुभाषितों का संग्रह अवश्य करना चाहिए, पर उनका संग्रह करने के लिए विशद बोध, विशाल अध्ययन और अनेक शास्त्रो का पारायण करने की आवश्यकता है। ऐसा किये विना सुन्दर सूक्तों का संग्रह नहीं किया जा सकता। इतना कर सकना प्रत्येक व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। न इतना समय सब को मिल सकता है और न इतना बुद्धिवैभव ही सब के पास हो सकता है। इसी विचार को समक्ष रखकर अनेक विद्वानों ने विविध भाषाओं के अनेक सुभाषित-संग्रह तैयार किये हैं। इन सब संग्रहों में वही संग्रह वास्तविक कल्याण की दृष्टि से उपादेय हो सकते हैं, जो मनुष्य को विषय-वासनाओ की ओर से हटाकर आत्मा-परमात्मा की ओर आकर्षित करने वाले हों, चित्त में विकार को न जगावे, अपितु जागृत विकार को विमल विचार के वारि से शान्त कर दे, जिनके पढ़ने-सुनने से अन्तःकरण मे वैराग्य का झरना वहने लगे और जो सारभूत तत्त्व या परमार्थ की ओर अग्रसर कर दे। विषय-वासना की ओर मन स्वतः ही दौड़ता है। उसके लिए किसी सुभाषित की आवश्यकता नहीं है। अतएव विषय-वासना को उभारने वाले वचन सुभाषित की कोटि मे नही आते। वह 'कुभाषित' ही कहला सकते हैं। कम से कम तत्त्वज्ञानियो का तो यही दृष्टिकोण है।

इस दृष्टि से "अमोल-सूक्ति रत्नाकर" वास्तव में एक अनमोल संग्रह है।

इस संग्रह में एक खास विशेषता यह है कि श्लोकों की एक-एक पंक्ति ही ली गई है ! इसके तीन कारण हैं:—

(१) अधिकांश श्लोको में प्रायः चतुर्थ चरण मे ही प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख रहता है, शेष तीन चरणो से उपमाएँ !

(२) आज कल प्रायः प्रवचनों में श्लोकों को एक-एक पंक्ति ही कहने की पद्धति चल पड़ी है।

(३) सुभाषितरत्नभाण्डागार, सुभाषित रत्न सन्दोह, सुभाषित-समुच्चय आदि अनेक संग्रह ग्रन्थ ऐसे निकल ही चुके हैं, जिनमें पूरे-पूरे श्लोक लिये गये हैं, इसलिए अपने ढंग का यह नया प्रयोग है।

इसका पठन-पाठन जन-समाज में नैतिकता का प्रसार करेगा, अस्वस्थ मन को स्वस्थ बनाएगा, चित्त की शुद्धि करेगा, आत्म कल्याण को प्रबल प्रेरणा देगा और शाश्वत श्रेयस् के पथ पर पाठकों को अग्रसर करेगा। पं. र. मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म. की साहित्यिक सेवाओं में यह कृति अपना विशिष्ट स्थान पाएगी। तथास्तु।

ब्यावर
ता. २१-१२-५४

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

विषयानुक्रमणिका

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अमोल-सूक्ति-रत्नाकर

(१)

प्रार्थना
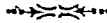
"ॐकाराय नमो नमः ।"

भावार्थः—ईश्वर के सर्वोत्कृष्ट रूप ओ३म् के लिये बार बार नमस्कार हो ।

"वीतराग ! नमोऽस्तु ते ।"

भावार्थः—हे वीतराग प्रभो ! तुम्हें मेरा श्रद्धा पूर्वक और भक्ति पूर्वक नमस्कार हो ।

"वीराय तस्मै नमः ।"

भावार्थः—उन चरम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री वर्धमान महावीर प्रभु के लिये मेरा शुद्ध भक्ति के साथ नमस्कार हो ।

"हे पार्श्व ! वै पाहि नः ।"

भावार्थः—हे पार्श्वनाथ प्रभो ! अनुकंपा करके हमें पापों से बचाओ ।

"नमामि वीरं गिरिसारधीरम् ।"

भावार्थः—पर्वत राज सुमेरु के समान अनन्त धैर्यशाली श्री वर्धमान महावीर स्वामी को मैं नत मस्तक होकर नमस्कार करता हूं ।

"श्री वीर ! भद्रं दिश !"

भावार्थः—हे अनन्त ज्ञानी श्री वीर प्रभो ! मुझे कल्याण शील और मंगलमय मार्ग बतलाओ ।

"सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं श्री वीतरागो जिनः ।"

भावार्थः—श्री वीतराग प्रभु जिनेन्द्रदेव हमारे मनवांछित मनोरथों को परिपूर्ण करे ।

"वन्देऽहं गुणसागरम् सुखकरम् ।"

भावार्थः—गुणों के सागर और सुखों के दाता ऐसे प्रातः स्मरणीय परमात्मा को मैं शुद्ध अन्तःकरण से नमस्कार करता हूँ ।

"वन्दे मन्मथहरं ।"

भावार्थः—*कामवासना को जड़-मूल से और आत्यंतिक रूप से क्षीण कर देने वाले वीतराग प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ।*

"जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ?"

भावार्थः—*हे दया-निधान भगवन् ! मै मोह-जाल से बंधा हुआ हूं; ऐसी स्थिति में आप का स्मरण कैसे करू ?*

"वन्दे तद्गुणलब्धये ।"

भावार्थः—*उन सर्वोत्कृष्ट पवित्र ईश्वरीय गुणों की प्राप्ति के लिये ही परम-पिता परमात्मा को मै श्रद्धा पूर्वक नतमस्तक होकर नमस्कार करता हूं।*

"वन्दे सुवन्द्यं गुरुमुत्तमं मुदा ।"

भावार्थः—*सदैव वन्दनीय पूज्य गुरुदेव श्री को मै प्रसन्न हृदय होकर वंदना-नमस्कार करता हूँ।*

"जैनं जयति शासनम् ।"

भावार्थः—*वीतराग-प्रभु जिनेन्द्र देव के शासन की-आदेश-उपदेश की-जय हो, विजय हो।*

"भारती भातु भारते ।"

भावार्थः—*हमारी पवित्र मातृ-भूमि भारतवर्ष में भगवत्वाणी, देवी शारदा सम्मानित पद प्राप्त करे; सुशोभित होवे।*

"सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।"

भावार्थः—*समस्त जडता का और मूर्खता का नाश करने वाली, ऐसी शक्ति-शालिनी वह भगवती सरस्वती देवी मुझे पाप से बचावे। मुझे सन्मति प्रदान करे।*

"शिवमस्तु।"

भावार्थ—*कल्याण हो; मंगल हो। यही मेरी पवित्र भावना है।*

"सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।"

(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—*सभी आत्माएं अपना आत्मिक कल्याण प्राप्त करें; आत्म-शांति का अनुपम अनुभव प्राप्त करें।*

"सर्वत्र सर्वे सुखिनो भवन्तु।"

(अध्यात्म-कल्पद्रुम)

भावार्थ—*विश्व के प्राणी मात्र सब स्थान पर और सदा ही परम आनन्द का महान् अनुभव प्राप्त करें। सभी सुखी होवें।*

"महाव्रतधरा धीराः साधवः शरणं मम।"

(त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र)

भावार्थः—*महाव्रत धारी, धैर्यशाली, साधु-अणगार मुझे अपनी पवित्र शरण में स्थान प्रदान करें।*

"वन्देऽहं श्री शान्तिजिनेन्द्रं नन्दितजनताहृदयं रे!"

—नयविमल मुनि

भावार्थः—मनुष्यों के हृदय को हर्षित करने वाले शान्तिनाथ (सोलहवें तीर्थंकर) जिनेश्वर को मैं वन्दन करता हूं ।

"वन्दे वामातनयमुदारं दारितमारविकारं रे !"

—नयविमल मुनि

भावार्थः—वामा देवी के उदार सुपुत्र श्री पार्श्वनाथ भगवान को मैं वन्दन करता हूँ, जिन्होंने कामविकार को चूर (नष्ट) कर दिया ।

"त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धम्
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।"

—मानतुंगाचार्य

भावार्थः—(हे प्रभो !) तुम्हारी स्तुति करने से प्राण धारियों के जन्म-जरा-मरणरूप संसार-परम्परा (की उत्पत्ति करने) वाला पाप क्षणभर में क्षीण हो जाता है ।

"आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।"

—मानतुंगाचार्य

भावार्थः—(हे भगवन् !) तुम्हारी निर्दोष स्तुति तो दूर रहे (उसकी तो बात ही क्या !) किन्तु तुम्हारी चर्चा भी जगत्त्रय के पापों को नष्ट कर देती है ।

"दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।"

—मानतुंगाचार्य

भावार्थः—अपलक दृष्टि से देखने योग्य आपको देखने पर मनुष्य की आँख को अन्यत्र कहीं भी सन्तोष नहीं होता। तात्पर्य यह कि आप ही सर्वोत्कृष्ट हैं।

"गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः।"

—मानतुंगाचार्य

भावार्थः—बड़े-बड़े पहाड़ों को हिला देने वाली जोरदार हवा भी जिसके पास तक पहुंच नहीं सकती; हे नाथ! तुम जगत् को प्रकाशित करने वाले ऐसे ही एक अलौकिक दीपक हो (सांसारिक विषय-कषायों से बिल्कुल निर्लिप्त हो।)

"स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।"

—मानतुंगाचार्य

भावार्थः—(हे भगवन्!) सैंकड़ों स्त्रियां सैंकड़ों पुत्रों को पैदा करती हैं (फिर भी) किसी दूसरी स्त्री ने आपके समान (गुणगौरवशाली) पुत्र पैदा नहीं किया।

"तुभ्यं नमो जिन! भवोदधिशोषणाय"

—मानतुंगाचार्य

भावार्थः—संसार रूपी समुद्र को सुखाने वाले हे जिनेश्वर! तुम्हें नमस्कार हो।

"त्वत्पादपंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः।"

—मानतुंगाचार्य

भावार्थः—*हे भगवन्! तुम्हारे चरण-कमल के पराग और मकरन्द से लिप्त देह वाले मानव कामदेव के समान सुन्दर हो जाते हैं।*

"त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति।"

—मानतुंगाचार्य

भावार्थः—*हे भगवन्! आपके नाममन्त्र का निरन्तर स्मरण करने वाले मनुष्य शीघ्र ही अपने आप बन्धनों से छुटकारा पा जाते हैं।*

"आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन! संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।"

—सिद्धसेन दिवाकर

भावार्थः—*अत्यन्तमहिमा वाली आपकी स्तुति तो रहे, (परन्तु) केवल आपका नाम भी संसार से रक्षा करने में समर्थ है।*

"हृद्वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निविड़ा अपि कर्मबन्धाः।"

—सिद्धसेन दिवाकर

भावार्थः—*हे भगवन्! आपके हृदय में विराजने पर प्राणियों*

के सघन कर्मों के बन्धन भी क्षण भर में ढीले पड़ जाते हैं।

"आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति।"

—सिद्धसेन दिवाकर

भावार्थः—(हे भगवन्!) नामांकित होने से पवित्र बने हुए मन्त्र को सुनकर भी क्या विपत्तिरूप साँपिन निकट आयेगी? कभी नहीं! (आपका नामस्मरण करने वाले पर आफतें आती ही नहीं और आ भी गईं तो उनका कोई असर नहीं पड़ता!)

"निराकृताशेषममत्वबुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ!"

भावार्थः—सब प्रकार की ममता वाली बुद्धि छूट कर हे नाथ! मेरा मन समभावी बने।

"शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तम् तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।"

भावार्थः—उस आप्त देव (श्री तीर्थंकर प्रभु) की शरण में जाता हूं जो शुद्ध हैं, कल्याणकर्त्ता हैं, शान्त हैं, अनादि-अनन्त हैं।

यस्मान्मोहमतिर्गता मतिभृताम्
यस्यैव सेव्यं वचः।
यस्मिन् विश्वगुणास्तमेव सुतरां
वन्दे युगादीश्वरम्॥"

—क्षमाकल्याणगणि

भावार्थः—*जिनकी ममत्वबुद्धि मिट गई है, जिनका वचन पालन करने योग्य है तथा जिनमें सब गुणों का निवास है, उन्हीं युग के आदि में प्रकट होने वाले भगवान् ऋषभदेव की मैं वन्दना करता हूं।*

"पार्श्वाच्चिन्तितकार्यसिद्धिरखिला
पार्श्वस्य तेजो महत्।
श्रीपार्श्वे प्रकटःप्रभावगहनः
श्रीपार्श्व ! सौख्यं कुरु ॥"

—जिनसूरमुनि

भावार्थः—*भगवान् पार्श्वनाथ से समस्त चिन्तित कार्यों की सिद्धि होती है। भगवान् का तेज महान् है और उनमें गहरा प्रभाव प्रकट होता है। (ऐसे) हे भगवन् ! सुख प्रदान करो।*

"ते वः पान्तु जिनोत्तमाः क्षतरुजो
नाचिक्षिपुर्यन्मनो
दारा विभ्रमरोचिता सुमनसो
मन्दारवा राजिताः"

—शोभनमुनि

भावार्थः—*सरल मन वाली, कोमल शब्दों से सुशोभित होने वाली, नाना प्रकार के विलास और हावभावों को प्रकट करने से सुन्दर मालूम होने वाली स्त्रियाँ (अप्सराएं) भी जिनके मन को डिगा नहीं सकीं वे निर्विकार जिनेश्वर आप लोगों की (कुमार्ग से) रक्षा करें।*

"तुभ्यं चन्द्रप्रभ ! जिन ! नमस्तामसोज्जृम्भितानाम्
हाने कान्तानलसम ! दयावन् ! दितायासमान !"

—शोभनमुनि

भावार्थः—अज्ञानान्धकार के नष्ट करने मे प्रज्वलित अग्नि के समान ! शोक और घमण्ड को खण्डित कर देने वाले ! हे दयालो ! चन्द्रप्रभजिनेश्वर ! तुम्हें नमस्कार हो ।

"जिनवराः ! प्रथतध्वमितामयाः !
मम तमोहरणाय महारिणः !"

—शोभनमुनि

भावार्थः—सब प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों से रहित ! धर्मचक्रवर्त्तिन् ! हे जिनेश्वरो ! मेरे मानसिक (अज्ञान रूप) अन्धकार को दूर करने में प्रयत्नशील बनो ।

"अपापदमलं घनं शमितमानमामो हितम् ।
नतामरसभासुरं विमलमालयाऽऽमोदितम् ॥"

—शोभनमुनि

भावार्थः—देवों के समूह और असुरों से वन्दित, घर से अप्रसन्न (घर छोड़ कर जगत्कल्याण के लिए बाहर निकले हुए), हितकारी, निष्पाप जो दम (इन्द्रियदमन) है, उसे जीवन में लाने वाले, सघन शान्ति को प्राप्त करने वाले श्री विमलनाथ भगवान् को हम प्रणाम करते हैं ।

(२)

देव-ईश्वर

"समस्तकल्याणकरो जिनेन्द्रः ।"

भावार्थः—केवल एक जिनेन्द्र देव ही अखिल विश्व मे सभी प्रकार का कल्याण और मंगल करने वाले शक्ति शाली वीतराग प्रभु हैं।

"वीतरागो जिनो देवो रागद्वेषविवर्जितः ।"

भावार्थः—जो राग और द्वेप के दोषों से रहित हो गये हैं; ऐसे देवाधिदेव वीतराग प्रभु को ही "जिनेन्द्र-भगवान; जिनदेव" कहा जाता है।

"यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ।"

भावार्थः—विश्व की जैसी वस्तु-स्थिति है, द्रव्य का और तत्त्व का जैसा स्वरूप है, उसको उसी रूप से कहने वाले, वैसा ही प्रतिपादन करने वाले केवल अरिहंत प्रभु ही हैं। ये ही अखिल लोक मे परमेश्वर हैं. परमात्मा हैं।

"महा दया दमो ध्यानं महादेवः स उच्यते ।"

भावार्थः—जो महापुरुष दया, इन्द्रिय-दमन, और ध्यान में अनुरक्त है, एवं उत्कृष्ट रीति से इनकी आराधना किया करता है, वही महादेव कहा जाता है।

"दुर्लक्ष्यं परमात्मसंज्ञममलं ज्योतिर्जयत्यक्षयम्।"

भावार्थः—जो इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाने जा सकते हैं, जो मन और बुद्धि द्वारा भी अगोचर रूप हैं, जो निर्मल हैं, जो ज्योति स्वरूप हैं, और जो अनादि अनन्त रूप हैं, ऐसे परमात्मा स्वरूप देव ही सदा जयवन्त होते हैं, विजयशील होते हैं।

"तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।"

भावार्थः—उन निर्दोष और अबाधित सिद्धान्त वाले वीतराग प्रभु की शरण में मैं जाता हूँ। मुझे ऐसे परमात्मा की शरण प्राप्त हो।

"स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।"

भावार्थः—वह त्रिलोक पूज्य देवाधिदेव परमात्मा मेरे हृदय में निवास करे। अर्थात् उस परमात्मा का स्मरण मैं रात और दिन निरन्तर ही करता रहूँ।

"महा लोभो हतो येन महादेव स उच्यते।"

भावार्थः—जिस महात्मा पुरुष ने महान् कषाय रूप लोभ का जड-मूल से ही क्षय कर दिया है, जो आत्यंतिक रूप से कषाय रहित हो गये हैं, वे ही महादेव कहलाते हैं।

(३)

गुरु-मुनि-त्यागी
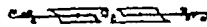
"वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—जिस आत्मा के राग, द्वेष, भय और क्रोध सर्वथा ही क्षीण हो चुके हैं, और जो अचल बुद्धि वाला है, वही मुनि कहलाने के योग्य है।

"अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरिष्यते ।"

(जैन-पञ्च-तन्त्र)

भावार्थः—उपकार का प्रति फल तो सभी दिया करते हैं, परन्तु अपकार करने वालों के प्रति भी जो उपकार ही किया करते हैं, उन्हें ही महापुरुष "साधु" शब्द से संबोधित किया करते हैं।

"गुरुस्तु दीपवत् मार्गदर्शकः ।"

भावार्थ.—गुरु महाराज ही दीप के प्रकाश के समान अज्ञान रूप अंधकार को मिटा कर सात्विक प्रवृत्ति रूप मार्ग के बतलाने वाले होते हैं।

"यस्यास्ति चारित्रमसौ गुणज्ञः ।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—*जिसका चरित्र नैतिकता पूर्ण और धार्मिकता पूर्ण होता है, वही गुणों को समझ सकता है और जान सकता है।*

"अन्धकारनिरोधत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ।"

भावार्थः—*उपदेश कर्त्ता महापुरुष के प्रति "गुरु" शब्द का उल्लेख इसीलिये किया जाता है कि वे अज्ञान रूप अंधकार का विनाश किया करते हैं।*

"मौनं मुनीनां प्रशमश्च धर्मः ।"

भावार्थः—*आदर्श मुनिराजों का यही धर्म हुआ करता है कि वे वचन-गुप्ति रूप मौन धर्म की परिपालना करते रहें, और कषाय-विजय द्वारा प्रशम धर्म की, अर्थात् निवृत्ति धर्म की सदैव रक्षा करते रहें।*

"आत्मवत् सर्व-भूतानि पश्यन् भिक्षुश्चरेन्महीम् ।"

भावार्थः—*भिक्षु-साधु विश्व-मात्र के सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान ही समझता हुआ एवं उनकी रक्षा करता हुआ पृथ्वी पर निश्चिंतता पूर्वक परिभ्रमण करता रहे।*

"धर्म-वित्ता हि साधवः ।"

(श्राद्ध विधि)

भावार्थः—साधु-गण धर्म रूप संपत्ति से परिपूर्ण हुआ करते हैं।

"निज हृदि विकसन्तः संति सन्तः कियन्तः ?"

भावार्थः—अपने हृदय में गुणों का विकास करने वाले संत-मुनि कितने हैं ? अर्थात् बहुत ही थोडे हैं।

"निवृत्तपापसंपर्काः संतो यान्ति हि निवृत्तिम्।"

भावार्थः—पाप पूर्ण आरंभ-समारभ से निवृत्त पुरुष ही साधुता प्राप्त करते हुए मोक्ष को प्राप्त हुआ करते हैं।

"दुर्जनवचनांगारै दग्धोऽपि न विप्रियं वदत्यार्यः।"
(सुभाषित संचय)

भावार्थः—आर्य पुरुषो में इतनी सहनशीलता होती है कि वे अनार्य पुरुषों के वचन रूप अगारों से जलाये जाने पर भी कटु वचन अथवा अप्रिय वचन नहीं बोला करते हैं।

"वर्षाभ्योऽन्यत्र तत्स्थानं मासेन तदुदाहृतम्।"

भावार्थः—वर्षा-ऋतु के अतिरिक्त एक ही स्थान पर ठहरने की अवधि मुनि के लिये अधिक से अधिक केवल एक ही मास की कही गई है।

"न रात्रौ न च मध्याह्ने सन्ध्ययोर्नैव पर्यटेत्।"

भावार्थः—मुनि रात्रि के समय में, दोपहर के समय में और

सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय में अपने स्थान को छोड़कर के अन्यत्र इधर-उधर नहीं घूमे-फिरे।

"नान्यत्र विचरेद् रात्रौ न मध्याह्ने न संध्ययोः।"

(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—मल-मूत्रादि परित्याग करने के अतिरिक्त साधु रात्रि में, दोपहर में और सूर्योदय के समय में तथा सूर्यास्त के समय में अपने स्थान को छोड़ करके अन्यत्र नहीं जावे।

"दयार्थं सर्वभूतानां वर्षमेकत्र संवसेत्।"

(मत्स्य पुराण)

भावार्थः—सभी प्राण-भूत-जीवों की रक्षा के लिये चातुर्मास में साधु-मुनि एक ही स्थान पर निवास करे।

"जीवमाणाऽऽकुले लोके वर्षास्वेकत्र संवसेत्।"

(अत्रि-स्मृति)

भावार्थः—वर्षा-ऋतु में समस्त लोक-प्रदेश सूक्ष्म एवं दृश्यमान जन्तुओं से परिपूर्ण हो जाता है, अतः उनकी रक्षा के लिये साधु-मुनि चार महीने तक एक ही स्थान पर अपना निवास करे।

"मुहूर्त्तमपि नासीत् देशे सोपद्रवे यतिः।"

भावार्थः—जिस प्रदेश में विद्रोह अथवा अन्य किसी भी प्रकार के उपद्रव विद्यमान हों, वहाँ पर यति-साधु एक मुहूर्त्त भी निवास नहीं करे।

उपवासात्परं भैक्ष्यं ।

(वशिष्ठ-स्मृति)

भावार्थः—विधि पूर्वक और मर्यादा के साथ गोचरी करके लाये हुए अन्न-जल से निर्वाह करना उपवास की अपेक्षा से अधिक श्रेष्ठ है ।

"भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ।"

(मनु स्मृति)

भावार्थः—जो मुनि नियमानुसार और मर्यादा के साथ भिक्षान्न से-गोचरी के अन्न-जल से अपना निर्वाह करते हैं, उनको प्रतिदिन उपवास का फल प्राप्त होता है ।

"एकान्नं नैव भोक्तव्यं बृहस्पतिसमादपि ।"

(अत्रि स्मृति)

भावार्थः—बृहस्पति के समान, विस्तृत, और उत्तम कुल होने पर भी केवल उसी एक कुल के अन्न-जल से ही निर्वाह नहीं करना चाहिये, अर्थात् उपयुक्त अनेक कुलों से ही विधि अनुसार गोचरी करना चाहिये ।

"कदापि युवतिं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ।"

(यति धर्म संग्रह)

भावार्थः—संयम-शील भिक्षु अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये इतना सावधान और सतर्क रहे कि लकड़ी की बनी हुई युवती के

आकार की पुतली का भी किसी भी दशा में और कभी भी वह स्पर्श नहीं करें।

'साधवो दीनवत्सलाः।"

भावार्थः—साधु-पुरुष करुणा और अनुकम्पा के सागर होते हैं, इसीलिये वे दीन हीन-प्राणियों पर अभय-दान रूप प्रेम-भावना रखते हैं।

"गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुच्छिन्नसंशयाः।"

भावार्थः—कभी कभी ऐसा प्रसंग भी आता है जब कि किसी प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा गुरु महाराज मौन ही धारण कर लेते हैं, और यह मौन ही उस प्रश्न का उत्तर होता है, ऐसी स्थिति में विचक्षण शिष्य भी उत्तर के स्वरूप को समझ लेते हैं और संशय रहित हो जाते हैं।

"प्रति संवत्सरं ग्राह्यं प्रायश्चित्तं गुरोः पुरः।"

(धर्म कल्प तरु)

भावार्थः—प्रत्येक शिष्य का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक वर्ष के अंत में वर्ष भर में अपने द्वारा कृत अपराधों की शुद्धि के लिये गुरु द्वारा विनय पूर्वक और श्रद्धा पूर्वक प्रायश्चित्त ग्रहण करे।

"गुरवो विरलाः संति शिष्यसंतापहारकाः।"

भावार्थः– ऐसे गुरु विरले ही मिलते हैं, जो कि अपने शिष्यों के कषाय-जनित कष्टों को और जन्म मरण रूप संताप को मिटाने में प्रेरणा और मार्ग दर्शन प्रदान करते हों।

"साधवो नहि सर्वत्र चंदनं न वने वने ।"

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—जैसे हर किसी जंगल में चंदन के वृक्ष नहीं मिला करते हैं, वैसे ही हर स्थान पर साधु पुरुष भी नहीं मिला करते हैं।

"न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ।"

(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—जो पुरुष सज्जन और साधु-आत्मा होते हैं, वे अपने प्रति किये गये उपकार को कभी भी नहीं भूला करते हैं।

"चित्ते वाचि क्रियायां च साधुनामेकरूपता ।"

भावार्थः—जैसा विचार मन में है, वैसा ही वचनों द्वारा प्रकट करना और वैसा ही जीवन-व्यवहार में शरीर द्वारा आचरण करना, ऐसी मानसिक, वाचिक और कायिक एक रूपता केवल महात्मा पुरुषों में ही पाई जाती है। दुर्जन-पुरुषों की स्थिति इनसे सर्वथा ही विपरीत होती है।

"आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ।"

भावार्थः—गुरु जनों की आज्ञा के प्रति तर्क-वितर्क, शंका-संशय और वाद विवाद जैसी अविनीत भावनाएं उत्पन्न नहीं होने देना चाहिये।

"सत्त्वेभ्यः सर्व-शास्त्रार्थदेशको गुरुरुच्यते ।"

(कुमारपाल प्रबन्ध)

भावार्थः—*विना किसी भी प्रकार के पक्ष-पात के अथवा भेद भाव के सर्व हित बुद्धि से प्राणी मात्र के लिये सभी शास्त्रों का अर्थ प्रकट करने वाले होने से वे महापुरुष "गुरु" कहलाते हैं।*

"संचिनोति शुभं कर्म काययोगेन संयमी।"

(शुभाचन्द्राचार्य)

भावार्थः—*इन्द्रियों पर सयम रखने वाला महापुरुष अपने पाँच समिति रूप शारीरिक योग द्वारा पुण्य कर्मों का बंधन करता है।*

"शांतिमिच्छंति साधवः।"

(लघु चाणक्य नीति)

भावार्थः—*साधु पुरुष एकान्त रूप से कषायों की क्षीणता से उत्पन्न होने वाली आत्मिक शांति की ही आकांक्षा रखते हैं।*

"सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव।"

(भर्तृहरि)

भावार्थः—*जैसे कोई राजा वैभव की विशालता के कारण से निश्चिन्त होकर जीवन व्यतीत करता है, उसी तरह से कषाय और तृष्णा के विनाश से शांत हो गया है चित्त जिसका, ऐसे परम शांत मुनिराज भी अपने आत्मिक विकसित गुणों के वैभव के कारण से अत्यंत आनद के साथ जीवन व्यतीत किया करते हैं।*

"निर्भयः शक्रवद्योगी नंदत्यानंदनंदने।"

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—जैसे देवेन्द्र महाराज अपने त्रिलोक-प्रसिद्ध नंदन-वन नामक वगीचे में आनंद का अनुभव किया करते हैं, वैसे ही इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले निर्भीक योगीराज भी अपने आत्मिक गुणों के आनंद रूप वगीचे में आनंद का अनुभव किया करते हैं।

"सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ।"

भावार्थः—प्राणियों की वस्ती से वहुत दूर एकान्त में ही जीवन व्यतीत करने वाले और इन्द्रिय-भोगों से सर्वथा ही विमुख मुनिराज को अकल्पनीय सुख का अनुभव हुआ करता है।

"श्रमणत्वमिदं रमणीयतरम् ।"

भावार्थः—यह साधु धर्म अनेक गुणों से युक्त होने के कारण से अत्यधिक मनोहर है।

"तपश्चरति शुद्धात्मा श्रमणोऽसौ प्रकीर्त्तितः ।"

भावार्थः—जो पुरुष कपायों से अपनी आत्मा को पवित्र करता हुआ तपश्चर्या करता है। उसे ही श्रमण कहा जाता है।

"स तापसो यः परतापकर्षणः ।"

भावार्थः—जो पुरुष दूसरे प्राणियों के संताप, कष्ट, पीड़ा और दुःख को मिटाने वाला है, वही "तापस" शब्द से उच्चारण करने के योग्य है।

"श्री गुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः ।"

भावार्थः—*सभी प्रकार के कार्यों की साधना में श्री गुरुदेव ही महान् कारण रूप शक्ति-स्तंभ हैं।*

"निस्संगोऽपि मुनिर्न स्यात् समूर्च्छः संगवर्जितः।"

(शुभचन्द्राचार्य)

भावार्थः—*किसी भी प्रकार का परिग्रह नहीं रखते हुए भी, एवं मुनि वेश में रहते हुए भी यदि उसकी ममत्व बुद्धि, तृष्णा-लालसा वाली मूर्च्छा बुद्धि क्षीण नहीं हुई है तो वह निष्परिग्रही अथवा अनासक्त नहीं कहा जा सकता है।*

"गुरुशुश्रूषया कायः शुद्धिरेषा सनातनी।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*गुरु महाराज की सेवा-भक्ति से यह शरीर शुद्ध होता है, ऐसी शुद्धि ही शाश्वत् शुद्धि कहलाती है।*

"गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरात् कोऽपि न परः।"

(सिन्दूर-प्रकरणं)

भावार्थः—*धर्म क्या है? और अधर्म क्या है? इस तत्त्व को समझाने में गुरु के सिवाय दूसरा कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं।*

"दुर्लभः पुरुषो लोके यः प्राणीष्वभयप्रदः।"

(मार्कण्डेय-पुराण)

भावार्थः—*विश्व के प्राणी मात्र को अभय करने वाला पुरुष इस संसार में दुर्लभ ही है।*

"कुशला धर्म-शास्त्रेषु पर्युपास्या मुहुर्मुहुः ।"

भावार्थः—जो गुरु जन धर्म-शास्त्र का बोध कराने में कुशल हैं, परम प्रवीण हैं, ऐसे सत्पुरुषों की बार बार और हर प्रकार से सेवा-चाकरी करनी चाहिये।

"सर्वत्र चाटुवादी च गुरुर्मुक्तिपुरार्गला ।"

(विवेक-विलास)

भावार्थः—सभी स्थानों पर चापलूसी करने वाला पुरुष यदि गुरु बनकर बैठ भी जाय, तो ऐसा पुरुष मोक्ष-दाता नहीं होकर मोक्ष के प्रति रुकावट डालने वाला ही होता है। ऐसे पुरुष को मोक्ष-नगरी की आगल ही समझो।

"मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः सर्वा विडम्बकाः ।"

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—कषाय रहित, गुरु तुल्य महात्मा पुरुष का एक वचन ही मोक्ष प्रदान करने में समर्थ हो सकता है। ऐसी स्थिति में शेष सभी विद्याओं को केवल विडम्बना रूप ही समझना चाहिये।

"भिक्षया भोगमिच्छंति ते दैवेन विडंबिताः ।"

भावार्थः—जो भिक्षा-वृत्ति करके भी भोगों की इच्छा करते हैं, ऐसे पुरुष भाग्य द्वारा निंदनीय और तिरस्कार करणीय ठहराये गये हैं।

"त्याज्य एवाखिलः संगो मुनिभिर्मोक्तु मिच्छुभिः ।"

(शुभचन्द्राचार्य)

भावार्थः—जो मुनिराज मोक्ष जाना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे बाह्य और आंतरिक सभी प्रकार के संसर्ग का (कषाय का और परिग्रह का) परित्याग कर दें।

"हस्ति-अश्वारोहणं चैव संत्यजेत् संयतेंद्रियः ।"

भावार्थः—संयमी पुरुषों को हाथी-घोड़ों की तथा अन्य सभी प्रकार की सवारी छोड़ देनी चाहिये ।

धर्म-तत्त्व

"अहिंसालक्षणो धर्मः ।"

(महाभारत)

भावार्थः—अहिंसा, दया, करुणा, अनुकंपा ही धर्म का लक्षण है।

"क्षमा धर्मस्य लक्षणम् ।"

(महाभारत-शांति पर्व)

भावार्थः—धर्म का लक्षण क्षमा है। क्षमा गुण द्वारा ही धार्मिकता का स्वरूप पहिचाना जाता है।

"यः स्यादहिंसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।"

(महाभारत-शांति पर्व)

भावार्थः—जो प्रवृत्ति अहिंसा से युक्त है, उसे ही निश्चित रूप से धर्म कहा जाता है।

"जीवरक्षामयः साक्षादेष धर्मः सनातनः ।"

(करुणा वज्रायुध नाटक)

भावार्थः—जीवों की रक्षा करने रूप यह प्रत्यक्ष धर्म अनादि कालीन है।

"केवल्युपज्ञः परमो धर्मश्च शरणं मम ।"
(त्रिषष्ठि पर्व)

भावार्थः—केवली द्वारा प्ररूपित उत्तम धर्म ही मेरे लिये शरण रूप है।

"दुर्गतिप्रपतज्जन्तुधारणाद्धर्म उच्यते ।"
(त्रिषष्ठि पर्व)

भावार्थः—अधो-गति में गिरते हुए प्राणी को बचाने की शक्ति धारण करने के कारण से ही अहिंसा आदि गुणों को "धर्म" की संज्ञा दी जाती है।

"समः सर्वभूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ।"
(मनु-स्मृति)

भावार्थः—सभी प्राणियों के प्रति समता का व्यवहार करना, यही धर्म-नीति है। और इस नीति में वेश, लिंग आदि बाधक नहीं हो सकते हैं।

"धर्मो विश्वैकवत्सलः ।"
(योग शास्त्र)

भावार्थः—संसार में धर्म ही एक प्रिय वस्तु है।

"सदा सविधवर्त्येकबन्धुः धर्मोऽतिवत्सलः ।"
(योग शास्त्र)

भावार्थ—निरन्तर समीप रहने वाला और अत्यंत प्रिय बन्धु केवल एक धर्म है।

"भवार्णवोत्तारणयानपात्रं धर्मं चतुर्धा मुनयो वदंति।"
(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—संसार रूप समुद्र को तैरने के लिये जल जहाज के समान उत्तम पात्र केवल एक धर्म ही है, जो कि चार प्रकार का होता है, ऐसा मुनिराज कहते हैं।

"संसारोरुमरुस्थले सुरतरुर्नास्त्येव धर्मात्परः।"
—क्षेमेन्द्र कवि

भावार्थः—संसार रूप विशाल रेगिस्तान में धर्म के सिवाय दूसरा कोई भी कल्पवृक्ष नहीं है।

"निःशेषं धर्म-सामर्थ्यं न सम्यग् वक्तुमिश्वरः।"
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—धर्म की संपूर्ण शक्ति का सम्यक् प्रकार से वर्णन करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं है।

"न धर्मसदृशः कश्चित् सर्वाभ्युदय साधकः।"
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—सभी प्रकार की भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति की साधना कराने वाला धर्म के समान दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है।

"धर्मो गुरुश्च मित्रं च धर्मः स्वामी च बांधवः।"

— शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—धर्म गुरु भी है और धर्म मित्र भी है। इसी तरह से धर्म स्वामी भी है और धर्म बंधु भी है।

"त्रैलोक्ये दीपको धर्मः।"

भावार्थः—तीनों ही लोक में धर्म दीपक के समान (ज्ञान का) प्रकाश करने वाला है।

"धर्मो ददाति निर्विघ्नं श्रीमत्सर्वज्ञवैभवम्।"

— शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—अनंत आध्यात्मिक लक्ष्मी के धनी, परम पूज्य सर्वज्ञ प्रभु का जो केवल ज्ञान-केवल दर्शन रूप वैभव है, उसकी प्राप्ति केवल धर्म के प्रताप से ही सज्जन-पुरुषों को हुआ करती है।

"धर्म एवापवर्गस्य पारम्पर्येण साधकः।"

(धर्म-विन्दु)

भावार्थः—अनुक्रम से मोक्ष का साधक धर्म ही है।

"धर्मो मातेव पुष्णाति।"

(त्रिषष्ठि पर्व)

भावार्थः—धर्म आत्मा का माता के समान लालन-पालन करता है।

"निश्चितं धर्म-संयुक्तास्ते नरा स्वर्गगामिनः ।"

(महाभारत)

भावार्थः—जो मनुष्य सम्यक् प्रकार से धर्म की आराधना किया करते हैं, वे निश्चित रूप से स्वर्ग में जाने वाले हैं।

"धर्मः स्वर्गापवर्गदः।"

(त्रिषष्टि पर्व)

भावार्थः—धर्म स्वर्ग और मोक्ष दोनों का ही दाता है।

"धर्मो माता पिता चैव।"

(इतिहास-समुच्चय)

भावार्थ.—संसार में परिभ्रमण करने वाली इस आत्मा के लिये धर्म ही माता पिता के समान है।

"निर्जलं च सरो धर्मं विना यन्मानुषो भवः"

(पार्श्व-नाथ-चरित्र)

भावार्थः—जैसे जलहीन तालाव शोभा नहीं पाता है, वैसे ही धर्म-हीन मानव-जीवन भी सुशोभित नहीं हुआ करता है।

"धर्मः संसारकान्तारोल्लंघने मार्गदेशकः।"

(त्रिषष्टि पर्व)

भावार्थः—संसार रूप भयंकर जंगल को पार करने के लिये धर्म ही एक विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक है।

"धर्म एको हि निश्चलः ।"

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—संसार में आगे पीछे सभी पदार्थ नए होने वाले हैं, किन्तु केवल एक धर्म ही अक्षय तत्त्व है।

"धर्म एव स्वसामर्थ्याद्दत्ते हस्तावलम्बनम् ।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—पाप के गड्ढे में गिरते हुए प्राणी को केवल धर्म ही अपनी शक्ति के अनुसार सहारा और सहायता पहुंचाया करता है।

"धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले ।"

—आचार्य हेमचन्द्र

भावार्थः—इस अखंड भूतल पर जीव दया के बराबर दूसरा धर्म कहीं पर भी नहीं है।

"कथं न रमते चित्तं धर्मेऽनेकसुखप्रदे ?"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—विविध प्रकार के अनेकानेक सुख देने वाले धर्म में चित्त क्यों नहीं अनुरक्त होता है ?

"एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—धर्म ही एक ऐसा सच्चा और निष्कपट मित्र है, जो कि मरने पर भी आत्मा के साथ साथ जाता है।

"इष्टं धर्मेण योजयेत् ."

भावार्थः—जो हमारे साथ प्रेम करने वाला हो, अथवा जो हमें प्रिय हो, उस व्यक्ति को धर्म के मार्ग पर लगा देना चाहिये।

"अहिंसार्थाय भूतानां धर्म-प्रवचनं कृतम् ।"

(महाभारत-शांति-पर्व)

भावार्थः—विश्व के प्राणी मात्र को अभय दान देने के लिये ही अहिंसा तत्त्व को धर्म का स्वरूप प्रदान किया गया है।

"धर्मो जन्मजरामृतिक्षयकरो ।"

(पुण्य धन कथा)

भावार्थः—धर्म में ही वह प्रबलतम और अजेय शक्ति है कि जिसके बल से यह धर्म, जन्म, जरा और मृत्यु के दुःखों से आत्मा को मुक्त कर देता है।

"धर्मो मित्रं मृतस्य च ।"

भावार्थः—मृत्यु के पश्चात् भी यदि कोई मित्र है, तो वह केवल धर्म ही है।

"धर्मस्य त्वरिता गतिः ।"

भावार्थः इस संसार में अन्य पदार्थों की तथा द्रव्यों की क्रिया रूप चाल अव्यवस्थित हो सकती है, किन्तु धर्म-शक्ति की गुण-परिणाम रूप चाल सदा ही तीव्र होती है। अर्थात् धर्म कभी भी निष्क्रिय नहीं होता है।

"धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् ।"

भावार्थः—धर्म का तत्त्व ज्ञान इतना गूढ़ और जटिल स्वरूप वाला होता है कि मानों वह धर्म तत्त्व गुफा में ही छिपा हुआ है ।

"धर्मः कीर्तिर्द्वयं स्थिरम् ।"

भावार्थः—संसार में सभी पदार्थ नश्वर हैं, परन्तु धर्म और कीर्ति ये दोनों तो अजर अमर हैं, स्थिर हैं ।

"धर्मो हि सान्निध्यं कुरुते सतां ."

भावार्थः—सज्जन पुरुषों की संगति और सहवास केवल धर्म के प्रताप से ही हुआ करती है ।

"त्यजेद्धर्मं दयाहीनम् ।"

भावार्थः—उसे धर्म कैसे कहा जा सकता है जो कि दया का निषेध करता हो ? ऐसे ढोंगी धर्म का परित्याग ही कर देना चाहिये ।

"जन्म-मृत्यु-जरा-योगः हन्यते जिनदर्शनात् ।"

भावार्थः—जैन तत्त्व ज्ञान का-जैन दर्शन का-अध्ययन, मनन, और चिन्तन करने से जन्म, मरण, और बुढ़ापे का बार बार का चक्कर सदा के लिये मिट जाया करता है ।

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—यह नहीं भूलना चाहिये कि यदि धर्म की रक्षा की

जायगी तो धर्म भी धार्मिक व्यक्ति की रक्षा कर सकेगा, और यदि धर्म ही नष्ट कर दिया गया तो वह नष्ट-कर्त्ता भी नष्ट हो जायगा।

"धर्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह गमिष्यति।"

(कात्यायन-स्मृति)

भावार्थः—*अरे महानुभावो! यत्न पूर्वक धर्म-क्रियाओं को करते रहो, क्यों कि यह धर्म ही परलोक में साथ में आवेगा।*

"धर्मार्थप्रभवं चैव सुख-संयोगमक्षयम्।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—*अक्षय-सुख-शांति का संयोग केवल धर्म रूप अर्थ तत्त्व से ही मिलने वाला है।*

"धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्।"

भावार्थः—*जिसका पार पाना अति कठिन है, ऐसे दुस्तर संसार रूप घोर अंधकार को केवल धर्म की सहायता से ही दूर किया जा सकता है।*

"युवैव धर्म-शीलः स्यात्।"

(मत्स्य-पुराण)

भावार्थः—*मानव-आयु का विश्वास नहीं है कि कब यह टूट जाने वाली है, अतः बुद्धिमानी इसी में है कि युवावस्था से ही धार्मिक-क्रियाओं की आराधना की जाय।*

"किं धनैः ? कुरुत धर्ममनिंद्यम् ।"

(उपदेश-माला)

भावार्थः—धन से तो इस लोक में और परलोक में सर्वत्र ही संकट उत्पन्न हुआ करते हैं, ऐसे कष्ट-प्रद धन से क्या लाभ होने वाला है ? अतएव इस लोक में और परलोक में, सभी स्थानों पर सुख देने वाले सर्व-गुणसंपन्न धर्म की ही आराधना करो ।

"परलोके धनं धर्मः ।"

—क्षेमेन्द्र कवि

भावार्थः—यह निश्चित रूप से समझो कि परलोक में आवश्यक साधनों को एकत्र करने वाला धर्म ही केवल धन रूप है ।

"धर्मेण हन्यते व्याधिः ।"

भावार्थः—धर्म के प्रताप से ही रोग-शोक नष्ट हुआ करते हैं ।

"सत्यं सम्यक्-कृतोऽल्पोऽपि धर्मो भूरिफलो भवेत् ।"

भावार्थः—यह बात सत्य है कि सम्यक् रूप से थोड़ी मात्रा में भी पालन किया हुआ धर्म अत्यधिक फल प्रदान करने वाला होता है ।

"नो जीर्यते युगशतैः जिनधर्मसेवा ।"

(रत्न-पूजा)

भावार्थः—जैन धर्म के प्रति प्रकट की गई अनन्य श्रद्धा रूपी सेवा सैकड़ों युग बीत जाने पर भी निष्फलता रूपी जीर्णता को नहीं प्राप्त हुआ करती है ।

"भोगान् सुभगसंयोगान् लभन्ते धर्मकर्मठाः ।"
(सूक्त-रत्नावली)

भावार्थः—जो धार्मिक क्रियाओं में पूर्ण कर्मण्यता के साथ संलग्न हैं, वे कालान्तर मे सुन्दर संयोग वाले भोगों को प्राप्त किया करते हैं।

"ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नरा स्वर्गगामिनः ।"
(इतिहास-समुच्चय)

भावार्थः—जो धर्मानुकूल आचरण करते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग के अधिकारी होते हैं।

"धर्मादेव च देहिनां प्रभवतः स्वर्गापवर्गावपि ।"
(धर्म कल्पद्रुमः)

भावार्थः—धर्म के प्रताप से ही प्राणियों को स्वर्ग और अपवर्ग की प्राप्ति हुआ करती है।

"कर्त्तव्यो धर्म-संचयः ।"
(शास्त्र वार्ता समुच्चय)

भावार्थः—विना किसी भूल के अथवा विलम्ब के धर्म का संचय करते रहना चाहिये।

"धर्ममाचर यत्नेन मा भव त्वं मृतोपमः ।"
(तत्त्वामृत)

भावार्थः—अरे आत्मन् ! यत्नपूर्वक और लगन के साथ तू धर्म का आचरण कर, और मरे हुए के समान निष्क्रिय होकर मत बैठ।

"मृता नैव मृतास्तेऽत्र ये नरा धर्मकारिणः ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जिन मनुष्यों ने जीवन-पर्यंत धर्म का आचरण किया है, वे मृत्यु-प्राप्त हो जाने पर भी मरे नहीं हैं। क्यों कि उनकी अजर अमर कीर्त्ति काल द्वारा मिटाई नहीं जा सकती है।

"धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना ।"

(महाभारत-शांति पर्व)

भावार्थ —मानव-शरीर धारण करके भी जो मनुष्य धर्म से हीन है वे पशु के समान ही हैं।

"धर्मामृतं सदा पेयं दुःखातंकविनाशनम् ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—विविध दुःखों को और विविध रोगों को नाश करने की प्रवल शक्ति है जिसमें, ऐसे धर्म रूप अमृत-तत्त्व को सदा ही पीना चाहिये।

"सुखं नास्ति विना धर्मं तस्माद्धर्मपरो भवेत् ।"

भावार्थः—हे आत्मन् ! इस बात पर पक्का विश्वास करो कि विना धर्म के सुख नहीं मिला करता है, इसलिये धर्म परायण बनो।

"धर्मादन्यत्रविश्वेऽपि मृत्यवे कोऽपि न प्रभुः ।"

भावार्थः—विश्व के किसी भी भाग में और कहीं पर भी धर्म के अतिरिक्त कोई भी दूसरा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में समर्थ नहीं है।

"धर्म कुरुष्व यत्नाद् यत् परलोकस्य पथ्यदम् ।"

—वाचक उमा स्वाति

भावार्थः—हे आत्मन् ! तू यत्न पूर्वक धर्म में संलग्न रह, क्योंकि धर्म ही परलोक में हितकारी है, परलोक में सहायक साधन-पदार्थ है।

"धर्मो व्यसनसंपाते पाति विश्वं चराचरम् ।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—विपत्ति अथवा संकट आने पर त्रस-स्थावर रूप उस विश्व की रक्षा केवल धर्म ही कर सकता है।

"नृपादयोऽपि द्रुह्यन्ति न धर्माधिष्ठितात्मने ।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थ.—धर्म में संलग्न आत्मा के प्रति राजा आदि भी किसी भी प्रकार का कोई भी अनिष्ट कार्य नहीं कर सकते हैं।

"न धर्मो निर्दयस्यास्ति ।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*दया हीन मनुष्य को धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है।*

"कृपाहीनोऽपि धर्मः स्यात् कष्टं नष्टं ह हा ! जगत् ।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*जिस प्रवृत्ति में दया नहीं है, फिर भी वह प्रवृत्ति यदि धर्म की संज्ञा धारण करे तो खेद-पूर्वक कहना पड़ता है कि अरे ! अरे ! यह सारा संसार ही नष्ट होने जा रहा है।*

"स्याद्वादो विद्यते यस्मिन् पक्षपातो न विद्यते,"

(स एव जैन धर्मः)

भावार्थः—*जिस धर्म के तत्त्व ज्ञान की विचार-धारा स्याद्वाद से गूंथी हुई है और जो पक्ष-पात पूर्वक तत्त्व ज्ञान की विवेचना नहीं करता है, ऐसा श्रेष्ठ धर्म केवल जैन-धर्म ही है।*

"जैन एव सतां धर्मः कर्मघर्मघनाघन ।"

(करुणा वज्रायुध नाटक)

भावार्थः—*जैन धर्म ही सज्जन पुरुषों का धर्म है, जो कि कर्म रूप धूप को नष्ट करने में शीतल मेघ के समान है।*

(५)

आत्म-तत्त्व

"चिदानन्दरूपं शिवोऽहं शिवोऽहम् ।"

(वेदान्त-दर्शन)

भावार्थः—मैं चित् अर्थात् अनंत ज्ञान-स्वरूप हूँ, और अनन्त आनंद-स्वरूप हूं, एवं अनन्त कल्याण रूप भी मैं ही हूँ। तदनुसार मैं ही शिव हूं, और मैं ही परमात्मा हूँ।

"शुद्धात्मद्रव्यमेवाऽहं ।"

भावार्थः—अनादि अनंत रूप और शुद्ध आत्म द्रव्य रूप मैं ही हूं।

"यः पश्यति स्वयं सर्वं यं न पश्यति कश्चनः ।"

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—आत्म-शक्ति इतनी विस्तीर्ण है कि इसका पूर्ण विकास होने पर यह तो सभी को देख सकता है, परन्तु इसको कोई भी नहीं देख सकता है।

"बंधमोचनकर्त्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चनः ।"

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—कर्मों का बंधन करने वाला, और कर्मों से मुक्ति देने वाला अपनी आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है ।

"नास्ति चात्मसमं बलम् ।"

भावार्थः—आत्म-शक्ति के बराबर दूसरा बल और क्या हो सकता है ? अर्थात् दूसरा कोई नहीं है ।

"आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी ।"

(मनु स्मृति)

भावार्थः—आत्मा की सत् अथवा असत् प्रवृत्तियों के प्रति केवल आत्मा ही उत्तरदायी है-साक्षी है ।

"आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—आत्मा ही-(सात्विक प्रवृत्ति करने की दशा में तो) अपने आप का बंधु है और (कुत्सित प्रवृत्ति करने की दशा में) अपने आपका शत्रु भी है ।

"एकाक्येव भ्रमत्यात्मा दुर्गे भवमरुस्थले ।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—संसार रूप विकट मरुस्थली में यह आत्मा अकेला ही नाना पीड़ाओं को सहन करता हुआ भ्रमण करता रहता है ।

"यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिंतयेत् ।"

(हरित-स्मृति)

भावार्थः—*सभी प्राणियों द्वारा जो जानने योग्य है, जो ध्यान करने योग्य है, वही पर ब्रह्म रूप ईश्वर मैं ही हूँ, ऐसा चिंतन-मनन-निदिध्यासन करो ।*

"उद्धरेदात्मानमात्मना मग्नं संसारवारिधौ ।"

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—*विषय-कषाय रूप संसार-सागर में डूबी हुई अपनी इस आत्मा को आत्म-शक्ति द्वारा ही विषय-कषाय पर विजय प्राप्त करके चरम विकसित करो ।*

"एक उत्पद्यते जन्तुरेक एव विपद्यते ।"

(महावीर-चरित)

भावार्थः—*प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मृत्यु प्राप्त करता है ।*

"पृथक्कृतस्तु कर्मभ्यो नात्मा स्यात् कर्मवान् पुनः ।"

भावार्थः—*कर्मों के साथ आत्मा की आत्यंतिक भिन्नता हो जाने पर आत्मा कर्मों के साथ पुनः परिलिप्त नहीं होता है ।*

"अयमात्मैव संसारः कषायेन्द्रियनिर्जितः ।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*कषाय और इन्द्रियों द्वारा पराजित यह आत्मा ही*

संसार है। विषय-कषाय से उत्पन्न जन्म-मरण का परिणाम आत्मा को ही भोगना पड़ता है।

"सर्वेऽपि जीवा स्वजना जाता परजनाश्च ते।"

(त्रिषष्ठि पुरुष चरित्र)

भावार्थः—इस अनन्त संसार में परिभ्रमण करते समय विश्व के सभी प्राणी समय समय पर कौटुम्बिक बंधु-बांधव भी हुए हैं और समय समय पर शत्रु-वैरी आदि परजन भी हुए हैं।

"निरामयो निराभासो निर्विकल्पोऽहमाननतः।"

(अपरोक्षानुभूति)

भावार्थः—मैं कषाय आदि रोगों से रहित हूं, मैं मिथ्यात्व आदि भ्रम से परे हूँ, मैं कल्पनामय भी नहीं हूँ और मैं अविनीत भी नहीं हूँ।

"मुञ्चात्मन्! भवचेष्टितान्यपि गिरिप्राप्तप्रतिष्ठो भव।"

(संवेग द्रुम कन्दली)

भावार्थः—हे आत्मन्! संसार की चेष्टाओं को,-जन्म-मरण उत्पादक कषायों को तू छोड़ दे, और पर्वत के समान अचल प्रतिष्ठा को-(मोक्ष-पद को) प्राप्त करो।

"निर्विकारो निराकारो निरवद्योऽहमव्ययः।"

(अपरोक्षानुभूति)

भावार्थः—राग द्वेष से जनित किसी भी प्रकार के विकार से

में रहित हूँ, शरीर-इन्द्रिय आदि भौतिक पदार्थों से रहित होने के कारण से मैं पूर्णतया निराकार हूँ, मैं सर्वथा निर्दोष हूँ, और मैं अनादि-अनन्त रूप होने से अव्यय हूं, अक्षय हूँ, और शाश्वत् हूं ।

"मूढ ! त्वं पुनरेक एव नरके सोढ़ासि चाढं दृढ़म् ।"

(संवेग द्रुम कन्दली)

भावार्थः—*अरे मोह-मुग्ध मूर्ख ! तू अकेला ही नरक में प्रचुर और घोर दु'खों को सहेगा । तुझे सहन करना पडेगा ।*

"उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थ.—*आत्म-संयम द्वारा ही आत्मा का विकास करो, कुत्सित प्रवृत्तियों द्वारा आत्मा को विषाद अथवा खेद मत पहुचाओ ।*

"उद्धरेदात्मनात्मानम् ।"

(महाभारत पर्व छठा)

भावार्थः—*आत्म-शक्ति द्वारा ही आत्मा का विकास करो ।*

"तदात्मैव भवेच्छत्रुरात्मनो दुःखबन्धकः ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*कषाय-युक्त प्रवृत्तियाँ करने के कारण से यह आत्मा अपने लिये दुःखों का बंधन करती हुई अपने स्वयं के लिये शत्रु बनती है ।*

"भज विगतविकारं स्वात्मनात्मानमेव ।"

—शुभ-चन्द्राचार्य

भावार्थः— *विकार रहित अनन्त शुद्ध स्वरूप अपनी आत्मा का अपनी आत्मा द्वारा ही ध्यान, चिंतन, मनन और अध्ययन के रूप में अनुभव करते रहो।*

(६)

ज्ञान-तत्त्व

"ज्ञानान्मोक्षः ।"

भावार्थः—सम्यक् ज्ञान होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है ।

"ज्ञानमेव शक्तिः ।"

भावार्थः—भौतिक-साधना में और आध्यात्मिक साधना में ज्ञान ही प्रबल और प्रचंड शक्ति है ।

"न ज्ञानात्परं चक्षुः ।"

भावार्थ—भौतिक पदार्थों के और आध्यात्मिक तत्त्वों के स्वरूप को समझने के लिये ज्ञान के अतिरिक्त दूसरी कोई आँख इतनी शक्तिशाली नहीं हो सकती है ।

"ज्ञानं हि मूलमतुलं सकलश्रियां तत् ।"

भावार्थः—सभी प्रकार की मांगलिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये ज्ञान ही एक अनुपम मूल आधार है ।

"अज्ञान-नाशिनी प्रज्ञा ।"

(चाणक्य-नीति)

भावार्थः—*बुद्धि अज्ञान का नाश करने वाली है।*

"नररत्ने ज्ञानमेव सारं ।"

(माधव-वया)

भावार्थः—*मनुष्य रूप रत्न में ज्ञान ही सार तत्त्व है।*

"बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ।"

(वशिष्ठ-स्मृति)

भावार्थः—*बुद्धि की निर्मलता और पवित्रता ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हुआ करती है।*

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—*इस विशाल विश्व में ज्ञान के समान पवित्र पदार्थ दूसरा कोई भी नही है।*

"ज्ञानं निदानं श्रियः ।"

भावार्थः—*ज्ञान ही लक्ष्मी का मूल कारण है।*

"ज्ञानं मनः पावनम् ।"

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—*ज्ञान मन के विकारों को नष्ट करके उसको पवित्र बनाने वाला है।*

"ज्ञानं तु तत्त्वार्थ-विचारणाच्च ।"

भावार्थः—*तत्त्वों की सूक्ष्म और गंभीर विचारणा करने से ही सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति हुआ करती है ।*

"ज्ञानं जगल्लोचनम् ।"

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—*जगत् की तीनों काल की घटनाओं को देखने वाला, ऐसा ज्ञान ही वास्तविक आँख है ।*

"ज्ञानं सर्वार्थसाधकम् ।"

(ज्ञान-पंचमी कथा)

भावार्थः—*सभी प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति में ज्ञान ही साधक है ।*

"ज्ञानं तृतीयं पुरुषस्य नेत्रं ।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—*ये चर्म चक्षु तो केवल वर्तमान में उपस्थित भौतिक पदार्थ को ही देख सकते हैं, किन्तु मनुष्य के ज्ञान रूप एक तीसरा नेत्र ऐसा भी है, जो कि तीनों काल की घटनाओं को जान सकता है ।*

"ज्ञानं नाम महारत्नम् ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*अन्य रत्न पदार्थ तो जड़ हैं; किन्तु ज्ञान नामक चेतना-शील तत्त्व सर्व श्रेष्ठ और महान् रत्न है ।*

"मनो ज्ञानेन शुद्ध्यति ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*मन ज्ञान द्वारा ही पवित्र हुआ करता है ।*

"नास्ति ज्ञान–समं सुखम् ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*ज्ञानानुभव के समान दूसरा कोई भी सुख नहीं हो सकता है ।*

"सा विद्या या विमुक्तिदा ।"

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—*जो मुक्ति प्रदान कर सकती है, वही वास्तव में विद्या है ।*

"ज्ञान भावनया कर्माणि नश्यन्ति न संशयः ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*सम्यक् ज्ञानपूर्वक सात्विक भावनाओं की आराधना करने से कर्म नष्ट हुआ करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ।*

"ज्ञातव्यं स्वानुभूतितः ।"

भावार्थः—*अपने स्वयं के अनुभव द्वारा ही वस्तुस्थिति को जानना चाहिये ।*

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थ.—ज्ञान रूप दिव्य अग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है ।

"ज्ञानं लब्ध्वा परं शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति कर लेने पर यह आत्मा अजर-अमर शांति को शीघ्र ही प्राप्त कर लेती है ।

"ज्ञानं नीतितरंगिणी कुलगिरिः ।"

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—ज्ञान एक ऐसा सर्व गुण संपन्न पर्वत है, कि जिससे विविध नीतियाँ रूप अनेक नदियाँ निकला करती हैं ।

"तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थ.—तप की साधना करने से पाप नष्ट हो जाते हैं और ज्ञान की आराधना करने से "आत्मा की अनंतता" प्राप्त होती है ।

"विद्यादुपशमं व्याधेः ।"

भावार्थः—विद्या से रोग दूर हुआ करते हैं ।

"बुद्धिर्यस्य बलं तस्य ।"

भावार्थः—जो बुद्धिमान् है, वही बलवान् है।

"विद्या या पुस्तके वृथा।"

भावार्थः—जो विद्या कंठस्थ न हो, और आवश्यकता पड़ने पर जिसके लिये पुस्तक की आवश्यकता लेनी पड़े, वह विद्या व्यर्थ है।

"नास्ति विद्यासमं चक्षुः।"

(महाभारत पर्व १२)

भावार्थः—विद्या के समान उत्तम नेत्र दूसरा कोई भी नहीं है।

"विद्या समं नास्ति शरीर-भूषणम्।—"

भावार्थः—विद्या के बराबर शरीर को सुशोभित करने वाला दूसरा कोई भी अलंकार नहीं है।

"विद्या सर्वस्य भूषणम्।"

भावार्थः—विद्या सब के लिये अलंकार समान होती है।

"विद्या स्तब्धस्य निष्फला।"

भावार्थः—दुराग्रही और अभिमानी की विद्या निष्फल होती है।

"विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा।"

भावार्थः—जिन्हें विद्या प्राप्त करने की उत्कट लालसा है, वे न तो सुख की आकांक्षा ही करते हैं और न निद्रा की ओर ही ध्यान दिया करते हैं।

"प्रज्ञा बलं च सर्वेषु मुख्यकार्येषु साधनम् ।"

भावार्थः—*सभी मुख्य मुख्य कार्यों की साधना में बुद्धि बल ही सर्वोत्तम साधन है।*

"बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।"

भावार्थः—*जैसे कर्म किये जायेंगे, उन्हीं के अनुसार बुद्धि और भावना होगी।*

"सद्विद्या यदि किं धनैः ।"

भावार्थः—*यदि उत्तम विद्या हमारे पास है, तो यही सर्वश्रेष्ठ धन है, भौतिक धन से क्या तात्पर्य है?*

"प्रज्ञानुसारिणी विद्या ।"

भावार्थः—*जैसी स्वाभाविक प्रतिभा होती है, उसी के अनुसार विद्या की प्राप्ति हुआ करती है।*

"मोदाः सर्वे विद्ययैव ।"

भावार्थः—*विद्या से ही सभी प्रकार के आनंद की प्राप्ति हुआ करती है।*

"बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—*यदि बुद्धि नष्ट हो जाती है, तो सब कुछ नष्ट हो जाता है।*

"अविद्याजीवनं शून्यम् ।"

भावार्थः—*जो जीवन विद्या से रहित है, वह शून्य के समान है।*

"पठतो नास्ति मूर्खत्वम् ।"

भावार्थः—*निरन्तर पठन-पाठन करते रहने से मूर्खता नष्ट हो जाती है।*

"किमज्ञेयं हि धीमताम् ?"

भावार्थः—*बुद्धिमान् पुरुषों की दृष्टि में कौन सी बात अज्ञात रूप ही अथवा अज्ञेय रूप ही रहती है ? अर्थात् कुछ भी न तो अज्ञात ही रहता है और न अज्ञेय ही रहता है।*

"वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।"

भावार्थः—*परस्पर में वाद-विवाद करने से, ज्ञान-चर्चा करने से, तर्क-वितर्क रूप संवाद कहने-सुनने से तत्त्वों का गूढ़ स्वरूप जाना जा सकता है।*

"परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ।"

भावार्थः—*दूसरों द्वारा किये गये संकेतों का तात्पर्य समझ लेना ही है कर्त्तव्य जिस शक्ति का, उस शक्ति को ही "बुद्धि" शब्द से कहा जाता है।*

"अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—जब मिथ्या ज्ञान से सम्यक् ज्ञान ढंक जाता है, उस अवस्था में प्राणी मोह-मुग्ध हो जाया करते हैं।

"अल्पविद्यो महागर्वी।"

भावार्थः – जो थोड़ा सा पढ़ा लिखा होगा है, वह महान् अहंकारी हुआ करता है।

"ज्ञानान्मुक्तिः प्रजायते।"

भावार्थः—ज्ञान से ही सभी प्रकार की परिस्थितियों से छुटकारा मिला करता है।

"ज्ञानामृतं सदा पेयं चित्ताह्लादनमुत्तमम्।"

(तत्त्वामृत

भावार्थः—जो सदैव चित्त को आनंदित करता रहता है और जो सर्वोत्तम तत्त्व है, ऐसे ज्ञानरूप अमृत का पान सदा ही कर चाहिये।

"अज्ञता कस्य नामेह नोपहासाय जायते ?"

भावार्थः—इस संसार में मूर्खता किस मनुष्य के लिये ह कराने के लिये कारण-भूत नहीं हुआ करती है ?

"बोधे बोधे सच्चिदानंदभासः।"

भावार्थः—निरन्तर ज्ञानाभ्यास करने से आत्मा का वह आदर्श स्वरूप प्रतीत हो जाता है, जो कि "सत्, चित्, और आनंद" रूप

है। सत् का अर्थ है--अनादि-अनन्त रूप। चित् का तात्पर्य है-ज्ञान स्वरूप और आनंद का मतलब है-अनंत निर्मलता।

"इदं च नास्ति न परं च लभ्यते।"

भावार्थः—यदि सम्यक् ज्ञान नहीं है, तो सम्यक चारित्र भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है।

"परं ज्ञानफलं वृत्तं विभूतिर्न गरीयसी।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—ज्ञान का सर्व श्रेष्ठ फल चारित्र ही है। वैभव की विशालता चारित्र-निर्माण में सहायक नहीं हुआ करती है।

"किं परमं विज्ञानं? स्वकीयगुणदोषविज्ञानम्।"

—पद्मानन्द

भावार्थः—सर्वोत्कृष्ट विज्ञान क्या है? अपने गुणों को और दोषों को भली प्रकार से जान लेना, यही उत्तम विज्ञान है।

"भव-क्लेश विनाशाय पिब ज्ञानसुधारसम्।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—जन्म-मरण के दुःखों का नाश करने के लिये ज्ञान रूपी सुधा रस का पान करो।

"विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।"

भावार्थः—विद्या सभी इन्द्रिय-सुखों को प्राप्त कराने वाली है, विद्या आनंद प्रदान करने वाली है, और विद्या गुरुओं की भी गुरु है।

"ज्ञानं च ध्यानयोगार्थं सर्वपापैः स मुच्यते ।"

(इतिहास-समुच्चय)

भावार्थः—जो आत्मा अपनी ज्ञान-शक्ति को ध्यान रूप योग की साधना में व्यय करती है, वह आत्मा सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाती है ।

"ज्ञानेन कुरुते यत्नं यत्नेन प्राप्यते महत् ।"

भावार्थः—ज्ञान की प्रेरणा से ही आत्म-विकास के मार्ग में प्रयत्न-गति करता है और उसी के परिणाम स्वरूप ईश्वरत्व रूप महान् फल की प्राप्ति हुआ करती है ।

"सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।"

(मनु स्मृति)

भावार्थः—इन समस्त शास्त्रों के ज्ञान की अपेक्षा से एक आत्म ज्ञान ही उत्कृष्ट ज्ञान कहा गया है ।

"तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।"

(ज्ञान-सार)

भावार्थ.—वह ज्ञान सम्यक् ज्ञान की संज्ञा कभी भी नहीं प्राप्त कर सकता है, जिसकी उपस्थिति में राग और द्वेष स्वच्छंदता पूर्वक अपना विकास करते रहते हैं ।

"अज्ञानप्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते ।"

(अपरोक्षानुभूति)

भावार्थः—अज्ञान के प्रभाव से उत्पन्न सभी प्रकार का माया-जाल अर्थात् कर्मों का खेल सिर्फ ज्ञान-शक्ति के बल से ही तत्काल नष्ट हो जाया करता है।

"नास्ति ज्ञानसमो दीपः सर्वान्धकारनाशने।"

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—भौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के अंधकार को नष्ट करने में ज्ञान-शक्ति के बराबर दूसरा कोई दीपक नहीं है।

"मोक्ष-कामना उदारधीः।"

भावार्थः—मोक्ष की आकांक्षा करना, यही सर्वोत्तम बुद्धि है।

"गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।"

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—विद्वानों को चाहिए कि वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी नवीन-नवीन विद्याओं को अपनी संपूर्ण शक्ति द्वारा वे सीखते रहें।

"तत्त्वावबोधादपयाति मोहः।"

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—आत्मा और परमात्मा रूप तत्त्वों का चिंतन, मनन, और अध्ययन करने से मोह-विकार नष्ट हो जाता है।

"कणशः क्षणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्।"

भावार्थः—धनवान् बनने के लिए तो एक-एक कण का भी

यथाविधि संग्रह करे और विद्वान् बनने के लिए एक-एक क्षण का भी सदुपयोग करे।

"किं जीवितेन पुरुषस्य निरक्षरेण ?"

भावार्थः—*शिक्षा के अभाव में मूर्ख रूप से ही जीवन व्यतीत करना, ऐसे मानवीय जीवन से क्या लाभ होने वाला है ?*

"कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते ।"

भावार्थः—*आस्रव के कार्यों से तो यह प्राणी संसारबद्ध होता है और ज्ञानाभ्यास से संसार के बंधनों से मुक्त होता है।*

"तज्ज्ञानी तु त्रिगुप्तात्मा निहन्त्यन्तर्मुहूर्तके ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*जो ज्ञान-शील होकर मन-वचन-काया रूप तीनों गुप्ति का पालक है, वह आत्मा अन्तर्मुहूर्त में ही अपने कर्मों को क्षीण कर सकती है।*

"अनन्यापेक्षमैश्वर्यं ज्ञानमाहुर्मनीषिणः ।"

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—*ज्ञानी पुरुषों ने प्ररूपणा की है कि ज्ञान एक ऐसा वैभव है, जो कि अपने विकास में अन्य भौतिक पुद्गलों की सहायता नहीं लिया करता है।*

(७)

दर्शन-सम्यक्त्व
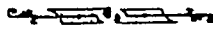
"मूलं धर्मस्य सम्यक्त्वम् ।"

(हिंगुल-प्रकरणं)

भावार्थः—*सम्यक्त्व ही धर्म का मूल है । सच्ची श्रद्धा ही धर्म का आधार है ।*

"सम्यक्त्वलाभान्न परो हि लाभः ।"

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—*यदि सम्यक्त्व रूप रत्न का लाभ हो गया, तो फिर इससे अधिक श्रेष्ठ लाभ दूसरा कोई नहीं है ।*

"सम्यक्त्वं परमं रत्नम् ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*शुद्ध श्रद्धा ही सर्वोत्तम रत्न है ।*

"सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य ध्रुवं निर्वाणसंगमः ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*जो वास्तव में सम्यक्त्व से युक्त है, निश्चय ही उसको मोक्ष की प्राप्ति होगी।*

"विना समत्वमारब्धे ध्याने स्वात्मा विडम्ब्यते।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*सम्यक्त्व अथवा समता के विना ध्यान के प्रारंभ कर देने पर अपनी आत्मा केवल विडम्बना का ही अनुभव करती है।*

"सम्यक्त्वमूलानि महाफलानि।"

(धर्म-परीक्षा)

भावार्थः—*अनन्त ज्ञान और यथाख्यात चारित्र आदि रूप महाफलों की प्राप्ति का मूल स्थान सम्यक्त्व ही है।*

"सम्यक्त्वसहिता एव शुद्धा दानादिकाः क्रियाः।"

(अध्यात्मसार)

भावार्थः—*दान आदि धार्मिक प्रवृत्तियाँ उसी अवस्था में परम पवित्र रूप हैं, जब कि वे श्रद्धा पूर्वक की जाती हो।*

"सत्स्वपि सुदुर्लभा बोधिः।"

(प्रशमरति)

भावार्थः—*मानव-जन्म, आर्य-कुल, धर्म-संयोग, और शरीर-स्वस्थता, आदि संयोगों के मिल जाने पर भी सम्यक्त्व जैसे श्रेष्ठ रत्न की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ ही है।*

"मनः शुद्धिश्च सम्यक्त्वे।"

(अध्यात्म-सार)

भावार्थः—सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर ही, मन में विशुद्धि उत्पन्न हुआ करती है। अर्थात् सम्यक्त्व के बल पर ही कषाय का विनाश हुआ करता है।

"तत्त्वनिश्चयरूपं तद् बोधिरत्नं सुदुर्लभम्।"

(योग शास्त्र)

भावार्थः—वस्तु-तत्त्व के सम्यक् स्वरूप पर विश्वास (श्रद्धा) होने रूप एवं तत्त्व निश्चय रूप श्रद्धा रत्न की प्राप्ति होना अत्यंत कठिन ही है।

"कोऽप्यन्य एव महिमा ननु शुद्धदृष्टेः।"

(कर्पूर प्रकरण)

भावार्थः—निश्चय ही सम्यक् दृष्टि की महिमा कुछ निराली ही एवं अवर्णनीय ही हुआ करती है।

"सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मणा न हि बध्यते।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—जो आत्मा सम्यक् दर्शन वाली होती है, वह कर्मों से लिप्त नहीं हुआ करती है। क्यों कि उसके विचारों में कषाय का पुट और विकारों का मिश्रण नहीं हुआ करता है।

"सम्यक्त्वमुच्यते सारं सर्वेषां धर्मकर्मणाम्।"

(अध्यात्मसार-प्रबन्ध)

भावार्थः—सभी प्रकार की धार्मिक-क्रियाओं में और धार्मिक प्रवृत्तियों में केवल सम्यक्त्व-श्रद्धा ही सार रूप से श्रेष्ठ कही जाती है।

"पात्रंचारित्र चित्तस्य सम्यक्त्वं श्लाघ्यते न कैः ?"
(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—सम्यक्त्व की प्रशंसा किन-किन द्वारा नहीं की जाती है ? अर्थात् तीर्थेन्द्र, नरेन्द्र और देवेन्द्र सभी इसकी प्रशसा करते हुए नहीं थका करते हैं । इसका कारण यही है कि यह मोक्ष-दाता चारित्र रूप धन संपत्ति को रखने का एक विश्वसनीय पात्र है ।

"परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ?"

भावार्थः—उस परम पिता परमात्मा के चिन्तन-मनन में कौन संलग्न नहीं हुआ है ? अर्थात् सभी मानव-प्राणी उस परमात्मा का ध्यान करना चाहते हैं ।

"चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।"
(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—धार्मिक और सात्त्विक प्रवृत्तियाँ केवल चित्त की शुद्धि के लिये ही हैं, चित्त से कषाय-जनित विकारों को हटाने के लिये ही हैं । न कि इन्द्रिय भोग रूप भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिये हैं ।

"समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ !"

भावार्थः—हे नाथ ! हे स्वामिन् ! मेरा मन सदा ही समता रूप धर्म-समाधि में लीन रहे, यही मेरी नम्र प्रार्थना है ।

"श्री रत्नाकर मंगलैकनिलय श्रेयस्करं प्रार्थये ।"

भावार्थः—हे प्रभो ! आपकी सेवा में मेरी यही प्रार्थना हे कि

मुझे वह सम्यक्त्व प्रदान करो, जो कि अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप रूप लक्ष्मी से युक्त है, जो कि समुद्र के समान गुण-रत्नों का भंडार है, जो कि एकान्त रूप से मंगलकारी स्थान स्वरूप है, और जो कि अनन्त कल्याण स्वरूप मोक्ष का दाता है।

"निर्ममः सर्वभावेषु समत्वमवलम्बते।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—जो प्राणी विश्व के सभी पदार्थों पर निर्ममता अनासक्ति, निर्मोह रखता है, वह समता धर्म जैसी उत्तम समाधि का अधिकारी होता है।

"आत्मैक्यबोधेन विना मुक्तिर्न सिध्यति ब्रह्म शतांतरेऽपि।"

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—आत्म तत्त्व का निश्चित रूप से ज्ञान हुए विना सैकड़ों युग वीत जाने पर भी मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है।

"किं सर्वस्य प्रदानेन तत्त्वं नोन्मीलितं यदि।"

(योग सार)

भावार्थः—सर्वस्व का दान करने से भी क्या लाभ है? जब कि वास्तविक तत्त्व का अनुभव ही नहीं हुआ हो।

"अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।"

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—यदि आत्मानुभूति नामक उत्कृष्ट तत्त्व का ज्ञान

नहीं हुआ है तो केवल शास्त्रों को इधर उधर करके पढ़ने मात्र से ही कोई विशेष लाभ होने वाला नहीं है।

"आत्मवत् सर्व-भूतानि यः पश्यति स पश्यति।"

(आपस्तम्ब स्मृति)

भावार्थः—इन स्थूल नेत्रों द्वारा देखना तो भौतिक देखना है, अतएव वास्तविक देखना उसे ही कहते हैं, जो कि अपनी आत्मा के समान ही विश्व के सभी प्राणियों को देखता है।

"पिबत जितविपक्षं दर्शनाख्यं सुधाम्बु।"

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—जिसने अन्य सभी विपक्षों पर विजय प्राप्त कर ली है, और जो अक्षय-आनंद रूप अमृत-जल के समान है, ऐसे दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व रूप जल का पान करो।

"सम्यक्त्वपूतसलिलैः कुरुताभिषेकम्।"

(सुभाषित-रत्न-भांडागार)

भावार्थः—सच्ची श्रद्धा से पवित्र विचार रूप जल द्वारा स्नान करो, क्यों कि ऐसा स्नान ही कषाय रूप मल को धो सकता है।

"प्राप्ता सुदुर्लभा बोधिः शासने जिनभाषिते।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जिनेन्द्र देव द्वारा प्ररूपित धर्म-शासन पर श्रद्धा होना अत्यंत दुर्लभ ही है।

"भवे भवेऽनन्तसुखी सुदृष्टिः ।"
(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—सच्ची श्रद्धा वाली आत्मा प्रत्येक भव में अनन्त सुखों को प्राप्त किया करती है ।

"आत्मबुद्धिः सुखायैव ।"

भावार्थः—अपनी आत्मा की वास्तविक अनुभूति ही परम आनंद प्रदान करने वाली है ।

"ज्ञाते तत्त्वे कः संसार ?"
(काव्यानंद)

भावार्थः—जब आत्मा की और माया का वस्तु-तत्त्व समझ में आ गया, तो फिर यह संसार स्पष्ट रूप से शून्य के समान दिखलाई पड़ने लगता है ।

"दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।"
(मनु-स्मृति)

भावार्थ.—जो आत्मा सम्यक् दर्शन से रहित है, वह अनेक बार जन्म मरण रूप संसार को प्राप्त करता रहता है ।

"किमुत तदिदमेकं दुर्लभं बोधिरत्नम् ।"
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—अन्य सभी वस्तुएं सरलता पूर्वक प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु यह एक सम्यक्त्व रूप रत्न ही अत्यंत कठिनाई से प्राप्त होने योग्य है ।

"सम्यग्विचारात् परमौषधं न ।"

(हृदय प्रदीप)

भावार्थः—जन्म-मरण रूप संसार परिभ्रमण का रोग मिटाने के लिये सम्यक् विचारों से, सच्ची श्रद्धा से बढ़कर दूसरी कोई श्रेष्ठ औषधि नहीं है ।

"उदिते परमानन्दे नाहं न त्वं न वै जगत् ।"

भावार्थः—अनंत आनंद रूप आत्मा की अनुभूति हो जाने पर न तो "मैं मैं" का अहंकार ही रहता है और न "तू तू" का भेद भाव ही । इसी तरह से संपूर्ण माया जाल रूप संसार का भ्रम भी मिट जाता है । शुद्ध अद्वैतवाद का विमल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ।

"तावद्विवादी जनरञ्जकश्च यावन्न चैवात्मरससुखज्ञः ।"

(हृदय प्रदीप)

भावार्थः—मनुष्य तभी तक वाद-विवाद का प्रेमी, और जनता के मन को प्रसन्न करने वाला होता है, जब तक कि वह आत्मानुभव में सुख का जानने वाला नहीं बन जाता है ।

"रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते"

(योग शास्त्र)

भावार्थः—तीर्थंकरों द्वारा, अरिहंतों द्वारा कहे हुए तत्त्वों पर और सिद्धान्तों पर रुचि रखना, उन पर पूर्ण तया विश्वास करना, इसे ही "सम्यक्-श्रद्धा" कहते है ।

(७)

चारित्र-तत्त्व

"जीवितं चारुचरित्रमुक्तम् ।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थ —*निर्दोष चारित्र ही वास्तव में सच्चा जीवन है ।*

"जिनेश्वरैस्तदुगदितं चरित्रं समस्त कर्मक्षयहेतुभूतम् ।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः--*वीतराग प्रभु जिनेश्वर देव ने चारित्र को सभी प्रकार के कर्मों को क्षय करने वाला फरमाया है ।*

"यस्यास्ति चारित्रमसौ गुणज्ञः ।"

(पर्व कथा-मौन एकादशी)

भावार्थः—*जो सम्यक् चारित्र वाला है, वही गुणज्ञ है ।*

"सच्चारित्रसमायुक्ताः शूरा मोक्षपथे स्थिताः ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*जो सम्यक् चारित्र की परिपालना निर्दोष रीति से किया करते हैं, ऐसे धर्म शूर महापुरुष ही मोक्ष-माग के सच्चे पथिक हैं ।*

"कुलं पवित्रीकुरु सच्चरित्रतः ।"

(उपदेश-ग्रंथ माला)

भावार्थः—सच्चारित्र का आचरण करके ही अपने कुल को पवित्र करो।

"सदाचारतया यतिः (राजते)"

—पद्मानंद

भावार्थः—पवित्र आचार से ही साधु शोभा पाता है।

"निरस्तभूषोऽपि यथा विभाति पवित्रचारित्रविभूषितात्मा ।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थ—पवित्र चारित्र वाले महात्मा बिना आभूषणों के भी अत्यंत सौन्दर्य शील दिखाई देते हैं।

"भ्रातः ! संयमवर्मणा कुरु तदा रक्षा विधिं सर्वतः ।"

(संवेग द्रुम कन्दली)

भावार्थः—अरे भाई ! संयम रूप कवच द्वारा अपने मन की और इन्द्रियों की सभी प्रकार से एवं चारों ओर से आश्रव स्वरूप कार्यों से रक्षा करो।

"चरिताऽऽज्ञैव चारित्रम् ।"

(योग सार)

भावार्थः—ग्रहण की हुई सम्यक् प्रतिज्ञा का निर्दोष रीति से पालन करना ही चारित्र है।

"संयमो हिं महामंत्रस्त्राता सर्वत्र देहिनः ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थ—शरीर धारियों की सर्वत्र रक्षा करने वाला महा मंत्र चारित्र ही है ।

"सर्वसावद्ययोगानाम् त्यागश्चारित्रमिष्यते ।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—मन, वचन, और काया की समस्त पाप मय प्रवृत्ति का त्याग करना ही चारित्र माना गया है ।

"यदा कषायः शममेति पुंसस्तदा चरित्रं पुनरेति पूतम् ।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—जब पुरुष का कषाय शांत हो जाता है, तभी वह पवित्र चारित्र को प्राप्त कर सकता है ।

"व्यर्थाश्चारित्रेण विना भवंति ज्ञात्वेह सन्तश्चरिते यतन्ते ।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः- सम्यक् चारित्र के अभाव में दया दान सर्व निष्फल होते हैं, ऐसा जान करके ही महात्मा सम्यक् चारित्र में यत्नशील होते हैं ।

"आज्ञैव भव-भञ्जनी ।"

(योग-सार)

भावार्थः—वीतराग जिनेन्द्र प्रभु का आदेश-उपदेश ही जन्म-मरण रूप संसार को नष्ट करने वाला है ।

(८)

तप और त्याग
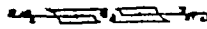
"तपो हि परमं श्रेयः ।"

(रामायण पर्व ७)

भावार्थः—निश्चय ही तप सर्व श्रेष्ठ कल्याण कारी और मंगल कारी व्रत है ।

"तपोधीना हि संपदः ।

भावार्थः—धन-संपत्ति और वैभव केवल तप के ही आधीन हैं । तप से ही इनकी प्राप्ति हुआ करती है ।

"तपसा किल्विषं हन्ति ।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—तप द्वारा पाप का नाश होता है । तप से असत् प्रवृत्तियों के स्थान पर सत् प्रवृत्तियाँ जीवन में चालू हो जाती हैं ।

"तपः सीमा मुक्तिः ।"

भावार्थः—तपस्या की सीमा, तपस्या का अंतिम परिणाम मोक्ष है ।

"नास्ति त्याग-समं सुखम् ।"

(महाभारत पर्व बारहवाँ)

भावार्थः—त्याग के बराबर सुख नहीं है। वस्तु का संयोग होने पर भी इच्छा पूर्वक उसके भोग से मुँह मोड़ लेना, ऐसा त्याग ही अलौकिक सुख रूप होता है।

"त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—इच्छा पूर्वक प्राप्त भोगों के परित्याग का अंतिम परिणाम "अनन्त शांति" ही है।

"त्याग एव हि सर्वेषां मोक्षसाधनमुत्तमम् ।"

(भाल्लवीय श्रुति)

भावार्थः— समस्त प्राणियों के मुक्ति का उत्तम साधन प्राप्त भोगों का त्याग कर देना ही है।

"त्यागाज्जगति पूज्यन्ते पशुपाषाणपादपाः ।"

भावार्थः—पशु, पत्थर, और वृक्ष आदि पदार्थ पर-हित के लिये अपना बलिदान देकर अपने त्याग द्वारा ही संसार में उपादेय और आदरणीय बनते हैं।

"स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ।"

भावार्थः—इन सांसारिक भोगों का अपनी इच्छा-पूर्वक परित्याग कर देने से अनन्त सुख रूप मोक्ष स्थान की प्राप्ति होती है।

"सकामनिर्जरासारं तप एव महत् फलम् ।"

(योग शास्त्र)

भावार्थः—इच्छा पूर्वक कष्ट, परीषह, उपसर्ग, आदि सहन करने से सकाम-निर्जरा की उत्पत्ति होती है, जो कि आदर्श तपस्या ही है और जिसका महान् फल यही है कि इससे कर्म क्षय हो जाया करते है ।

"तपः सकललक्ष्मीणां नियंत्रणमश्रृंखलम् ।"

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—तप सभी प्रकार के वैभव को विना सांकल के ही बांध कर नियंत्रण में रखने वाला है ।

"तपो हि दुरतिक्रमम् ।"

(महाभारत)

भावार्थः—विश्व में तप ही अजेय है । अर्थात् तप की साधना करना वास्तव में अत्यंत कठिन कार्य ही समझना चाहिये ।

"तपस्या कर्माजीर्णहरीतकी ।"

(आचारोपदेश)

भावार्थः—कर्मों की विपुलता रूप अजीर्ण को हरण करने की शक्ति रखने वाली केवल तपस्या ही रामबाण हरड़े है ।

"तपः सर्वाक्षसारंगवशीकरणवागुरा ।"

(आचारोपदेश)

भावार्थः—सभी इन्द्रिय रूप मृगों को अपने वश में करने वाली जाल रूप केवल यह तपस्या ही है।

"तपोऽग्निना ताप्यमानस्तथा जीवो विशुद्ध्यति।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—तप रूप अग्नि से तपाया हुआ यह कर्म-मैल से संयुक्त आत्मा पवित्र बन जाता है। अर्थात् कर्म-मल से रहित हो जाता है।

"तपो मूलमिदं सर्वं दैवं मानुषकं सुखम्।"

(मनु स्मृति)

भावार्थः—देवता संबंधी और मनुष्य संबंधी सभी सुखों की जड़ यह तप मत ही है।

"सर्वेष्वपि तपोयोगः प्रशस्तः कालपर्वसु।"

भावार्थः—सभी पर्व तिथियों में तप करना प्रशंसनीय है और शुभ कारक है।

"तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।"

भावार्थः—तप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और तप से ही यश की भी प्राप्ति होती है।

"प्रक्षीयन्ते न कर्माणि तपः कर्म विना ननु।"

(करुणा वज्रायुध नाटक)

भावार्थः—*तप की आराधना किये विना निश्चय ही कर्म आत्मा से अलग नहीं हुआ करते हैं।*

"कर्मौघं तपसा विना किमपरं हन्तुं समर्थस्तथा ?"

भावार्थः—*कर्मों के समूह को क्षीण करने के लिये तप के सिवाय क्या कोई दूसरा व्रत शक्ति शाली है ?*

"तपोऽथवा किं न करोति देहिनाम् ?"

(सुभाषित-रत्न-संदोह)

भावार्थः—*प्राणियों के लिये तप क्या नहीं करता है ? अर्थात् सभी प्रकार की सिद्धियाँ तप ही प्रदान करता है।*

"तपसा च कृतः शुद्धो देहो न स्यान्मलीमसः।"

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—*तप द्वारा शुद्ध हुआ शरीर पुनः मलीन नहीं होता है। जल-शुद्धि केवल बाहिर की शुद्धि है और थोड़ी देर ही टिकने वाली है, जब कि तप शुद्धि अनंत वर्षों के लिये है।*

"तीव्रतपोऽपास्ता पाप्मानः प्रबला अपि।"

भावार्थः—*पाप दल प्रबल होने पर भी उग्र तप से क्षीण हो जाया करते हैं।*

"उपवासशिखी सर्वं तद्भस्मीकुरुते क्षणात्।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—उपवास रूप अग्नि सभी कर्म रूप इन्धन को क्षण भर में ही भस्म कर देती है। कर्मों की निर्जरा तप से अति शीघ्र हो जाया करती है।

"क्रूरद्वारकपाटभेदि तदरे स्फीतं तपस्तप्यताम्।"

(संवेग द्रुम कन्दली)

भावार्थः—संसार रूपी कैद खाने के क्रूर दरवाजे के किवाडों को चकना चूर करने वाले और मोक्ष सुख को देने वाले इस समृद्ध तप की तुम आराधना करो।

"तदेवहि तपः कार्यं दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत्।"

भावार्थः—तप का आचरण ऐसी रीति से किया जाना चाहिये, कि उसमें आर्त्त-ध्यान, रौद्र-ध्यान की उत्पत्ति की कभी भी संभावना न हो।

"स्वाधीनं त्रिदिवं शिवं च भवति श्लाघ्यं तपस्तन्न किं?"

(सिन्दूर-प्रकरण)

भावार्थः—स्वर्ग की प्राप्ति और मोक्ष की प्राप्ति तप के ही आधीन है। तप की इससे अधिक प्रशंसा और क्या की जा सकती है?

"न भोक्तव्यं, न भोक्तव्यं सम्प्राप्ते तु हरि वासरे।"

(कात्यायन स्मृति)

भावार्थः—एकादशी के दिन कुछ भी नहीं खाना चाहिये।

"उपार्जितानामर्थानाम् त्याग एव हि रक्षणम्।"

भावार्थः—कमाये हुए धन को सात्विक और परोपकार वाले कामों में खर्च कर देना ही उसकी सच्ची रक्षा करना है।

"निरीहस्य निधानानि प्रकाशयति काश्यपी।"

भावार्थः—तृष्णा से रहित और लालसा से मुक्त पुरुष के लिये पृथ्वी (के अधिष्ठाता देव) स्वयं ही विविध सपत्ति के भंडार प्रकाशित कर दिया करती है, (करते हैं)।

"अर्थिनि जने त्यागं विना श्रीरच का ?"

भावार्थः—धनवान् के हृदय में यदि त्याग-दान की भावना नहीं हो तो उसका धन किस काम का है ? याचक सामने उपस्थित हो और उसको दान देने से इन्कार कर दिया जाय तो वह लक्ष्मी किस काम की है ? अर्थात् लक्ष्मी की शोभा दान देने में ही रही हुई है।

(६)

मोक्ष-परमपद
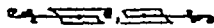
"चिदानन्दमयं साक्षात् मोक्षमात्यन्तिकं विदुः ।"

भावार्थः—जहाँ पर अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द हो, एवं जहाँ पर आत्मा का साक्षात् निर्मल स्वरूप प्रकट हो जाय, उसे ही मोक्ष समझो ।

"अविच्छिन्नं सुखं यत्र स मोक्षः परिपठ्यते ।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—जहाँ पर अनन्तानन्त काल तक निराबाध, अन्तर रहित, और अपरिमित आध्यात्मिक सुख होता है, उसे ही मोक्ष कहते हैं ।

"कृतार्थः साधुबोधात्मा यत्रात्मा तत्पदं शिवम् ।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—जिस अवस्था में आत्मा सभी प्रकार की प्रवृत्तियों से रहित हो जाती है, तथा अखण्ड और सम्पूर्ण सम्यग्ज्ञान से संपन्न हो जाती है, उस अवस्था का नाम ही "मुक्ति-दशा" है ।

"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मतं ।"

भावार्थः—*जिस स्थान पर जाने के पश्चात् पुनः लौटना नहीं होता है, जो स्थान पुनरावर्त्तन से रहित है, उसी श्रेष्ठ स्थान को मोक्ष माना जाता है।*

"कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव ।"

—हरिभद्र सूरि

भावार्थ—*बाह्य-वेश, और सम्यक्ज्ञान से रहित क्रियाएँ मोक्ष-साधक कारण नहीं हैं, किन्तु कषायों से और विकारों से सर्वथा ही छूट जाना, यही सही अर्थों में निश्चित रूप से मुक्ति है।*

"मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदमर्हति ।"

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—*जिस आत्मा ने सोलह कषाय और नव नोकषाय रूप मोह-विकार को पूर्ण रूप से जीत लिया है, और मोह का जड़-मूल से ही नाश कर दिया है, वही आत्मा मोक्ष पद को प्राप्त करने के लिए योग्य है।*

"आत्यंतिको वियोगश्च देहादेर्मोक्ष उच्यते ।

भावार्थः—*विषय-विकार, कर्म आदि का जड़-मूल से ही क्षय हो जाना, और शरीर आदि का सर्वथा छूट जाना ही 'मोक्ष' कहलाता है।*

"कृत्स्नकर्मक्षयान्मोक्षः ।"

—हरिभद्र सूरि

भावार्थः—सभी प्रकार के कर्म-परमाणुओं का आत्मा के प्रदेशों से बिल्कुल ही अलग हो जाना, यही 'मोक्ष-अवस्था' है।

"मोक्षात्परं सुखं नान्यत्।"

(प्रशम-रति)

भावार्थः—मोक्ष-सुख से बढ कर दूसरा कोई सुख नहीं है। मोक्ष-दशा ही सुख की चरम सीमा है।

"अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः।"

(शिव गीता)

भावार्थः—हृदय में रही हुई अज्ञान की गांठ का नाश करना ही 'मोक्ष' कहलाता है। यहाँ पर अज्ञान शब्द से विषय, विकार, कषाय, मूढता और मूर्खता आदि सभी बुराइयाँ समझना चाहिए।

"पुण्यपापक्षयान्मुक्तिः स्यादतः समतापरः।"

(विवेक-विलास)

भावार्थः—पुण्य और पाप दोनों का ही क्षय होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है, अतः पुण्य और पाप दोनों को ही पूर्णतया क्षीण करने के लिए सुख में और दुःख में, प्रत्येक दशा में समता-व्रत को धारण करो।

"संवेद्यं योगिनामेव परेषां श्रुतिगोचरम्।"

—हरिभद्रसूरि

भावार्थः—केवल योगी पुरुष ही मोक्ष के सुख का स्वरूप जान सकते हैं, अन्य पुरुष तो केवल उस सुख को कानों द्वारा ही सुन

सकते हैं। आत्मा की निर्मलता होने पर ही वह गम्य है, कषाय-सहित स्थिति में वह अगम्य है।

"ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते।"

(गरुड-पुराण)

भावार्थः—"यह मेरा है" ऐसी ममता-भावना से ही प्राणी कर्मों द्वारा बंध जाता है और "यह मेरा नहीं है" ऐसी अनासक्ति भावना से ही यह प्राणी कर्मों द्वारा छूट जाता है।

"ज्ञेया परब्रह्ममयी (दशा) तु मोक्षे।"

(अध्यात्म तत्त्वालोक)

भावार्थः—मोक्ष-अवस्था में मुक्त-आत्मा की स्थिति पूर्ण तया पर ब्रह्म में, परमात्मा में ही मिली हुई समझना चाहिये।

"स्ववीर्येणैव गच्छन्ति जिनेंद्राः परमं पदम्।"

(महावीर-चरित्र)

भावार्थः—वीतराग-प्रभु, अरिहंत, तीर्थंकर, जिनेन्द्र देव, अपनी आत्म-शक्ति द्वारा ही मोक्ष पद प्राप्त करते हैं। कर्मों का विनाश करने में और आत्म-शक्ति का विकास करने में ये महापुरुष किसी भी दूसरे की सहायता नहीं लिया करते हैं।

"संयोगादुभयोः सम्यग् मुक्तिमाहुर्मनीषिणः।

(धर्म-परीक्षा)

भावार्थः—ज्ञान और क्रिया दोनों का ही सम्यक् प्रकार से

समन्वय होने पर मुक्ति प्राप्त हो सकती है, ऐसा विद्वान् महापुरुषों ने फरमाया है।

"अभिलापापनीतं यत् तज्ज्ञेयं परमं पदम्।"

(मोक्षाष्टक)

भावार्थः—जिस अवस्था में सभी प्रकार की इच्छाओं का सर्वथा ही अभाव हो जाता है, उसे ही सर्व श्रेष्ठ अवस्था समझना चाहिये। यहाँ पर "अभिलाषा" शब्द के अन्तर्गत लालसा, तृष्णा, मूर्च्छा, आसक्ति, ममता आदि सभी विकृत भावनाएं समझ लेना चाहिये।

"विनिवृत्तपराशानामिहैव मोक्षः सुविहितानाम्।"

(प्रशम-रति)

भावार्थः—जो आत्माएं सभी प्रकार की भौतिक वस्तुओं की आशा से रहित हो गई हैं, ऐसी विवेक शील उच्च आत्माओं के लिये यहीं पर ही मोक्ष है। उन्हें मोक्ष का सुखानुभव यहीं पर हो जाया करता है। शरीर से छूटने के पश्चात् वे निश्चित रूप से उसी परम पद को प्राप्त होने वाली होती हैं।

"प्रकृतेर्विरहो मोक्षः।"

(षड्-दर्शन-समुच्चय)

भावार्थः—सांख्य-दर्शन के अनुसार आत्मा रूप पुरुष तत्त्व से प्रकृति रूप भौतिक तत्त्व का अलग हो जाना, और विशुद्ध रूप से स्व स्वरूप में परिणत हो जाना ही "मोक्ष" है।

"परो मोक्षो वितृष्णता ।"

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थ.—तृष्णा को सर्वथा जड-मूल से ही क्षीण कर देना, यही उत्तमोत्तम मोक्ष है ।

"स मोक्षो योऽपुनर्भवः ।"

(भागवत स्कंध)

भावार्थः--जिस स्थान को प्राप्त करने के पश्चात् फिर जन्म-मरण रूप भव-भ्रमण नहीं करना पडता है वही स्थान मोक्ष है ।

"जन्मनः प्रतिपक्षो यः स मोक्षः परिकीर्तितः ।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—जिसकी प्राप्ति के पश्चात् पुनः जन्म-ग्रहण नहीं करना पडे, ऐसा जन्म-विरोधी स्थान ही मोक्ष कहलाता है ।

"न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षः ।"

(आपस्तम्ब स्मृति)

भावार्थः—जो केवल शब्द-शास्त्र रूप ग्रंथों का ही पठन-पाठन करता रहता है, परन्तु चारित्र की दृष्टि से शून्य रूप ही है, तो ऐसी अवस्था में उस आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है ।

"ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मुंडनेन ।"

भावार्थः—केवल वेश परिवर्तन कर देने मात्र से ही मुक्ति

नहीं प्राप्त हुआ करती है, परन्तु सर्वोच्च ज्ञान की साधना करने से ही मुक्ति मिला करती है।

"तत्स्यादनन्तभागोऽपि न मोक्षसुखसम्पदः।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—मोक्ष की जो सुख-संपत्ति है-आध्यात्मिक आनंद है, उसका अनन्तवाँ भाग भी इस संसार में नहीं देखा जाता है।

"आत्मन्येव लयो मुक्तिर्वेदान्तिकमते मता।"

(विवेक-विलास)

भावार्थः—सभी प्रकार के बंधनों से विमुक्त होकर आत्मा का पर-ब्रह्म रूप ईश्वरीय शक्ति में विलीन हो जाना, यही वेदान्त दर्शन के अनुसार मोक्ष-अवस्था है।

"निर्ममत्वे सदा सौख्यम्।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—ममता रहित और आसक्ति रहित जीवन में ही सदा परम सुख समझो।

"सुखं स्वाभाविकं तत्र नित्यं भयविवर्जितम्।"

—हरिभद्र

भावार्थः—मोक्ष-स्थान पर नित्य एक समान ही, स्वाभाविक और आध्यात्मिक सुख बना रहता है। और यह सुख ही सभी प्रकार के भयों से रहित होता है।

"उपमाऽभावतो व्यक्तमभिधातुं न शक्यते ।"

—हरिभद्र

भावार्थः—*मोक्ष के सुखों के स्वरूप को समझाने के लिये किसी भी प्रकार की उपमा नहीं दी जा सकती है, क्यों कि वह अचिन्त्य और अवर्णनीय होता है, भौतिक पदार्थों से परे होता है, अतः केवल शब्द-जनित उपमाओं से वह रहित होता है, तदनुसार उसके स्वरूप को स्पष्ट रीति से कहने में कोई भी समर्थ नहीं है।*

"यस्मिन् त्रिलोकीसुखमस्तिबिन्दुमुक्तौ क इच्छेत् न हि ?
(अथवा) को भवेत् द्विष्टः ?

(अध्यात्म तत्त्वालोक)

भावार्थः—*जिस मुक्ति-अवस्था के सुख के आगे तीनों लोक का सुख बिन्दु के समान प्रतीत होता हो, ऐसे अनन्त सुख को कौन नहीं चाहेगा ? तथा ऐसे सुख का कौन विरोधी होगा ?*

"परस्परोपरोधोऽपि नावगाहनशक्तितः ।"

भावार्थ—*मोक्ष स्थान में अनंतानंत मुक्त आत्माओं की उपस्थिति विशुद्ध आत्मिक स्वरूप वाली होने से अमूर्तिक है, अरूपी है, अतएव उन आत्माओं में पारस्परिक रूप से अनंत अवगाहन शक्ति रही हुई है, और इसीलिये परस्पर में रहने संबंधी कोई रुकावट अथवा अड़चन नहीं है।*

"तथैव ज्ञान-कर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।"

भावार्थः—सम्यक् ज्ञान और सम्यक् क्रिया से ही, दोनों का संयुक्त रूप से अस्तित्व होने पर ही पर ब्रह्म रूप अमर और सर्वोत्तम पद प्राप्त किया जा सकता है।

"क्रियानिवृत्तेरयोगित्वम्।

(प्रशम रति)

भावार्थः—जिस अवस्था में मानसिक, वाचिक और कायिक सभी प्रकार की प्रवृत्ति सर्वथा रुक जाती है, उसे ही अयोगित्व अवस्था कहते हैं।

"यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्।"

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—जो मन रूपी तीर्थ में कषाय-विकार रूप मल को दूर करता हुआ स्नान करता है, ऐसा प्राणी ही निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति किया करता है।

"पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्।"

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—जो सर्वज्ञ है और यथाख्यात चारित्र वाला है, वही मोक्ष पाता है।

"कुरूपभाजो बहवोऽपि लोका अनुत्तरं सिद्धिपथं प्रजग्मुः।"

(धर्म वियोग माला)

भावार्थः—सम्यक् चारित्र के विकास के संबंध में कुरूपता

अथवा सुरूपता का कोई संबंध नहीं है, इसीलिये अनेकानेक कुरूप आत्माओं ने भी सर्वश्रेष्ठ स्थान मोक्ष पद को प्राप्त किया है।

"वाञ्छारत्नं परम-पदवी (वाञ्छा)।"

भावार्थ—मोक्ष की अभिरुचि ही सर्वोत्तम रुचि है।

"धर्मश्रुति गुणासक्तिः सद्यो यच्छति निर्वृतिम्।"

भावार्थः—धर्मश्रवण और गुणानुराग मनुष्य को शीघ्र ही अनिष्ट प्रवृत्ति से निवृत्त कर देते हैं और वैराग्य पूर्वक सात्विक प्रवृत्ति में सयाजित कर देते हैं।

"सकामः स्वर्गमाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात्।"
(अत्रि-स्मृति)

भावार्थ.—फल-प्राप्ति की आशा से की जाने वाली धार्मिक प्रवृत्ति स्वर्ग प्रदान करती है, जब कि कषायों को और विकारों को पूर्णतया जीतने के लिये ही जो धार्मिक प्रवृत्ति की जाती है, वह निश्चित रूप से मोक्ष प्रदान करने वाली होती है।

"शान्ता दान्ता जितात्मानस्ते नराः स्वर्ग (मोक्ष) गामिनः।"

भावार्थः जो शान्त चित्त हैं, जो विषय-कषायों के दमन कर्त्ता हैं, और जो मोह पर विजय प्राप्त करने वाले हैं, वे महापुरुष या तो स्वर्ग में जाने वाले होते हैं अथवा मोक्ष में जाने वाले होते हैं।

"देवत्वं सात्विका यान्ति।"
(मनु-स्मृति)

भावार्थः—जो महापुरुष सात्विक विचार वाले, सात्विक वचन वाले और सात्विक क्रिया वाले होते हैं, वे देवगति मे जाने वाले होते हैं।

"वर्जयन्ति दिवास्वापं ते नरा स्वर्गगामिनः।"

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—जो दिन में निद्रा नहीं लेते हैं, और जो आलस्य आदि अनिष्ट क्रियाओं से दूर ही रहते हैं, वे पुरुष स्वर्ग में जाया करते हैं।

"ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नरा स्वर्गगामिनः।"

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—जो धार्मिक क्रियाओं के अनुसार अपने जीवन-व्यवहार को चलाते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग में जाया करते हैं।

"जिनोक्तं सिद्धान्तं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम्।"

(सिन्दूर-प्रकरण)

भावार्थः—वीतराग अरिहंत प्रभु द्वारा प्ररूपित दयामय सिद्धान्त को सुनो और शीघ्रता पूर्वक मोक्ष रूप लक्ष्मी को प्राप्त करो।

"पररामां समां मातुः पश्यन् याति परं पदम्।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो पुरुष अन्य पुरुष की स्त्री को मन-वचन-काया पूर्वक अपनी माता के समान ही समझता है, वह पुरुष मोक्ष रूप श्रेष्ठ पद प्राप्त करता है।

"सर्वद्वन्द्वसमत्वं च मोक्षस्य विधिरुत्तमः ।"

(इतिहास समुच्चय)

भावार्थः—मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम नियम यही है कि संसार के सभी प्रकार के झगड़ों के प्रति उपेक्षा-भाव, तटस्थ भाव, और सम-भाव रक्खे जाँय ।

"न हिनस्त्यादात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ।"

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—जो पुरुष अपनी आत्मा द्वारा किसी भी प्राणी की मन-वचन-काया पूर्वक हिंसा नहीं करता है, वही श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है ।

मुक्तिमिच्छसि चेत् तात ! विषयान् विषवत् त्यज ।"

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—हे पूज्य महानुभाव ! यदि आप मुक्ति चाहते हैं तो इन विषय-विकारों को विष के समान छोड़ दो ।

"भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् ।"

— शंकराचार्य

भावार्थः—हे प्राणी ! यदि तुम शीघ्रता पूर्वक भगवान विष्णु के समान बनना चाहते हो तो प्रिय और अप्रिय सभी पदार्थों के प्रति राग द्वेषात्मक भावनाओं का परित्याग करके सभी परिस्थितियों में समता धर्म को धारण करो ।

"विरज्यति नरः क्षिप्रं सद्भिः सूत्रे प्रतिष्ठितः।"

--शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*सत् पुरुषों द्वारा सूत्र रूप श्रेष्ठ ग्रंथों में संलग्न किया हुआ पुरुष शीघ्र ही कषायों से और विकारों से विरक्त हो जाता है।*

"तापत्रयादिसंतप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत्।"

(गरुड-पुराण)

भावार्थः—*दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीनों तापों से-दुःखों से यदि अत्यंत दुःखी हो गये हो तो मोक्ष रूप वृक्ष की शाश्वत् सुख रूप छाया का आश्रय ग्रहण करो।*

"योगीन्द्रा भव भीमदैत्यदलनाः कुर्वन्तु ते निर्वृतिम्।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*संसार के जन्म-मरण रूप भयंकर राक्षसों का संहार करने वाले निस्पृह योगीराज तुम्हें कषाय-विकारों से निर्वृत्ति अर्थात् छुटकारा प्रदान करें।*

"ममत्वभावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययम्।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*जो ममत्व भाव से, मूर्च्छा-भाव से रहित है, वह अव्यय-अक्षय-नित्य-शाश्वत् पद को प्राप्त होता है। ममता से रहित होना ही मोक्ष-पद पाना है।*

अहिंसा-दया

"अहिंसा परमो धर्मः ।"

(महाभारत)

भावार्थः—अहिंसा ही, जीवों की परिपालना ही सर्वोत्तम धर्म है ।

"अहिंसा सकलो धर्मः ।"

भावार्थः—सभी प्रकार की धार्मिक और सात्विक प्रवृत्तियों का समावेश केवल अहिंसा में ही हो जाता है ।

"अहिंसा परो दमः ।"

(अनुशासन पर्व-महाभारत)

भावार्थः—अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ आत्म निग्रह है ।

"अहिंसा परमं दानम् ।"

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—अहिंसा ही, अभयदान ही अति उत्तम दान है ।

"अहिंसा परमं तपः ।"

(योग-वाशिष्ठ)

भावार्थः--*अहिंसा ही बड़ी से बडी तपस्या है ।*

"अहिंसा तीर्थमुच्यते ।"

(दान चन्द्रिका)

भावार्थः—*अहिंसा याने अभयदान संसार-सागर से उत्तीर्ण होने के लिये तीर्थ माना जाता है ।*

"अहिंसा परमं ज्ञानम् ।"

(भागवत-स्कंध)

भावार्थः—*अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है ।*

"अहिंसा परमं पदम् ।"

(भागवत स्कंध)

भावार्थः—*अहिंसा ही सर्वोत्तम आत्म विकास रूप अवस्था है ।*

"अहिंसा परमं ध्यानम् ।"

(योग वाशिष्ठ)

भावार्थः—*अहिंसा की परिपालना ही उत्कृष्ट ध्यान है ।*

"भव-भ्रमिरुगार्त्तानामहिंसा परमौषधिः ।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—भव-भ्रमण रूप रोग से पीडित प्राणियों के लिये अहिंसा ही परम उत्तम औषध है।

"सत्यशीलव्रतादीनामहिंसा जननी मता।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—सत्य, ब्रह्मचर्य, व्रत-नियम आदि सभी सात्विक प्रवृत्तियों की माता अहिंसा ही मानी गई है।

"जन्मोग्रभयभीतानामहिंसैवौषधिः परा।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—जन्म और मृत्यु जैसे प्रवल एवं प्रचंड भय से भय-भीत प्राणियों के लिये अहिंसा ही सर्वोत्तम औषधि है।

"अहिंसैव हि संसारमरावमृतसारणिः।"

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—अहिंसा ही संसार रूप विशाल रेगिस्तान में अमृत का सुमधुर झरना है।

"अधर्मश्च प्राणिनाम् वधः।"

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—जीवों की हत्या करना, यही अधर्म है।

"सर्वो जीवितुमिच्छति।"

(योग-वाशिष्ठ)

भावार्थः—प्राणी मात्र जीवित ही रहना चाहता है।

"जीवो जीवितुमिच्छति।"

(योग शास्त्र)

भावार्थः—प्राणी मात्र जीवित रहने की ही आकांक्षा रखता है।

"अहिंस्रः सर्वभूतानां यथा माता यथा पिता।"

(महाभारत अनुशासन पर्व)

भावार्थ—जैसे माता-पिता की रक्षा करता है, वैसे ही सभी प्राणियों की रक्षा करो।

"रक्षेच्छरणमायातं प्राणैरपि धनैरपि।"

भावार्थः—शरण में आये हुए प्राणी को प्राण देकर भी और धन देकर भी अभय दान देना चाहिये।

"रूपमारोग्यमैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते।"

(बृहस्पति स्मृति)

भावार्थः—शरीर की सुन्दरता, नीरोगता और सुख-सामग्री संपत्ति आदि ये सब अहिंसा के ही फल हैं।

"पश्यात्मसदृशं विश्वं जीवलोकं चराचरम्।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः--प्राणियों से परिपूर्ण इस विश्व-मात्र के त्रस और

स्थावर जीवों को अपनी आत्मा के समान ही सुख-दुःख की अनुभूति करने वाले समझो।

"निरागस्त्रस जंतूनाम् हिंसां संकल्पतः त्यजेत्।"

भावार्थः—निरपराध चलते फिरते त्रस जीवों की संकल्प पूर्वक हिंसा करने का त्याग कर दो।

"प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वधः क्वापि सुकृतम्।"

(सिन्दूर-प्रकरण)

भावार्थः—प्राणियों की हिंसा कभी भी और कहीं पर भी पुण्य को उत्पन्न करने वाली नहीं हो सकती है। यह तो एकान्त रूप से जघन्यतम पाप ही है।

"अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—अहिंसा के प्रताप से प्राणियों को अमरत्व पद की-ईश्वरत्व पद की-प्राप्ति होती है।

"मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य।"

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थ.—जो सदैव अहिंसा धर्म का पालन करता है, वह निश्चय ही मोक्षगामी है।

"धर्मस्य दया मूलं।"

(प्रशम रति)

भावार्थः—दया ही धर्म की जड़ है।

"न दया सदृशं ज्ञानम्।"

भावार्थः—दया-करुणा के बराबर ज्ञान नहीं है। दया ही ज्ञान है।

"दया दानाद्विशिष्यते।"

(वाशिष्ठ-स्मृति)

भावार्थः—दान की अपेक्षा से दया की महिमा अधिक है।

"सर्वभूतदया तीर्थम्।"

(महाभारत)

भावार्थः—प्राणी मात्र की दया करना, यही सर्वोत्तम तीर्थ है।

"दया च भूतेषु दिवं नयन्ति।"

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—प्राणी मात्र पर की जाने वाली दया आत्मा को स्वर्ग में ले जाती है।

"को धर्मः कृपया विना ?"

भावार्थः—दया के अभाव में कोई भी कार्य धर्म नहीं हो सकता है।

"परदुःखविनाशिनी करुणा।"

(धर्म-बिन्दु)

भावार्थः—दया दूसरों के दुःखों को दूर करने वाली है।

"करुणाचरणं भवपारकरम्।"

—माघव वया

भावार्थः—अनुकम्पामय आचरण संसार सागर से पार कर देने वाला है।

"एते वेदाः अवेदाः स्युर्दया यत्र न विद्यते।"

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—वे वेद (ज्ञान के ग्रंथ) वेद नहीं हो सकते हैं, जिनमें कि दया के महत्त्व का उल्लेख न हो।

"जीवितं जीवरक्षात्।"

(बृहस्पति स्मृति)

भावार्थः—जीवों की रक्षा करने से जीवन बढ़ता है।

"पुण्यं नास्ति कृपां विना।"

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—दया के अभाव में पुण्य का अस्तित्व नहीं हो सकता है।

"यस्य जीवदया नास्ति सर्वमेतन्निरर्थकम्।"

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—जिसके हृदय में जीव दया नहीं है, उसकी सकल क्रियाएं फल हीन हैं-व्यर्थ ही हैं।

ये न हिंसन्ति भूतानि शुद्धात्मानो दयापराः ।"

(वराह पुराण)

भावार्थः—*जो प्राण-भूत जीवों की हिंसा नहीं करते हैं, वे ही आत्माएं पवित्र हैं और दयालु हैं।*

"दयाऽङ्गना सदा सेव्या सर्वकामफलप्रदा ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः– *सभी प्रकार की मनो कामनाओं को फलवती करने वाली दया रूप महिला से नित्य ही प्रेम करना चाहिये।*

"न तद् ध्यानं न तन्मौनं दया यत्र न विद्यते ।"

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—*उस ध्यान को ध्यान नहीं कहना चाहिये और उस मौन को मौन नहीं कहना चाहिये, जिनमें कि दया का अस्तित्व ही न हो।*

"शोधकौ तु दयादमौ ।"

भावार्थः—*दया और इन्द्रिय-निग्रह ये दोनो हीं आत्मा की वृत्तियों में संशोधन करने वाले हैं।*

"धन्यास्ते हृदये येषामुदीर्णः करुणाम्बुधिः ।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*वे महापुरुष धन्य हैं, जिनके हृदय में करुणा का समुद्र उमड़ रहा है।*

"जलत्यक्तं सरो न भाति तथा धर्मो दयां विना ।"

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—जैसे जल रहित तालाव शोभा नहीं पाता है, वैसे ही दया के विना धर्म भी नहीं टिक सकता है।

"क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ।"

(काव्य-रवि मंडल)

भावार्थः—शक्ति हीन पुरुष दया-हीन होते हैं।

"दया मांसाशिनः कुतः ?"

भावार्थः—जो मांस भक्षण किया करता है, उसको दया कैसे उत्पन्न हो सकती है ?

सत्य-जीवन व्रत
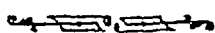
"सत्यमेव जयते नानृतम् ।"

भावार्थः—*विश्व में सत्य की ही जीत हुआ करती है, न कि झूठ की ।*

"मनः सत्येन शुद्ध्यति ।"

भावार्थः—*सत्य-भाषण से ही मन की मलीनता मिटती है । सत्य-व्रत से ही मन पवित्र होता है ।*

"नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति ।"

(रामायण)

भावार्थः—*वह वृत्ति धर्म रूप नहीं है, जिसमें कि सत्य नहीं हो ।*

"नास्ति सत्यात् परो धर्मः ।"

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—*सत्य से उत्कृष्ट धर्म दूसरा कोई नहीं है ।*

"सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।"

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—*विश्व का सर्वस्व सत्य मे ही समाया हुआ हैं ।*

"सत्यं वचः पावनम् ।"

(सिन्दूर-प्रकरण)

भावार्थः—*सत्य वचन अपने आप में पवित्र होते हैं ।*

"न तत्सत्यं यत्छलेनानुविद्धम् ।"

(रामायण)

भावार्थः—*वह सत्य नही हैं, जो कि कपट से युक्त हो। कपट पूर्वक बोला हुआ सत्य झूठ ही होता हैं ।*

"न सत्यमपि भाषेत् पर पीड़ाकरं वचः ।"

(योग-शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थ.—*सत्य होने पर भी जो वचन दूसरे के लिये कष्टकारी होतो उस सत्य वचन को नहीं बोलना चाहिये ।*

"आहुः सत्यं हि परमो धर्मः धर्मविदो जनाः ।"

(रामायण)

भावार्थः—*धर्म के जानने वाले पुरुषों ने सत्य को ही उत्तम धर्म कहा हैं ।*

"धर्मः सत्येन वर्धते ।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—*सत्य द्वारा ही धर्म की अभिवृद्धि हुआ करती है।*

"धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति।"

भावार्थः—*जिसमें सत्य नहीं है, वह धर्म नहीं हो सकता है।*

"नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद्विद्यते परम्।"
(महाभारत)

भावार्थः—*सत्य के बरावर दूसरा धर्म नहीं है और सत्य से बढ़ कर न कोई दूसरी वस्तु ही श्रेष्ठ है।*

"सत्येन धार्यते पृथ्वी।"

भावार्थ—*सत्य से ही निराधार होते हुए भी यह पृथ्वी ठहरी हुई है।*

"तन्मुञ्चानृतमादृतः कुरु सखे! सत्येन सत्यं मुखे।"
(संवेग द्रुम कन्दली)

भावार्थः—*हे मित्र! उस असत्य का त्याग करो और प्रतिज्ञा पूर्वक आदर से सत्य का उच्चारण करो।*

"मनः सत्येन शुद्ध्यति।"
(वशिष्ट-स्मृति)

भावार्थः—*सत्य भाषण से ही मन पवित्र होता है।*

"सत्येनोत्पद्यते धर्मः।"
(महाभारत-शान्ति पर्व)

भावार्थः—सत्य के आधार से ही धर्म की उत्पत्ति होती है।

"सत्येन शुद्ध्यते वाणी।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—सत्य से वाणी पवित्र होती है।

"सत्यस्य वचनं श्रेयः।"

(महाभारत विराट पर्व)

भावार्थः—सत्य वचन कल्याणकारी होते हैं।

"नोऽधर्मः सत्यवादिनाम्।"

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—सत्य बोलने वालों को अधर्म-पाप-स्पर्श भी नहीं करता हैं।

"सत्यं न तद्यच्छलमभ्युपैति।"

भावार्थः—जिसमें कपट रहा हुआ है, वह सत्य होता हुआ भी सत्य रूप नहीं हैं।

"शुभास्रवाय विज्ञेयं वचः सत्यं प्रतिष्ठितम्।"

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—सत्य से सम्मानित वचन को ही शुभ आश्रव का जनक समझना चाहिये।

"सत्येन पूयते साक्षी।"

(मनु स्मृति)

भावार्थः—*सत्य बोलने वाला गवाह सत्य से परिपूर्ण बनता है और आदर का पद प्राप्त करता है।*

"कीर्त्तेः केलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम्।"

भावार्थः—*सत्य भाषण कीर्ति का क्रीड़ा स्थल है, तेजस्विता का निवास स्थान है और पवित्र स्वरूप वाला है।*

"असाध्यं सत्यसाध्वीनां किमस्ति हि जगत्-त्रये।"

भावार्थः—*सत्य बोलने वाली साध्वियों के लिये तीनों लोक में असाध्य क्या है?*

"यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं मम।"
(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थ—*जिससे प्राणियों का अत्यंत हित होता हो, मेरे मत से वही सत्य है।*

(१२)

अदत्तादान-अचौर्य व्रत
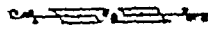
"न विश्वासः तथा लोके नृणामदत्तहारिणाम् ।"

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—*विना दी हुई वस्तु को चुराने वाले चोर का संसार में विश्वास नहीं रहता है ।*

"अनिष्टादप्यनिष्टं च अदत्तमपलक्षणे ।"

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—*अनिष्ट से भी अनिष्ट और अवगुणों में भी सर्वाधिक नीच अवगुण चोरी करना है ।*

"कस्यचित् किमपि नो हरणीयम् ।"

भावार्थः—*कभी भी किसी का कुछ भी नहीं चुराना चाहिये ।*

"अदत्तं धनं नादद्यात् सुखलिप्सुर्हि मानवः ।"

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—*सुख की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिये कि*

वह चोरी के धन को नहीं अपनावे। चोर-कर्म नहीं करे।

"वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादन सुखम्।"

भावार्थः—*भीख मांग करके खाना अच्छा है, परन्तु चोरी करके दूसरे के धन का उपयोग करना, और इस प्रकार इन्द्रिय-सुखों का अनुभव करना कदापि उचित नहीं है।*

"दौर्भाग्यं च दरिद्रत्वं लभते चौर्यतो नरः।"

(उपदेश-प्रासाद भाग प्रथम)

भावार्थः—*चोरी के कर्म करता हुआ मनुष्य खोटे भाग्य वाला और निर्धन होता है। चोरी का परिणाम अत्यंत भयंकर होता है।*

"यदर्थमाददानामनर्थोऽभ्येति सद्मनि।"

(कस्तूरी प्रकरण)

भावार्थः—*चोरी का माल और चोरी का धन घर में अनर्थों को ही लाता है। चोर-कर्म करने वाला कदापि सुखी नहीं हो सकता है।*

"परं नादत्तमादद्याद्यतः स्याद् भूपते र्भयम्।"

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—*दूसरों की अदत्त वस्तु मत लो, क्यों कि अदत्त वस्तु को लेना ही चोरी करना है। और ऐसा करने से राजा आदि का सदैव भय बना रहता है।*

"अदत्तं नाददीत स्वं परकीयं क्वचित् सुधीः।"

(योग-शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थः—समझदार पुरुष दूसरे की कोई भी वस्तु कभी भी स्वयं चोरी रूप से नहीं ग्रहण करे।

"परिहरति विपत्तं यो न गृह्णात्यदत्तम्।"

(सिन्दूर-प्रकरण)

भावार्थः—जो चोर-कर्म नहीं करता है, विपत्ति उसका साथ छोड देती है। चोर-कर्म और विपत्ति का परस्पर में घनिष्ठ संबंध है।

"चोरेभ्योऽप्यभयं दत्वा दातापि नरकं व्रजेत्।"

(पाराशर स्मृति)

भावार्थः—जो चोरों को अभयदान देता है, ऐसा दाता भी नरक में जाता है।

"प्रत्यक्षचौरा वणिजो भवन्ति।"

(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—जो पुरुष व्यापार में छल-कपट करता है, ग्राहकों को न्यूनाधिक देता लेता है, और मोल-तोल में धोखा-धड़ी करता है, ऐसा व्यापारी प्रत्यक्ष रूप से चोर ही है।

(१३)

शील-धर्म-ब्रह्मचर्य व्रत
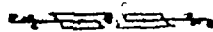
"ब्रह्मचारी सदा शुचिः ।"

(चाणक्य नीति)

भावार्थः—मन-वचन-काया से शुद्धता पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला महापुरुष सदैव पवित्र ही होता है ।

"शीलं परं भूषणम् ।"

—भर्तृहरि

भावार्थः—सभी प्रकार से पवित्र शील-धर्म का, ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करना, यही सर्वोत्तम आभूषण है ।

"शीलं सर्वत्र वै धनम् ।"

—क्षेमेन्द्र कवि

भावार्थः—सभी स्थानों पर और सभी काल में शील-धर्म ही वास्तविक धन है । भौतिक धन तो इस शरीर की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाया करता है, परन्तु शील धर्म रूप धन तो अनेकानेक जन्मों तक विविध सुखों को देता हुआ साथ साथ में रहने वाला होता है और यहाँ तक कि मोक्ष का भी दाता होता है ।

"सर्वं शीलवता जितम् ।"

भावार्थः—*ब्रह्मचारी ने ही अपने ब्रह्मचर्य के बल पर संपूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त की है।*

"शीलं भूषयते कुलम् ।"

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—*ब्रह्मचर्य ही कुल की शोभा बढ़ाता है।*

"स्वदारतुष्टः परदारवर्जी न तस्य लोके भयमस्ति किञ्चित् ।"

भावार्थः—*जो केवल अपनी पत्नी के साथ ही संतुष्ट है, और अन्य सभी स्त्रियों को माता-बहिन ही समझता है, ऐसे पुरुषों के लिये इस संसार में कहीं पर भी और कभी भी किसी भी प्रकार का कोई भय नहीं होता है। कोई आपत्ति नहीं आया करती है।*

"ब्रह्मचर्यं परं तीर्थम् ।"

(दान चन्द्रिका)

भावार्थः—*ब्रह्मचर्य की परिपालना करना ही सर्वोत्तम तीर्थ है।*

"यथा शीलम् तथा गुणम् ।"

भावार्थः—*जितनी मात्रा में ब्रह्मचर्य धर्म की परिपालना की जायगी, उतनी ही मात्रा में गुणों की भी अभिवृद्धि होती जायगी।*

"कुरूपता शीलतया विराजते ।"

भावार्थः—*शरीर की कुरूप आकृति भी ब्रह्मचर्य की परिपालना से सुशोभित होने लगती है।*

स्रग्गंधमधुमांसानि ब्रह्मचारी विवर्जयेत्।

(संवर्त्त-स्मृति)

भावार्थः—*ब्रह्मचारी को माला, गंध, शहद और मांस का कदापि सेवन नहीं करना चाहिये।*

"सकलं शीलेन कुर्याद्वशम्।"

भावार्थः—*सभी प्रकार की परिस्थितियों को अपने पवित्र ब्रह्मचर्य की शक्ति से अपने वश में करे, अपने अनुकूल बनावे।*

"तत्संसारलतालवित्रममलं रे! ब्रह्मचर्यं भज।"

(सवेग द्रुम कन्दली)

भावार्थः—*अरे प्राणी! संसार रूप लता को नष्ट करने वाले निर्मल ब्रह्मचर्य की तू आराधना कर।*

"शीलं दुर्गतिनाशनम्।"

(चाणक्य नीति)

भावार्थः—*ब्रह्मचर्य दुर्गति को नष्ट करने की शक्ति रखता है।*

"महाह्रदप्रविष्टस्य किं करोति दावानलः?"

(धर्म-कथा)

भावार्थः—*पवित्र ब्रह्मचर्य रूप महा जलाशय में प्रविष्ट पुरुष को संसार रूप दावाग्नि क्या हानि पहुंचा सकती है?*

"अलंक्रियेत् शीलेन केवलेन हि मानवः ।"

(धर्म कल्प द्रुम)

भावार्थः—एक मात्र ब्रह्मचर्य के पालने से ही मनुष्य परम शोभा प्राप्त कर सकता है ।

"तेजस्विनो महावीर्याः भवेयु र्ब्रह्मचर्यतः ।"

(योग शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थः—ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही पुरुष प्रचंड प्रतापी और महान् पुरुषार्थ शाली हो जाया करते हैं ।

"समाचरन् ब्रह्मचर्यं पूजितैरपि पूज्यते ।"

(योग-शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थः—ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला महापुरुष पूजनीय पुरुषों द्वारा भी पूजनीय होता है ।

"ब्रह्मचर्यादिभिः कायः शुद्धो गंगां विनाऽप्यसौ ।"

(स्कंध-पुराण)

भावार्थः—गंगा स्नान नहीं करने पर भी यह शरीर ब्रह्मचर्य आदि उच्च व्रतों के पालन से शुद्ध होता है ।

"शीलेन कुलबालिका ।"

(पद्मानंद)

भावार्थः—ब्रह्मचर्य से ही लड़की उच्च कुल की मानी जाती है ।

(१४)

संतोष-निर्लोभ व्रत

"संतोपः परमं पथ्यम् ।"
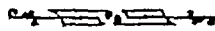
(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—*तृष्णा नामक रोग से मुक्ति पाने के लिये संतोष ही श्रेष्ठ पथ्य है ।*

"सुखमास्ते निस्पृहः पुरुपः ।"

भावार्थः--*सभी प्रकार की कामनाओं से और आकांक्षाओं से रहित पुरुप ही परम सुख का अनुभव कर सकता है ।*

"निस्स्पृहस्य तृणं जगत् ।"

(ज्ञान सार)

भावार्थः—*निष्कामना वाले पुरुष के लिये जगत्-मात्र तृण के समान ही है ।*

"संसार मृगतृष्णासु मनो धावसि किं वृथा ?"

(प्रवध चिन्तामणि)

भावार्थः—हे मन रूप मृग ! तू व्यर्थ ही संसार रूप मृग-तृष्णा की भूल-भुलैया में फंसकर क्यों इधर उधर दौड़ रहा है ?

"अतृप्तिमान्नेन्द्रियग्रामो भव तृप्तोऽन्तरात्मना ।"

(ज्ञान सार)

भावार्थः—इन्द्रियों का समूह कभी भी तृप्त होने वाला नहीं है, अतः अपनी अन्तर आत्मा द्वारा ही तृप्ति का अनुभव कर ।

"न तोषात् परमम् सुखम् ।"

भावार्थः—संतोष से बढ़ कर कोई भी दूसरा सुख नहीं हो सकता है ।

"संतोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत् ।"

भावार्थः—संतोष के बराबर दूसरा धन नहीं है ।

"संतोषपोषैकविलीनवाञ्छास्ते रञ्जयन्ति स्वमनो न लोकम् ।"

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—केवल एक संतोष के परिपोषण करने में ही जिन्होंने अपनी सभी आकांक्षाओं को समाप्त कर दी है, ऐसे महापुरुष अपने मन को ही प्रेम मग्न किया करते हैं न कि संसार को ।

"मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ?"

भावार्थः—मन के संतुष्ट हो जाने पर फिर कौन तो धनवान् रहता है और कौन निर्धन ?

"संतोषामृततृप्तानाम् यत् सुखं शान्तचेतसाम् ।"

भावार्थः—संतोष रूप अमृत से परितृप्त हुए और शांत चित्त वाले पुरुषों को अलौकिक सुख का अनुभव हुआ करता है।

"सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम् ।"

भावार्थ.—जिसका मन संतुष्ट है, उसको सभी प्रकार की संपत्तियाँ प्राप्त हुआ करती हैं।

"आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।"
(भगवत्-गीता)

भावार्थः—आत्म ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा में ही जिसको संतोष है, वही पुरुष "स्थिर-बुद्धि" वाला कहलाता है "स्थित प्रज्ञ" जैसी उच्च ज्ञानावस्था संतुष्ट महापुरुष को ही प्राप्त हुआ करती है।

"संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ।"

भावार्थः—संतोष ही पुरुष का सब से बड़ा खज़ाना है।

श्रीमान् को ? यस्य समस्ति तोषः ।"

भावार्थः—धनवान् कौन है ? जिसको संतोष है।

"संतोषपीयूषरसेन तृप्तास्ते यां लभन्ते गृहमेधिनोऽपि ।"
(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—संतोष रूपी सुधा रस से जो संतुष्ट हैं अथवा तृप्त

है वे नर गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी संतोष के कारण से स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

"संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।"

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—सुख की आकांक्षा रखने वाला उत्तम संतोष का आश्रय लेकर इन्द्रियों का और मन का निग्रह करता हुआ जीवन व्यतीत करे।

"अक्लेशयित्वा चात्मानं यदल्पमपि तद् बहु ।"

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—आत्मा को तृष्णा से परिपीडित किये विना ही जो कुछ भी अल्प और सामान्य प्राप्त हो जाय, उसे ही बहुत मान लेना चाहिये।

"दाक्षिण्येन ममापि निर्वृतिकरं संतोष-सौख्यं भज ।"

(संवेग द्रुम कन्दली)

भावार्थः—मेरे कथनानुसार तुम चतुराई के साथ निवृत्ति देने वाले इस संतोष रूप सुख को अंगीकार करो।

"द्रव्याशां दूरतस्त्यक्त्वा संतोषं कुरु सन्मते ।"

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—अरे सद्बुद्धिवाले पुरुष ! द्रव्य की आशा तृष्णा को दूर हटा कर संतोष का आश्रय ग्रहण कर।

"न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ।"

(पाराशर स्मृति)

भावार्थः—न्याय-नीति पूर्वक कमाये हुए धन से ही अपना निर्वाह करना चाहिये।

श्रद्धा-भक्ति

"सा श्रद्धा कथिता सद्भि र्यया वस्तूपलभ्यते ।" १

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—*जिससे वस्तु-तत्त्व का सही ज्ञान हो सके, उसको ही सत्-पुरुषों ने "श्रद्धा" कहा है।*

"जहाति पापं श्रद्धावान् सर्पो जीर्णमिव त्वचम् ।" २

(महाभारत)

भावार्थः—*श्रद्धाशील पुरुष पाप का इस प्रकार परित्याग कर देता है जैसे कि सर्प जीर्ण-शीर्ण चमड़ी का परित्याग कर देता है।*

"अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पाप-प्रमोचनी ।" ३

भावार्थः—*अविश्वास सबसे बड़ा पाप है और विश्वास पाप का नाश करने वाला है।*

"श्रद्धया न विना दानम् ।" ४

भावार्थः—*श्रद्धा के अभाव में दान फलदायक नहीं हुआ करता है।*

"श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।" ५

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—श्रद्धालु पुरुष ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है और ज्ञान प्राप्त होने पर ही इन्द्रियों की संयम-साधना हो सकती है।

"श्रद्धेयं सततं सतां सुचरितम् ।" ६

भावार्थः—सत्पुरुषों के पवित्र जीवन-चरित्र पर सदा श्रद्धा-दृष्टि ही रखना चाहिये।

"श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः" ७

(महाभारत पर्व छठा)

भावार्थः—पुरुष मात्र किसी न किसी के प्रति श्रद्धावान् होता ही है; और इसीलिए जो जैसा विश्वास करता है; वह वैसा ही बन जाया करता है।

गुरुदेवार्चको वाग्मी तस्य तुष्यन्ति देवता ।" ८

भावार्थः—जो गुरु और देव का उपासक है, वही वक्ता है, और उस पर देवता प्रसन्न हुआ करते हैं।

"संसारामयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव हि ।" ९

भावार्थ—संसार के जन्म-मरण रूप रोगों से पीड़ित प्राणियों के लिये केवल भक्ति ही एक सफल रामबाण औषध है।

"भक्त्या तुष्यति केवलम् ।" १०

भावार्थः—भगवान् केवल भक्ति से ही, श्रद्धापूर्वक जाप से ही प्रसन्न हुआ करते हैं।

"मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।" ११

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—मोक्ष-प्राप्ति के साधनों में भक्ति ही सबसे बड़ा साधन है।

"शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।" १२

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—जो शुभ और अशुभ रूप राग-द्वेष का परित्याग करने वाला है, और जो भक्तिशील है, वही मुझे प्रिय है।

"कार्या मया का ? परमात्मभक्तिः।" १३

भावार्थः—मुझे क्या करना चाहिए ? भगवान् का भजन, भगवान् की भक्ति।

"भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य।" १४

भावार्थः—भक्ति ही ज्ञान को उत्पन्न करने वाली है।

"सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।" १५

भावार्थः—सेवा-व्रत इतना गंभीर और कठिन है कि यह बड़े बड़े योगियों द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है और नहीं साधा जा सकता है।

"भक्त्या तु अनन्यया शक्यः।" १६

भावार्थः—अनन्य भक्ति द्वारा, असाधारण भक्ति द्वारा प्रत्येक कार्य की साधना की जा सकती है।

(१६)

निर्जरा-स्वाध्याय

"संसारबीजभूतानां कर्मणां जरणादिह निर्जरा स्मृता ।" १

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—भव भ्रमण के मूल कारण भूत कर्मों का आत्मा से पृथक् हो जाना ही, कर्मों का झड़ जाना ही, "निर्जरा तत्त्व" है।

"कर्मणां भवहेतूनाम् जरणादिह निर्जरा ।" २

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—संसार में परिभ्रमण कराने वाले कर्मों का आत्मा से पृथक् हो जाना ही निर्जरा है।

"कर्मणां फलवत् पाको यदुपायात् स्वतोऽपि हि ।" ३

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—कर्मों की परिपाक अवस्था अर्थात् आत्मा से पृथक् होने की दशा दो प्रकार की कही गई है, एक तो स्थितिपूर्ण होते ही शुभ अथवा अशुभ फल प्रदान करके पृथक् हो जाना और दूसरी तप, स्वाध्याय, ध्यान, चारित्र आदि द्वारा क्षीण होकर पृथक् हो जाना।

"वद्धस्य कर्मणः शाटो यतस्तु निर्जरा मता ।" ४
(पार्श्वनाथ-चरित्र)

भावार्थः—आत्मा के साथ पहिले बंधे हुए कर्मों का सटक जाना ही, पृथक् हो जाना ही निर्जरा तत्त्व माना गया है ।

"द्रव्यादिलब्धि युक्तो यः प्रत्यहं तस्य निर्जरा ।" ५
(तत्त्वामृत)

भावार्थः—देशना आदि जो द्रव्य लब्धियां है, उन से युक्त साधु सदैव निर्जरा ही करता रहता है ।

"न स्वाध्यायात्परं तपः ।" ६

भावार्थः—स्वाध्याय के बराबर दूसरा तप नहीं है ।

"कोटिदानादपि श्रेष्ठं स्वाध्यायस्य फलं यतः ।" ७
(उपदेश कल्पवल्ली)

भावार्थः—स्वाध्याय का फल, मनोयोग पूर्वक ग्रंथ के वाचन-मनन का फल, करोड़ों की सम्पत्ति का दान कर देने की अपेक्षा भी, अधिक उत्तम बतलाया है ।

"जपतो नास्ति पातकम् ।" ८

भावार्थः—जो भगवान् का भजन करता रहता है, उसको पाप का स्पर्श नहीं होता है ।

"जपतां जुह्वताञ्चैव विनिपातो न विद्यते ।" ९

(मनु स्मृति)

भावार्थः—भगवान् का भजन करते रहने वालों का और ज्ञान वृद्धि रूप यज्ञ करते रहने वालों का पाप की ओर पतन नहीं हुआ करता है ।

"सर्वस्य लोचनं शास्त्रम् ।" १०

भावार्थः—प्राणी मात्र की सर्व श्रेष्ठ आँख सात्विक ग्रंथ-शास्त्र ही हैं । क्योंकि—ग्रंथ-शास्त्रों से ही विश्व की तीनों काल की घटनाओं को जाना जा सकता है ।

"अध्यात्मशास्त्रमुत्तालमोहजालवनानलः ।" ११

(अध्यात्म सार)

भावार्थः—आध्यात्मिक श्रेष्ठ ग्रंथ ही भयंकर मोह-जाल रूप वन को जलाने के लिये अग्नि समान हैं ।

"पठनं मननविहीनं पचनविहीनेन तुल्यमशनेन ।" १२

भावार्थः—चिंतन और मनन रहित वाचन ऐसा ही है, जैसा कि पाचन-क्रिया से रहित खाया हुआ भोजन ।

"(नश्यन्ति) प्रच्छन्नपापा जप्येन ।" १३

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—ईश्वर का जाप करने से—भगवान् का भजन करने से गुप्त पाप भी नष्ट हो जाया करते हैं ।

"श्लोको वरं परमतत्त्वपथप्रकाशी,
न ग्रंथकोटिपठनं जनरंजनाय।" १४

(हृदय प्रदीप)

भावार्थः—मोक्ष मार्ग का प्रदर्शक एक ही श्लोक श्रेष्ठ है, किन्तु संसार को प्रसन्न करने के लिए करोड़ों ग्रंथों का पठन करना भी व्यर्थ ही है।

"चतुर्वारं विधातव्यः स्वाध्यायोऽयमहर्निशम्।" १५

(उपदेश कल्पवल्ली)

भावार्थः—रात और दिन में सात्विक ग्रंथों का स्वाध्याय चार चार करना चाहिए।

(१७)

दान--मोक्ष-द्वार
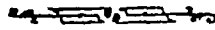
"पृथिव्यां प्रवरं हि दानं।" १

(उपदेश तरंगिणी)

भावार्थः—इस पृथ्वी पर दान ही सर्वोत्तम कार्य है।

"दानमेकं कलौ युगे।" २

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—इस कलियुग में केवल दान ही विशेषता युक्त है।

"लक्ष्म्या भरणं दानम्।" ३

(उपदेश तरंगिणी)

भावार्थः—धन की शोभा दान देने पर ही हुआ करती है। अर्थात् लक्ष्मी का आभूषण दान ही है।

"गौरवं प्राप्यते दानात् न तु वित्तस्य संचयात्।" ४

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—दान देने से ही यश का विस्तार होता है और

गौरव की प्राप्ति हुआ करती है। न कि केवल धन का संचय करने मात्र से ही।

"पात्रेऽनन्तगुणं भवेत्। ५

(उपदेश-तरंगिणी)

भावार्थः—सुपात्र को दिया हुआ दान अनंतगुणा फलदायक हुआ करता है।

"दानानुसारिणी कीर्तिः।" ६

भावार्थः—यश-कीर्ति दान के पीछे पीछे आया करती है।

"धनं फलते दानेन।" ७

(बृहस्पति-स्मृति)

भावार्थ—धन का विस्तार अथवा विपुल धन की प्राप्ति केवल दान से ही हुआ करती है।

"इच्छादानपरोपकारकरणं पात्रानुरूपं फलम्। ८

भावार्थः—पवित्र और उत्कृष्ट भावनाओं के साथ दान देने से और परोपकार करने से पात्र की विशेषता के अनुसार फल हुआ करता है।

"दानेन भूतानि वशीभवंति।" ९

(उपदेश-तरंगिणी)

भावार्थः—दान का इतना गंभीर प्रभाव हुआ करता है कि दान से प्राणी भी वश में हो जाया करते हैं।

"सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ।" १०

भावार्थः—*सभी प्रकार के दानों में विद्यादान सर्वाधिक श्रेष्ठ है।*

"विद्यादानेन सुमति ब्रह्मलोके महीयते ।" ११

(संवर्त्त-स्मृति)

भावार्थः—*विद्यादान के प्रताप से ही बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मदेव लोक में महानता प्राप्त करता है।*

"वित्तं पवित्रीकुरु पात्रदानतः ।" १२

(उपदेश-ग्रंथमाला)

भावार्थः—*सुपात्र को दान देकर अपने धन को पवित्र करो।*

"दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।" १३

भावार्थः—*हे अर्जुन ! निर्धन को ही दान कर, समर्थ धन-वान् को धन मत दे।*

"निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रं धनम् ।" १४

(सिंदूर-प्रकरण)

भावार्थः—*सत्पात्र को दिया गया पवित्र धन मोक्ष-लक्ष्मी का दाता होता है।*

"कुपात्रदानाच्च भवेद्दरिद्रः ।" १५

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—*कुपात्र को दान देने वाला निर्धन होता है।*

"दाता तु जलदः पश्य भुवनोपरि गर्जति ।" १६

(प्रबन्ध चिन्तामणि)

भावार्थः—देखो ! जलधर-बादल वर्षा का दान किया करता है, इसीलिए गौरव प्राप्त करता हुआ आकाश में गंभीर गर्जना किया करता है ।

"भूताभयप्रदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।" १७

(संवर्त्त-स्मृति)

भावार्थः—प्राणियों को अभयदान देने से मन वाञ्छित सभी पदार्थों को प्राप्त किया जा सकता है ।

"भवत्यभयदानेन चिरंजीवी निरामयः ।" १८

(महाभारत-शांतिपर्व)

भावार्थः—अभयदान देने से प्राणी दीर्घ आयु वाला और नीरोग होता है ।

"भीताऽभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते ।" १६

(मार्कण्डेय-पुराण)

भावार्थः—भयभीत प्राणी को निर्भय करना अभयदान है, ऐसा दान कभी भी निष्फल नहीं जाता है ।

"अभयं सर्व सत्त्वेभ्यस्तद्दानमतिरिच्यते ।" २०

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—सभी जीव-प्राणियों को अभय-दान देना, यही श्रेष्ठ दान है ।

"वरमेकस्य सत्त्वस्य दत्ताह्यभयदक्षिणा ।" २१

भावार्थः—एक भी प्राणी को अभयदान देना, यह श्रेष्ठ दक्षिणा है।

"अन्नदानात् परं नास्ति ।" २२

भावार्थः—अन्नदान के समान दूसरा दान नहीं है।

"दानेन पाणि र्न तु कंकणेन ।" २३

(भर्तृहरि)

भावार्थः—हाथ की शोभा दान देने से है न कि कंकण धारण करने से।

"लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवितम्। २४

(उपदेश तरंगिणी)

भावार्थः—जिसका धन केवल दान देने में ही खर्च होता रहता है, उसका जीवन सार्थक है।

"नास्ति दानात् परं मित्रमिह लोके परत्र च। २५

(अत्रि संहिता)

भावार्थः—इस लोक में और परलोक में, सर्वत्र ही दान के समान दूसरा कोई मित्र नहीं है।

"दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्। २६

(मनु-स्मृति)

भावार्थः-दान करने से शत्रुता का भी नाश हो जाया करता है।

"सुदानात् प्राप्यते सुखम्।" २७

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—सुपात्र दान से सुख की प्राप्ति होती है।

"उपार्जितानामर्थानाम् त्याग एव हि रक्षणम्।" २८

(जैन पंचतंत्र)

भावार्थः—परिश्रम से कमाए हुए धन का दान कर देना ही उसका सच्चा रक्षण करना है।

"श्री दानेनैव लभ्यते।" २९

(आदि पुराण)

भावार्थः—दान देने से ही धन की प्राप्ति हुआ करती है।

"दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति। ३०

भावार्थः—मैं तो दानी को सच्चा कंजूस समझता हूँ, जो कि मर जाने पर भी धन को नहीं छोड़ता है। अर्थात् दान के प्रभाव से दूसरे लोक में दान-द्रव्य से कई गुणा अधिक द्रव्य उस दानी को प्राप्त हो जाया करता है।

"दानं हि विधिना देयं काले पात्रे गुणान्विते। ३१

(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—उचित समय में और गुणवान् पात्र में शास्त्र की

विधि- अनुसार दान देना चाहिए। ऐसा दान ही महान् फल प्रदान किया करता है।

"काले दत्तं वरं ह्यल्पमकाले वहुनापि किम्।" ३२

भावार्थः—समय पर दान दिया हुआ थोड़ा भी श्रेष्ठ होता है तथा अधिक गुणकारी होता है और समय के निकल जाने पर—अवसर चूक जाने पर—अधिक दान भी किस काम का? कृषि के सूख जाने पर वर्षा का क्या उपयोग रह जाता है?

"लक्षं विहाय दातव्यम्।" ३३

भावार्थः—लाख काम पडे हुए हों तो भी उनको छोड़ कर दान देने का काम सर्वप्रथम करना चाहिए।

"वरविभवभूषा वितरणम्।" ३४

भावार्थः—धन-वैभव को दीन-हीन जनों में और पुण्य-शाली कामों में बाँट देना ही उस द्रव्य की श्रेष्ठ शोभा है।

"दारिद्र्यनाशनं दानं।" ३५

(चाणक्य नीति)

भावार्थः—दान से ही गरीबी नष्ट हुआ करती है।

"दानेन जनितानन्दे कीर्तिरेकैव तिष्ठति।" ३६

(प्रबंध चिंतामणि)

भावार्थः—दान से उत्पन्न आनंद में से कीर्त्ति ही चिर-स्थायिनी हुआ करती है।

"स नरः सर्वदा भूपो यो ददाति वसुंधराम् ।" ३७
(बृहस्पति-स्मृति)

भावार्थः—जो भूमि दान देता है, वह निरंतर राजा होता है।

"सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ।" ३८
(संवर्त्त-स्मृति)

भावार्थः—समस्त दानों में अन्न दान श्रेष्ठ है।

"अन्नदा सुखिनो नित्यम् ।" ३९
(बृहस्पति-स्मृति)

भावार्थः—अन्न का दान देने वाले सदा सुखी रहते हैं।

"वस्त्रदश्चैव रूपवान् ।" ४०
(बृहस्पति-स्मृति)

भावार्थः—वस्त्र का दान करने वाला सुन्दर रूप वाला हुआ करता है।

"नोत्तारो भवकूपतोऽपि सुदृढं दानावलंबात् परः ।" ४१
(धर्मकल्पद्रुम)

भावार्थः—संसार रूप गंभीर कूप से बाहर निकलने के लिये दान से बढ कर और दूसरा कोई भी अवलंबन नहीं है।

"परिभ्रष्टो दानात् स यदि न तदालम्बनमिह ।" ४२
(धर्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—यदि आत्मा दान से विमुख है—तो इस संसार में उसके लिये सुखप्रद अवलम्बन कहीं पर भी नहीं है।

"को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः।" ४३

भावार्थः—इस संसार में ऐसा कौन है ? जिसका मुख अन्न दान द्वारा पूर दिया जाय, फिर भी वह अन्न-दाता के वश में नहीं होवे। अर्थात् अन्न-दान से जनता शीघ्र ही वश में हुआ करती है।

"निर्धना दानमिच्छन्ति।" ४४

भावार्थः—धन-हीन ही दान ग्रहण करना चाहते हैं।

"ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ?" ४५

(जैन पंचतंत्र)

भावार्थः—अधिक दान नहीं कर सकते हो तो अपने भोजन में से ही आधा भोजन भूखे को क्यों नहीं देते हो ?

"साधूनां स्थानदानेन क्रमात् मोक्षश्च लभ्यते।" ४६

भावार्थः—मुनियों को टिकने के लिए यदि स्थान प्रदान किया जाय तो अनुक्रम से मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है।

"अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तो निर्भृतः सदा।" ४७

(संवृत्त-स्मृति)

भावार्थः—अन्न का दान करने वाला सदा संतुष्ट और सुखी होता है।

"यादृग् वितीर्यते दानं तादृगासाद्यते फलम् ।" ४८

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—जैसा दान दिया जाता है, वैसा ही फल भी प्राप्त होता है। अतएव दान देने के समय में सुपात्रता का, भावनाओं की उत्कृष्टता का, दान-वस्तु का, और उपयुक्त अवसर का सदा ही ध्यान रखना चाहिए। इससे दान में विशेषताएँ पैदा हो जाती हैं और तदनुसार फल में भी उच्चता और श्रेष्ठता प्राप्त हो जाया करती है।

"सद्यः प्रीतिकरं तदन्नमनघं यत्नेन देयं बुधैः ।" ४९

(अनंग रङ्ग)

भावार्थः-अन्न दान शीघ्र ही प्रेम बढाने वाला और श्रेष्ठ होता है, अतः बुद्धिमान सज्जनों द्वारा ऐसा दान प्रयत्न करके भी दिया जाना चाहिए। दान कभी भी निष्फल नहीं जाया करता है।
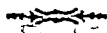
भावना-धर्मध्यान

"भावना मोक्षदा।" १

(श्राद्ध-विधि)

भावार्थः—सात्विक भावना मोक्ष प्रदान करने वाली होती है।

"भावना भवनाशिनी।" २

(चाणक्य नीति)

भावार्थ—धर्म-ध्यान से परिपूर्ण भावना, जन्म-मरण रूप सांसारिक-भव-भ्रमण का सदा के लिए अंत करने वाली होती है।

"परहितचिंता मैत्री।" ३

(धर्म-विन्दु)

भावार्थः—विश्व के प्राणी-मात्र की हित-साधना में ही अपनी भावना को बनाये रखना, यही मैत्री भावना है।

"परहिते मतिः मैत्री।" ४

(योग-सार)

भावार्थः—दूसरे की कल्याण-साधना में ही अपनी बुद्धि को संलग्न रखना, यही मैत्री भावना है।

"मैत्री परस्मिन् हितधीः समग्रे।" ५

(अध्यात्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—समस्त प्राणियों के प्रति हितैषी बुद्धि रखना, यही मैत्री भावना है।

"भजस्व मैत्रीं जगदंगिराशिषु।" ६

(अध्यात्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—विश्व के समस्त जीव-समूह पर मैत्री भावना रक्खो।

"(दुःखात्) मुच्यंतां जगदप्येषा मति मैत्री निगद्यते।" ७

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—"संसार के प्राणी-मात्र दुःख से मुक्त हो जावें" ऐसी उच्च बुद्धि को ही मैत्री भावना कहा जाता है।

"परसुखतुष्टिर्मुदिता।" ८

(धर्म-बिन्दु)

भावार्थः—दूसरों को सुखी देख करके मन में परम संतोष धारण करना, यही "प्रमोद" भावना है।

"मुदिता गुणमोदनम्।" ९

(योग सार)

भावार्थः—गुणवान् पुरुषों के गुणों को देख करके प्रसन्नता प्रकट करना, यही प्रमोद भावना है।

"प्रमोदो गुणपक्षपातः।" १०

(अध्यात्म कल्पद्रुमः)

भावार्थः—गुणों के प्रति आकर्षित होना, गुणों का महात्म्य बतलाना, और गुणों के प्रति प्रसन्नता व्यक्त करना, यही प्रमोद भावना है।

"गुणेषु पक्षपातो यः स प्रमोदः प्रकीर्तितः।" ११

(योग शास्त्र)

भावार्थः—गुणों के प्रति अपना पक्षपात व्यक्त करना, गुणों की उचितता का समर्थन करना, इसको ही प्रमोद-भावना कहा जाता है।

"करुणा दुःखमोक्षधीः।" १२

(योग सार)

भावार्थः—दुःखी प्राणियों को दुःख से छुड़ाने की बुद्धि उत्पन्न होना, यही करुणा भावना है।

"दुःखनिवारणे वाञ्छा साऽनुकम्पाऽभिधीयते।" १३

(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—दुःखी प्राणियों के दुःख को दूर करने के लिए अपनी आकांक्षा प्रकट होना, यही अनुकंपा भावना है।

"परदोषोपेक्षणमुपेक्षा । (माध्यस्थता)" १४

(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—दूसरों के दोषों के प्रति दृष्टि नहीं डालना और उपेक्षा-वृत्ति रखना, यही माध्यस्थ भावना है ।

"उदासवृत्तिं खलु निर्गुणेष्वपि ।" १५

(अध्यात्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—गुणहीन प्राणियों पर कषायात्मक बुद्धि न लाकर उदारवृत्ति रखना, यही माध्यस्थ भावना है ।

"आत्मशंसिषु योपेक्षा तन्माध्यस्थ्यमुदीरितम् ।" १६

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—अपने आप की प्रशंसा के प्रति उपेक्षा रखना, यही माध्यस्थ भावना है ।

"चित्तं पवित्रीकुरु धर्म-वाञ्छया ।" १७

(उपदेश-ग्रंथमाला)

भावार्थः—धर्म-भावना की आराधना करके अपने चित्त को पवित्र करो । अर्थात् चित्त से कषायवृत्तियों का क्षय करो ।

"दान-शील-तपः संयद्भावेन भजते फलम् ।" १८

(सूक्त मुक्तावली)

भावार्थः—भावना पूर्वक किया जाने वाला दान, शील और तप ही अपना श्रेष्ठ फल प्रदान करता है ।

"विशुद्धादेवसंकल्पाद् धर्मः सद्भिरुपार्ज्यते ।" १९

(तत्त्वामृत)

भावार्थ :—सज्जन पुरुषों द्वारा कषाय-रहित, उच्च और पवित्र विचार-धारा पूर्वक ही धर्म की आराधना की जाती है।

"मुक्तिस्त्रि परिरिप्सते यदि जनस्तद् भावयेद् भावनाम् ।" २०

(सिंदूर-प्रकरण)

भावार्थः—यदि कोई पुरुष मुक्ति रूप महिला को चाहता है, तो उसे चाहिये कि वह सात्विक और उच्च भावना की आराधना करे।

"मरणाच्च न रक्षन्ति स्वजनाः परेभ्यः किमभ्यधिकाः ।" २१

भावार्थः—जिन्हें स्वजन शब्द से अथवा बंधु—बांधव शब्द से पुकारा जाता है, वे भी मृत्यु के समय मरने वाले प्राणी की काल से रक्षा नहीं कर सकते हैं, ऐसी स्थिति में उन्हें स्वजन कैसे कहा जाय? और इस तरह से स्व जन और पर जन में पारस्परिक दृष्टि से क्या हीनता अधिकता हुई? अर्थात् सभी पर जन ही प्रमाणित हुए, एक भी स्वजन सिद्ध नहीं हुआ।

"सदैकोऽहं न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित् ।" २२

भावार्थः—हे आत्मन्! सदा तू यही विचार कर कि "मैं अकेला ही आया हूं और अकेला ही जाने वाला हूँ, एवं तीनों काल में भी अकेला ही रहने वाला हूँ, न तो मैं किसी का हूँ और न कोई दूसरा ही मेरा है।" यही एकत्व भावना है।

"अन्ते मतिः सा गतिः।" २३

भावार्थः—*मृत्यु समय में जैसी बुद्धि हुआ करती है, वैसी ही पर लोक में भी गति मिला करती है।*

"भव्यैश्च भावना भाव्या भरतेश्वरचद्यथा।" २४

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—*जैसे भरत चक्रवर्ती ने सात्विक भावना की आराधना करके केवल-ज्ञान-दर्शन-चारित्र की प्राप्ति की, उसी प्रकार से हमें भी सात्विक और आदर्श भावना की आराधना करनी चाहिए।*

भावेषु विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्। २५

(सूक्त-मुक्तावली)

भावार्थः—*सात्विक भावनाओं में ही ईश्वरत्व का निवास है, अतएव सात्विक भावनाएं ही ईश्वर की प्राप्ति में कारण रूप हैं।*

"यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशी।" २६

भावार्थः—*जिसकी जैसी भावना हुआ करती है, उसको उसके समान ही सिद्धि मिला करती है।*

"नो शुद्धयन्ति विशुद्धभावचपला नैते क्रियातत्पराः" २७

भावार्थः—*पवित्र भावों की अस्थिरता रखने वाले प्राणी पवित्र नहीं हुआ करते हैं, तथा अस्थिर विचार वाले ये प्राणी सम्यक् चारित्र के प्रति भी स्थिर नहीं हुआ करते हैं।*

"भावना स्वस्य लाभाय स्वान्ययोस्तु प्रभावना ।" २८
(उपदेश तरंगिणी)

भावार्थः—भावना अपने आप का ही हित करने वाली होती है, जबकि प्रभावना अपना और दूसरों का दोनों का ही हित करने वाली होती है।

"परिणामो बन्धो परिणामो मोक्षः ।" २६

भावार्थः—कुत्सित विचारों के कारण से तो कर्मों का बंधन हुआ करता है और सात्विक विचारों के कारण से कर्मों की मुक्ति हुआ करती है।

"आदर्शहर्म्ये जटिते सुरत्नै र्ज्ञानं स लेभे वरभावतोऽत्र" ३०
(हिंगुल प्रकरण)

भावार्थः—सुन्दर रत्नों से सुशोभित, दिव्य राज प्रासाद में श्री भरत महाराज ने सात्विक भावनाओं की आराधना से ही केवल-ज्ञान-दर्शन-चारित्र की प्राप्ति की थी।

"गर्भे जरायुसंछन्नः शुचिः कायः कथं भवेत् ।" ३१
(योग-शास्त्र)

भावार्थः—जब यह प्राणी माता के गर्भ में था, उस समय में जरायु नामक अपवित्र चमड़े की झिल्ली से ढंका हुआ था, ऐसी स्थिति में यह शरीर पवित्र कैसे हो सकता है ?

"देहेऽपि शौचसंकल्पो महामोहविजृम्भितम् ।" ३२
(योग शास्त्र)

भावार्थः—अपवित्र होने पर भी इस शरीर को पवित्र ही मानना, यह महामोह का चरम विकास ही है।

"न शक्यं निर्मलीकर्त्तुं गात्रं स्नानशतैरपि।" ३३

—कमल-संयम

भावार्थः—सैंकडों बार स्नान करके भी इस शरीर को पवित्र कर सकना संभव नहीं है। क्योंकि जो अनादि-अनन्तकाल से अपवित्र ही है, उसको किस तरह से पवित्र किया जा सकता है?

"वपुष्यशुचिनिलये मूर्च्छां कुर्वीत् कः सुधीः?" ३४

(महावीर चरित्र)

भावार्थः—ऐसा कौन है जो कि बुद्धिमान् होकर भी इस अपवित्रता के भंडार रूप शरीर पर आसक्ति और ममता-मूर्च्छा रखता हो?

"आत्मानं भावयेन्नित्यं ज्ञानेन विनयेन च।" ३५

(तत्त्वामृत)

भावार्थ.—सदाकाल ज्ञान द्वारा और विनय द्वारा अपनी आत्मा का अनुचिंतन करता रहे। आत्मा के गुणों का निरन्तर विकास करता रहे।

"वने मृगार्भकस्येव शरणं नास्ति देहिनः।" ३६

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—जैसे हिंसक पशुओं से भयभीत मृग के बच्चे के लिये जंगल में कहीं पर भी शरण-स्थान नहीं होता है, वैसे ही कषाय

और कर्मों से सताये हुए इस प्राणी के लिए भी तीनों लोक में कहीं पर भी शरण-स्थान नहीं है।

"न शक्ता मरणात् त्रातुं मग्नाः संसारसागरे।" ३७

—कमल-संयम

भावार्थः—जो प्राणी स्वयमेव संसार-सागर में डूबे हुए हैं, वे अन्य किसी भी प्राणी की मृत्यु से रक्षा करने के लिए समर्थ नहीं हो सकते हैं।

"धनबन्धुसहायानां तत्रान्यत्वं न दुर्वचम्।" ३८

भावार्थः—आत्मा और शरीर एक रूप से दिखलाई पड़ने पर भी जबकि भिन्न भिन्न ही हैं, ऐसी अवस्था में धन, बंधु, बांधव और अन्य सहायक तो आत्मा से सर्वथा ही भिन्न हैं, इस कथन में जरा भी अत्युक्ति अथवा झूठ नहीं है।

"जिनवरवचनादन्यत्र नास्ति शरणं क्वचिल्लोके" ३९

(प्रशमरति)

भावार्थः—वीतराग प्रभु जिनेन्द्रदेव के वचनों के अतिरिक्त इस लोक में कहीं पर भी कोई भी शरणदाता नहीं हो सकता।

"अनेकशो व्यतीतानि कस्य त्वं तानि कस्य च।" ४०

(इतिहास समुच्चय)

भावार्थः—हे आत्मन्! तुम सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो कि सांसारिक जीवों के साथ पिता-माता, पुत्र, पत्नी आदि के रूप में तुमने

अनेक वार जन्म-मरण किया है और असंख्यात वर्षों तक साथ-साथ में रहे हो, फिर भी कौन किसका हुआ है ? क्या तुम किसी के हुए हो ? अथवा क्या वे किसी के हुए हैं ?

"अन्यद्वपुरिदं जीवाज्जीवश्चान्यः शरीरतः।" ४१

(ज्ञान-शतक)

भावार्थः—यह वात निश्चित रूप से समझ लो कि जीव-आत्मा से शरीर सर्वथा ही पृथक् है और शरीर से भी यह आत्मा सर्वथा ही अलग है। इस प्रकार से एक तो भौतिक जड़ द्रव्य है, जब कि दूसरा चैतन्य द्रव्य है। दोनों में एकरूपता और अभिन्नता नहीं हो सकती है।

"विना जिनोदितं धर्मं शरणं कोऽपि नापरः।" ४२

(महावीर-चरित्र)

भावार्थः—इस संसार-सागर में डूबे हुए प्राणी के लिए एक मात्र वीतराग प्रभु द्वारा प्ररूपित दया धर्म के सिवाय और दूसरा कोई भी शरणदाता नहीं हो सकता है।

(१६)

ध्यान-समाधि
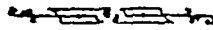
"वीतरागं यतो ध्यायन् वीतरागो भवेत् भवी ।" १

(योग सार)

भावार्थः—मोक्ष-गामी भव्य आत्मा वीतराग देव का ध्यान करता हुआ स्वयं वीतराग बन जाया करता है ।

"धर्मध्याने भवेत् भावः क्षायोपशमिकादिकः ।" २

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—धर्म-ध्यान में संलग्न रहने से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व आदि सात्विक भावनाएं उत्पन्न हुआ करती हैं ।

"ध्याने शुक्लवरे रजः प्रमथने कुर्यात् प्रयत्नं बुधः ।" ३

—हरिभद्र सूरि

भावार्थः—कर्म-प्रदेशों को आत्मा से अलग करने के लिये बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह श्रेष्ठ शुक्ल-ध्यान की आराधना करने में ही प्रयत्नशील रहे ।

"अर्हतो रूपमालम्ब्य ध्यानं रूपस्थमुच्यते ।" ४

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*अरिहंत वीतराग देव के स्वरूप का आश्रय लेकर जो ध्यान किया जाता है, वही रूपस्थ ध्यान कहलाता है।*

"कुरु जन्माब्धिमत्येतुं ध्यानपोतावलंबनम् ।" ५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*जन्म-मरण रूप सागर को पार करने के लिए ध्यान रूप जहाज का अवलम्बन ग्रहण करो।*

"ध्यानयोगरतो भिक्षुः प्राप्नोति परमां गतिम् ।" ६

(शंख-स्मृति)

भावार्थः—*ध्यान योग में संलग्न साधु मोक्ष पद को प्राप्त करता है।*

"मुहूर्त्तान्तर्मनःस्थैर्यं ध्यानं छद्मस्थयोगिनाम् ।" ७

(योग शास्त्र)

भावार्थ.—*एक अन्तर्मुहूर्त्त तक मन को स्थिर रखना, ऐसा ध्यान छद्मस्थ योगियों का हुआ करता है।*

"समाधिसौख्यान्न परं च सौख्यम् ।" ८

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—*चित्त की स्थिरता में जो सुख है, उस सुख से बढ़ कोई दूसरा सुख नहीं है।*

"संसारदुःखैश्च कदर्थितानां,
स्वप्नेऽपि तेषाम् न समाधिसौख्यम् ।" ९
(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—जो सांसारिक दुःखों से कलुषित हैं, उनको स्वप्न में भी चित्त की समाधि से प्राप्त होने वाला सुख नहीं प्राप्त हो सकता है।

"लब्धे मनःस्वास्थ्यसुखैकलेशे,
त्रैलोक्यराज्येऽपि न तस्य वाञ्छा ।" १०
(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—एक वार भी चित्त समाधि के अंशमात्र सुख के मिल जाने पर वाद में उस पुरुष को तीन लोक के राज्य को प्राप्त करने की इच्छा भी नहीं रहती है।

"तपः समाधौ कलितो न येन वृथागतं तस्य नरस्य जीवनम् ।" ११

भावार्थः—जिसने तपोमय समाधि में आनन्द का अनुभव नहीं किया है, उस मनुष्य का संपूर्ण जीवन व्यर्थ ही चला गया है।

"सदाऽनुभूत्या दृढ़निश्चयो,
यस्तस्यैव सिद्धि र्न हि चापरस्य ।" १२
(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—जो निरन्तर आत्म-अनुभूति द्वारा स्थिर चित्त वाला होता है उसी के लिए मोक्ष-प्राप्ति कही गई है, न कि अन्य के लिये।

"आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ?" १३

(आपस्तम्ब स्मृति)

भावार्थः—जिसने अपनी आत्मा को संयम शील बना लिया है, उसका यमराज भी क्या कर सकेगा ? संयमशील महापुरुष के लिये किसी का भी भय नहीं रहता है।

"एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते।" १४

भावार्थः—बाह्य प्रवृत्तियों से सर्वथा ही निवृत्त होकर चित्त को एकाग्र करने पर ही तत्त्वों का रहस्य मालूम हो सकता है।

(२०)

पुण्य-तत्त्व

"श्रुतं यम शमे याति विनियोगं स पुण्यभाक् ।" १

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो अपने ज्ञान का उपयोग इन्द्रिय-निग्रह में और मनो-निग्रह में करता है, वही पुण्यशाली है ।

"यशः पुण्यैरेवाप्यते ।" २

भावार्थः—यश-कीर्ति पुण्य से ही प्राप्त होती है ।

"पुण्यप्रभावात् सुरलोकवासी ।" ३

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—पुण्य के प्रभाव से ही देव-लोक की, स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।

"लक्ष्मी पुण्यानुसारिणी ।" ४

भावार्थः—लक्ष्मी की प्राप्ति पुण्य से ही हुआ करती है ।

"पुण्यानामुदयेन संततमिदं कस्यापि सम्पद्यते ।" ५

(सूक्त-मुक्तावली)

भावार्थः—जो कोई भी पुण्यशाली है, उसके पुण्यों का उदय होते ही उसे निरन्तर सुखों की प्राप्ति होती रहती है।

"पुण्यं हि सर्वसंपत्तिवशीकरणकार्मणम् ।" ६

(करुणा वज्रायुध नाटक)

भावार्थ—समस्त विश्व-विभूति को वश में करने वाला वशीकरण मंत्र पुण्य ही है।

"रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ।" ७

—भर्तृहरि

भावार्थः—पहिले किये हुए पुण्य ही प्राणियों की रक्षा किया करते हैं।

"यावत् पुण्यमिदं नृणाम् विजयते पुण्यक्षये क्षीयते ।" ८

भावार्थः—जब तक मनुष्यों का पुण्य उदय में है, तभी तक उनकी हर काम में विजय होती रहती हैं, और पुण्य का क्षय होते ही वे भी चारों ओर से क्षीण होने लग जाते हैं।

"वश्यतां नयति पूर्वभवात्तं पुण्यमेव भुवनानि किमन्यत् ?" ९

(करुणा वज्रायुध नाटक)

भावार्थः—पुण्य के विषय में अधिक क्या कहें ? पूर्व-जन्म के संचित पुण्य ही तीनों लोक को वशवर्ती अथवा आज्ञानुयायी बना देते हैं।

"पुण्यं विना याति दुरन्तदुःखं
संसारकान्तारमलभ्य पारम् ।" १०
(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—*जिसका पार पा लेना अत्यंत कठिन है और जो घोर एवं विकट दुःखों से परिपूर्ण है, ऐसे संसार रूप जंगल से विना पुण्य के छुटकारा नहीं हो सकता है।*

"सुक्षेत्रं च सुपात्रं च विना पुण्यै र्न लभ्यते ।" ११
(पांडव चरित्र)

भावार्थः—*पुण्य के विना सुक्षेत्र और सुपात्र की प्राप्ति नहीं हुआ करती है।*

"कोटिगुणं पुण्यं वस्त्रपूतेन वारिणा ।" १२
(कूर्म-पुराण)

भावार्थः—*वस्त्र से छान कर पानी का उपयोग करने से करोड़ गुना पुण्य होता है।*

"अत्युग्रपुण्यपापानां इहैवफलमश्नुते ।" १३

भावार्थः—*तीव्रातितीव्र पाप पुण्य का फल यहाँ पर ही मिल जाया करता है।*

"पुण्यं विना न च नरो लभते सुतृप्तिम् ।" १४
(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—पुण्य के बिना मनुष्य उच्च कोटि की तृप्ति अर्थात् संतोष-सुख नहीं प्राप्त कर सकता है।

"न जाने त्वग्रतः पुण्यैर्विना ते किं भविष्यति ?" १५

(अध्यात्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—मुझे समझ में नहीं आता है कि पुण्य कर्मों के अभाव में आगे तुम्हारी स्थिति क्या होगी ?

"पुण्यमेव जगदेकशासनम्।" १६

भावार्थः—विश्व की व्यवस्थित व्यवस्था में पुण्य ही एक प्रधान कारण है।

"पुण्यक्षये क्षीयते।" १७

भावार्थः—पुण्य का क्षय होने पर सब कुछ क्षीण होने लगता है।

"पुण्यं सतां किमु न मंगलमातनोति ?" १८

भावार्थः—सज्जन पुरुषों को पुण्य के प्रताप से कौनसी मंगल-वस्तुएं प्राप्त नहीं हुआ करती हैं ? अर्थात् सभी कुछ प्राप्त हो जाता है।

"व्यवसायोऽप्यसौ पुण्यनैपुण्यसचिवो भवेत्।" १९

(विवेक-विलास)

भावार्थः—व्यापार-व्यवसाय भी पुण्य की निपुणता के आधार से ही सफल होता है।

"सकलाऽपि कला कलावतां विकला पुण्यकलां विना खलु" २०

भावार्थः—सभी कलाकारों की सभी कलाएँ निश्चय ही एक पुण्य कला के अभाव में खंडित हैं, अपूर्ण हैं, विकलांग हैं।

"जाते पुण्यविपर्यये तनुभृतामर्थोऽप्यनर्थायते।" २१

(धर्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—पुण्य के विपरीत हो जाने पर अर्थात् पाप का उदय होते ही पुरुषों के लिये सुखकारक धन-संपत्ति भी विपत्ति का कारण बन जाया करती है।

"दानेऽतिव्यसनं रतिर्जिनमते स्यात् कस्यचित् पुण्यतः।"२२

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—दान देने की अति उत्कट भावना होना, और वीतराग कथित वचनों में अभिरुचि होना, ये दोनों बातें किसी पूर्वकृत पुण्य के ही फल हैं।

"दुष्टानाम् दमनं चैव पुण्यकारस्य दर्शनात्।" २३

भावार्थः—दुष्ट पुरुषों का दमन भी पुण्यशाली के दर्शन से ही होता है।

क्षमा--उत्तम धर्म

"ज्ञानस्य भूषणं क्षमा ।" १

—क्षेमेन्द्र

भावार्थः—ज्ञान का आभूषण क्षमा ही है। ज्ञान की शोभा क्षमा धारण करने में ही है।

"ज्ञानस्याभरणं क्षमा ।" २

भावार्थः—ज्ञान का सर्व श्रेष्ठ आभूषण क्षमा ही है।

"क्षमया किं न सिद्धयति ?" ३

भावार्थः—क्षमा से क्या नहीं सिद्ध हो सकता है ? अर्थात् सभी सिद्धियाँ क्षमा-धर्म के अन्तर्गत रही हुई हैं।

"शान्तिरेव महादानं ।" ४

(महाभारत)

भावार्थः—शत्रु के प्रति और विरोधी के प्रति क्षमा प्रदर्शित करना, यह सर्वोत्तम दान है।

"क्षमया क्षीयते कर्म ।" ५

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*क्षमा द्वारा कर्मों का नाश किया जा सकता है।*

"हन्तव्यः क्षमया क्रोधो ।" ६

(योग शास्त्र)

भावार्थः—*क्षमा द्वारा क्रोध का क्षय करना चाहिये।*

"क्षान्तितुल्यं तपो नास्ति ।" ७

भावार्थः—*क्षमा के बराबर दूसरा तप नहीं है।*

"मुनिवर-विभूषा वर क्षमा ।" ८

भावार्थः—*श्रेष्ठ मुनिराज के लिये उत्तम क्षमा ही सर्वोत्तम आभूषण है।*

"प्रशमाभरणं पराक्रमः ।" ९

भावार्थः—*सात्विक पुरुषार्थ ही क्षमा का आभूषण है।*

"क्षमा धनुः करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ?" १०

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—*जिसके हाथ में क्षमा रूप धनुष है, तो फिर दुर्जन उसका क्या कर सकता है ?*

"क्षमा गुणो हि जन्तूनामिहामुत्र सुखप्रदः ।" ११

(आपस्तम्ब-स्मृति)

भावार्थः—क्षमागुण क्षमाधारियों को इस लोक में और पर लोक में सभी स्थानों पर सुख देने वाला ही है।

"क्षमा खड्गं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ?" १२

भावार्थः—क्षमारूप तलवार जिसके हाथ में है, तो फिर दुष्ट पुरुष उसको क्या हानि पहुँचा सकेंगे?

"क्षमी यत्कुरुते कार्यं न तत्क्रोधवशंवदः।" १३

(सूक्त-मुक्तावली)

भावार्थः—क्षमावान् पुरुष कार्य करने में जितना शक्तिशाली होता है, उतना क्रोध के अधीन रहा हुआ पुरुष नहीं हो सकता है।

"निर्वाणं यदि वाञ्छसीह परमक्षान्तिप्रियां तद्भज।" १४

—पद्मानन्द

भावार्थः—हे आत्मन्! तुम्हें यदि इसी लोक में निर्वाण-सुख की आकांक्षा है, तो श्रेष्ठ क्षमा रूप पत्नी से प्रेम करो।

"क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।" १५

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—क्षमा संसार में वशीकरण मंत्र है, क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता है?

"न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया।" १६

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—घास की एक चिनगारी से सागर के पानी को गरम करना संभव नहीं है, वैसे ही क्षमा-सागर को क्रोधित नहीं किया जा सकता है।

"उपनेया त्वया भद्र! क्षमा नाम कुलाङ्गना।" १७

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—हे सरल आत्मन्! तुम्हें क्षमा नामक कुलीन महिला के साथ अपना संपर्क बढाना चाहिये।
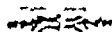
(२२)

विनय-धर्म-मूल

"पांडित्ये सति नम्रत्वं हीरोऽयं कनकोऽपरि ।" १

(सूक्त-रत्नावली)

भावार्थः—विद्वता के साथ विनय होना, सोने के ऊपर हीरा होने के समान है ।

"नमन्ति गुणिनो जनाः ।" २

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—गुणी जन नम्र होते हैं, विनयी होते हैं ।

"सकलगुणभूषा च विनयः ।" ३

भावार्थः—विनय ही समस्त गुणों का शृङ्गार है, विनय से ही सभी गुण शोभा पाते हैं ।

"महीपतीनां विनयो हि भूषणम् ।" ४

भावार्थः—राजाओं के लिये भी विनय भूषण स्वरूप है ।

"विनयाद्याति पात्रताम् ।" ५

भावार्थः—*विनय से पात्रता, सात्त्विकता, सुयोग्यता प्राप्त होती है ।*

"कः सुनु र्विनयं विना ?" ६

भावार्थः—*विनय रहित पुत्र किस काम का है ?*

"विनयायत्ताश्च गुणा सर्वे ।" ७

(प्रशमरति)

भावार्थः—*समस्त गुण विनय के ही अधीन होते हैं ।*

"कष्टो हि अविनयक्रमः ।" ८

भावार्थः—*अविनय की, उद्दण्डता की पद्धति कष्ट-प्रद हुआ करती है ।*

(२३)

परोपकार-सद्गुण
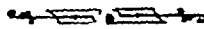
"परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम् ।" १

भावार्थः—*प्राणियों की हित-साधना करने के बराबर तो कोई दूसरा पुण्य नहीं है, और जीवों को किसी भी प्रकार का कष्ट पहुंचाने के बराबर दूसरा कोई पाप नहीं है।*

"परोपकाराय सतां विभूतयः ।" २

(उद्भट सागर)

भावार्थः—*सत्पुरुषों की सम्पत्तियाँ पर हित के लिये ही हुआ करती हैं।*

"संसारे न परोपकारसदृशं पश्यामि पुण्यम् सताम् ।" ३

—क्षेमेन्द्र कवि

भावार्थः—*मैं इस विश्व में सज्जन पुरुषों द्वारा किये जाने वाले परोपकार के समान और दूसरा कोई पुण्यकार्य नहीं देखता हूँ।*

"निजप्राणैः परप्राणानेको जीमूतवाहनः (रक्षति) ।" ४

(ज्ञान-शतक)

भावार्थः—एक केवल जलधर मेघ ही दूसरे प्राणियों के प्राणों को अपने प्राणों द्वारा बचाता है।

'परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एव।' ५

भावार्थः—जिसके वचन केवल पर-हित साधना के लिये ही हैं, वही वदना के योग्य है, और वही तीनों लोक में तिलक के समान है।

"परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति।" ६

भावार्थः—जो केवल परोपकार के लिये ही जीवित रहता है सही अर्थों में वही जीवित है, शेष तो जीवित होते हुए भी मृत पुरुष के समान ही हैं।

"परोपकारशून्यस्य धिङ् मनुष्यस्य जीवितम्।" ७

(भागवत-स्कंध)

भावार्थः—जिसके जीवन में परोपकार का अंश भी नहीं है, उस मनुष्य के जीवन को धिक्कार है।

"परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि।" ८

(भागवत स्कन्ध)

भावार्थः—परोपकार से जितना पुण्य प्राप्त होता है, उतना सैंकड़ों यज्ञ करने पर भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है।

"अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।" ९

भावार्थः—वृक्ष की परोपकार भावना देखियेगा कि—वह अपने सिर पर तो घोर गर्मी का अनुभव करता है, परन्तु अपने आश्रित प्राणियों को अपनी छाया द्वारा गरमी मिटा कर शांति प्रदान करता है।

"नोपकारं विना प्रीतिः कथञ्चित् कस्यचिद्भवेत् ।" १०

(पञ्च तंत्र)

भावार्थः—उपकार किये बिना किसी को भी किसी के साथ प्रीति नहीं हुआ करती है ।

'(परोपकारेण) भवेत् स्वर्गेऽक्षयो वासः कीर्तिश्च धरणीतले ।' ११

भावार्थः—परोपकार से स्वर्ग में दीर्घ आयु प्राप्त होती है, और पृथ्वी पर विस्तृत यश-कीर्ति फैलती है ।

"परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये ।" १२

भावार्थः—परहित में लगे हुए पुरुष को स्वहित की ओर ध्यान नहीं रहता है ।

"यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यंचोऽपि सहायताम् ।" १३

भावार्थ—न्याय और नीति के साथ प्रवृत्ति करने वाले के लिये मनुष्य तो क्या परन्तु तिर्यंच तक भी सहायता किया करते हैं ।

"स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ।" १४

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—जो सत्कार्य नहीं करता है, वह लुहार की धमनी

के समान सांस लेता हुआ भी जीवित नहीं है। तात्पर्य यह है कि परोपकार से हीन पुरुष मृत प्राणी के समान ही हैं।

"अपृष्टोऽपि हितं न ब्रूयात् यस्य नेच्छेत् पराभवम्।" १५

भावार्थः—जो अपने आपका अपमान अथवा पराजय नहीं चाहता हो, तो वह विना पूछे हित की बात भी नहीं कहे।

"प्रत्युप कुरुते वह्वपि न भवति पूर्वोपकारिणस्तुल्यः।" १६
(श्राद्ध-विधि)

भावार्थः- सर्व प्रथम उपकार करने वाले के प्रति बाद में अनेकानेक प्रति-उपकार करने पर भी दूसरा व्यक्ति प्रथम व्यक्ति के बराबर नहीं हो सकता है।

"निर्गलिताम्बुगर्भंशरद्घनं नार्दति चातकोऽपि।" १७

भावार्थः—जो बादल पानी बरसाने के कारण से खाली हो गये हैं, ऐसे शरद् ऋतु के बादलों को देख करके चातक-पक्षी भी उनसे किसी भी प्रकार की आशा नहीं करता है। वैसे ही परोपकारहीन पुरुष की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता है।
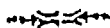
(२४)

सज्जन-महा पुरुष
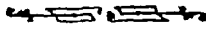
"मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ।" १

—भर्तृहरि

भावार्थः—निरन्तर सत् कार्य करने की इच्छा रखने वाला बुद्धिमान् पुरुष अपने ध्येय की साधना में न तो दुःख को ही गिना करता है और न सुख की ही आकांक्षा किया करता है।

"सज्जनश्च गुणग्राही ।" २

(सुभाषित संचय)

भावार्थ:—सज्जन पुरुष दोषों की ओर ध्यान नहीं देकर केवल गुणों को ही ग्रहण करने वाले होते हैं।

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।" ३

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—महात्मा पुरुषों की आत्मा इतनी सरल, सीधी, और निष्कपट होती है कि उनके मन में जो जो भावनाएं होती हैं, उन्हें शब्द द्वारा उसी रीति से प्रकट कर देते हैं, एवं जीवन-व्यवहार

भी उसी रीति द्वारा निभाते हैं, इसीलिए कहा गया है कि मन में, वचन में, और कार्यों में, महात्मा पुरुषों की वृत्ति एक समान ही होती है।

"निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।" ४

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—साधु पुरुषों की प्रकृति इतनी महान् होती है कि वे गुणहीन प्राणियों पर भी दया और सहानुभूति प्रकट करते हैं।

"परात्मनिन्दास्तोत्रे हि नाद्रियन्ते मनीषिणः।" ५

भावार्थः—ज्ञानी पुरुष न तो दूसरों की निंदा ही सुनते हैं अथवा करते हैं और न आत्म प्रशंसा की ओर ही ध्यान देते हैं। स्वयं भी अपनी प्रशंसा अपने मुंह से नहीं करते हैं।

"परार्थप्रतिपन्ना हि नेक्षन्ते स्वार्थमुत्तमाः।" ६

भावार्थः—परोपकार करना ही एकमात्र व्रत है जिनका, ऐसे उत्तम पुरुष अपने स्वार्थ की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया करते हैं।

"जात्यैवैते परहितविधौ साधवो बद्धकक्षाः।" ७

(पार्श्वनाथ-चरित्र)

भावार्थः—साधु महात्माओं की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वे पर-हित साधना में सदैव तत्पर रहते हैं।

"परार्थनिष्ठचित्तस्य किमदेयं महात्मनः।" ८

भावार्थः—परोपकार में ही संलग्न है चित्त जिसका, ऐसे महापुरुष के लिए परोपकार का प्रसंग उपस्थित होने पर उनके लिये कौनसी वस्तु अदेय होती है ? अर्थात् वे सज्जन पुरुष सर्वस्व देने के लिये तैयार रहते हैं।

"महतां विकृतिः कुतः ?" ९

भावार्थः—जो वास्तव में महापुरुष हैं, उनमें विकारों की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

"सुखमास्ते निःस्पृहपुरुषः ।" १०

भावार्थः—किसी भी प्रकार की लाग-लपेट नहीं रखने वाला और सभी प्रकार की लालसाओं से रहित पुरुष ही निर्मल आनंद का अनुभव कर सकता है।

"परोपकाराय सतां विभूतयः ।" ११

भावार्थः—सत्पुरुषों की धन-संपत्ति और वैभव-सामग्री केवल परोपकार के लिये ही हुआ करती है।

"त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि प्राणानपि न सत्पथम् ।" १२

भावार्थः—जो उत्तम कोटि के प्राणी होते हैं, वे समय आने पर अपने धर्म की रक्षा करने के लिये अपने प्राणों तक की बलि देने के लिये तैयार हो जाते हैं, परन्तु सत्य मार्ग का परित्याग करने के लिये तैयार नहीं होते हैं।

"अनुद्धत्ताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।" १३

भावार्थः—सुख-संपत्ति-वैभव के प्रचुर मात्रा में विद्यमान होने पर भी सज्जन पुरुष कभी भी उद्दण्ड अथवा अहंकारी नहीं हुआ करते हैं। अनुभवियों ने सत्य ही कहा है कि परोपकारी पुरुषों का ऐसा स्वभाव हुआ ही करता है।

"दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना,
छायेव मैत्री खल सज्जनानाम् ।" १४

भावार्थः—प्रात. कालीन छाया प्रारंभ में तो बड़ी होती है, परन्तु वह घटते घटते दोपहर तक सर्वथा ही क्षीण होकर मिट जाती है, जबकि दिन की तीसरे पहर की छाया प्रारंभ में तो छोटी होती है, परन्तु वह क्रमश. बढ़ते-बढ़ते सायंकाल में बहुत बडी हो जाती है। यही दशा दुर्जन और सज्जन की मित्रता के संबंध में समझना चाहिये।

दुर्जन की मित्रता प्रातः कालीन छाया के समान और सज्जन की मित्रता दोपहर की छाया के समान समझना।

"सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।" १५
(पंच तंत्र)

भावार्थः—सुख-संपत्ति से परिपूर्ण समय में महापुरुषों का चित्त कमल के समान कोमल और मधुर बन जाता है।

"उदारचित्तानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।" १६

भावार्थः—जो क्षुद्र हृदय वाले होते हैं, उन्हीं में "यह मेरा और यह तेरा" ऐसे तुच्छ विचार पाये जाते हैं, किन्तु जो विशाल हृदय वाले सज्जन पुरुष हैं, उनके लिये तो सारा विश्व ही कुटुम्ब के समान होता है।

"तन्मन्ये खलसकलं जगदिदं द्वित्राः क्षितौ सज्जना।" १७

भावार्थः—मेरा ऐसा अनुमान है कि इस पृथ्वी पर दो तीन ही सज्जन हैं, और शेष संपूर्ण विश्व दुष्ट पुरुषों से ही परिपूर्ण है।

"प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।" १८

भावार्थः—उत्तम पुरुष जब किसी काम को प्रारंभ कर देते हैं, तो उसे परिपूर्ण किये बिना नहीं छोड़ा करते हैं।

"न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते सज्जनानाम्।" १९

भावार्थः—सज्जन पुरुषों के लिये चाहे प्राणान्त कष्टप्रद स्थिति उपस्थित हो जाय, तो भी उनकी सात्विक प्रकृति में किसी भी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न हुआ करता है।

"सद्भिस्तु लीलया प्रोक्तं शिलालिखितमक्षरम्।" २०

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—महापुरुषों द्वारा हँसी खुशी में कहे हुए वचन भी पत्थर पर लिखे गये अक्षरों के समान अमिट होते हैं, चिर-स्थायी होते हैं।

"न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम्।" २१

भावार्थः—सज्जन पुरुषों के वचन उल्टे-सुल्टे नहीं होते हैं। अर्थात् उनके वचनों में विवेक, विचारणा और सत्यता होती है।

"क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।" २२

भावार्थः—महान् पुरुषों को अलौकिक, असाधारण अथवा कोई ऐतिहासिक सफलता मिलती है, उसका मूल कारण उनकी अपनी चारित्र संबंधी शक्ति ही है, बाह्य साधन और बाह्य निमित्त कारण सर्वथा ही गौण नगण्य ही होते हैं।

"नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।" २३

भावार्थः—जैसे नारियल बाहिर से तो अरमणीय प्रतीत होता है, परन्तु अपने पेट में—अन्तर भाग में—वही सुन्दर, वही स्वादिष्ट और गुणकारक पदार्थ तत्त्व रखता है, वैसे ही सज्जन पुरुष भी ऊपर से तो सामान्य ही प्रतीत होते हैं, परन्तु उनके मन में और हृदय में दया, प्रेम और हित-भावना का समुद्र हिलोरें लेता रहता है।

"कीर्तिम् पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां लक्षणम्।"२४
—भर्तृहरि

भावार्थः—दुखियों पर दया करो और अपनी यश-कीर्ति की रक्षा करते रहो, यही सज्जन पुरुषों का लक्षण है।

"महाजनो येन गतः स पन्थाः।" २५

भावार्थः—वही मार्ग उत्तम है, जिस मार्ग से सज्जन महापुरुषों ने अपना जीवन व्यवहार चलाया हो।

"महतामनुकम्पा हि विरुद्धेषु प्रतिक्रिया ।" २६

भावार्थः—*यदि महापुरुषों के प्रति कोई अपना वैर-विरोध प्रकट करता हो, तो उन विरोधियों के प्रति भी महापुरुष तो अपनी प्रतिक्रिया के रूप में केवल अनुकंपा ही प्रकट करते हैं।*

"करुणार्द्रा हि सर्वस्य संतोऽकारणबांधवाः ।" २७

भावार्थः—*संत-महात्मा करुणा और अनुकंपा से इतने परिपूर्ण और समग्र होते हैं कि वे विना किसी कारण के ही विश्व के प्राणी मात्र के साथ वन्धु-भाव का व्यवहार करते हैं। सभी की हित-कामना ही किया करते हैं।*

"कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवंति ।" २८

भावार्थः—*सज्जन पुरुष कभी भी शोक ग्रसित नहीं हुआ करते हैं।*

"कंठे सुधा वसति वै खलु सज्जनानाम् ।" २६

भावार्थः—*सज्जन पुरुष इतना मृदु और मधुर बोलते हैं कि मानों उनके कंठ में अमृत ही निवास करता हो।*

"अक्षोभ्यतैव महतां महत्वस्य हि लक्षणम् ।" ३०

भावार्थः—*महान् पुरुषों की महानता का लक्षण यही है कि प्रतिकूल परिस्थिति में भी अधैर्य और घबराहट उत्पन्न नहीं होने देना।*

"संतः स्वयं परहिताभिहिताभियोगाः ।" ३१

भावार्थः—महात्मा पुरुष अपना संपूर्ण प्रयत्न एवं परिश्रम केवल पर-हित साधनो में ही व्यय किया करते हैं।

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।" ३२

भावार्थः—सज्जन-पुरुषों के चित्त की वृत्ति सामान्य रूप से जानी नही जा सकती है। घोर-संकट काल में तो वह वज्र से भी अधिक कठोर और मजदूत हो जाती है, एवं सुख-वैभव के समय में सरलता तथा विनय के कारण से फूल से भी अधिक कोमल एवं मृदु बन जाती है।

"स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः।" ३३

भावार्थः—उस आदर्श पुरुष को सज्जन पुरुषों का नायक एवं अग्रगण्य नेता ही समझो, जो कि पर हित-साधना में ही अपना स्वार्थ समझता है।

"साधोः शक्तिः परेषां रक्षणाय।" ३४

भावार्थ—सज्जन पुरुष अपनी शक्ति का उपयोग केवल अन्य प्राणियों की रक्षा के लिये ही किया करते हैं।

"ते केऽपीन्द्रियतस्करैरपहृतं येषां न पुण्यं धनम्।" ३५

(कस्तूरी-प्रकरण)

भावार्थः—वे महापुरुष कौन है? जिनके पुण्य रूप धन को इन्द्रिय रूप चोरों ने नहीं चुराया है। अर्थात् जिन आत्माओं ने इन्द्रिय के भोगों में नही फस कर अपने पुण्य को और गुणों को क्षीण नहीं किया है, ऐसे वे महात्मा कौन हैं?

"प्रणामान्तः सतां कोपः।" ३६

भावार्थः—सज्जन पुरुषों का क्रोध इतना सरल होता है कि प्रणाम करते ही—विनय-प्रदर्शित करते ही समाप्त हो जाता है।

"सुदुर्ग्रहान्तःकरणा हि साधवः।" ३७

भावार्थः—साधु-महात्माओं के अन्तःकरण अत्यत कठिनाई से समझने योग्य और जीतने योग्य होते है।

"साधूनां हि परोपकारकरणे नोपाध्यपेक्षं मनः।" ३८

भावार्थः—महापुरुषों के चित्त में ऐसी विशेषता हुआ करती है कि वह परोपकार करने के समय में आने वाली आपत्तियों के प्रति शक्तिहीन नहीं हुआ करती हैं।

"पंगुः परधनहरणे स जयति लोके महापुरुषः।" ३६

—पद्मानन्द

भावार्थः—वह महापुरुष ही इस विश्व में जय-विजय-शील होता है, जो कि दूसरों के धन का अपहरण करने में सर्वथा ही अंगोपांग हीन जैसा बन जाता है।

"आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्।" ४०

(जैन पंच तत्र)

भावार्थ.—असाधारण चारित्र संपन्न महापुरुषों का चित्त आपत्ति काल में पर्वतराज हिमालय की शिलाओं -चट्टानों के समूह के समान अभेद्य और कठोर हो जाता है।

"प्रलयेऽपि न मुञ्चन्ति महान्तोऽङ्गीकृतं व्रतम् ।" ४१
(पार्श्वनाथ-चरित्र)

भावार्थः—प्रलय-कालीन जैसी घोर कष्ट-प्रद और संकटमय अवस्था उपस्थित हो जाने पर भी महात्मा-पुरुष अंगीकार किये हुए व्रत को नहीं छोड़ा करते हैं ।

"पाषाणरेखेव प्रतिपन्नं महात्मनाम् ।" ४२

भावार्थः—महात्मा पुरुषों द्वारा स्वीकृत और अंगीकृत सिद्धांत और व्रत नियम आदि पत्थर की रेखा के समान अमिट और स्थायी होते हैं ।

"सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ।" ४३

भावार्थः—अनन्त आनन्द के समय में भी और घोर-संकट-कष्ट के समय में भी महापुरुषों की एक समान ही अवस्था रहती है ।

"एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये ।" ४४

भावार्थः—वे ही सज्जन पुरुष हैं, जो कि अपने स्वार्थ का परित्याग करके भी अन्य जीवों की हित-साधना किया करते हैं ।

"विनाऽप्यैश्वर्येन प्रकृतिर्महतां मंडनमिदम् ।" ४५
—भर्तृहरि

भावार्थ.—ऐश्वर्य के अभाव में भी महापुरुषों का स्वभाव ही उनकी शोभा बढ़ाया करता है ।

"दुःखे क्लेशसहिष्णुता च महतां कल्याणमाकांक्षति।" ४६

—क्षेमेन्द्र कवि

भावार्थः—महापुरुषों की शांति पूर्वक कष्ट सहन करने की शक्ति ही दुःख के समय में कल्याण की आकांक्षा किया करती है।

"ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः।" ४७

भावार्थः—प्रचंड झंझावात अथवा प्रबलतम अंधड़ चलने पर भी पर्वत तो अचल और अडोल ही रहते हैं। यही स्थिति संकट-काल में महापुरुषों की भी समझना।

"कर्त्तव्यं महदाश्रयः।" ४८

भावार्थः—सज्जनों का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये, जिससे कि आत्मिक गुणों का विकास हो सके।

(२५)

मानवता-जीवन गुण

"एवं भ्रमतः संसारसागरे दुर्लभम् मनुष्यत्वम् ।" १

भावार्थः—संसार-सागर में परिभ्रमण करते हुए जीव के लिये मनुष्य-जीवन की प्राप्ति अति ही कठिन है ।

"मानुष्यं भवता सुरत्नमिव रे दुष्प्रापमासादितम् ।" २

(संवेगद्रुम कंदली)

भावार्थः—अरे आत्मन् ! तू ने कठिनाई से प्राप्त होने योग्य और श्रेष्ठ रत्न के समान यह मानव-जन्म प्राप्त कर लिया है ।

"नरत्वमेव दुःप्राप्यं गुणोपेतं शरीरिभिः ।" ३

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—प्राणियों के लिये गुण सहित मानव-जीवन मिलना दुर्लभ है ।

"दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं हारयध्वं मुधैव मा ।" ४

(पार्श्वनाथ-चरित्र)

भावार्थः—कठिनता से मिलने वाला नर-तन पाकर इन्द्रिय-भोगों द्वारा इसको व्यर्थ ही मत खोओ।

"उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः।" ५

भावार्थः—मनुष्य नित्य नवीन आनंद के प्रेमी हुआ करते हैं।

"संसारे मानुष्यं सारं।" ६

भावार्थः—संसार में रहते हुए मानवीय गुणों की वृद्धि करना ही सार तत्त्व है।

"जितेन्द्रिया महासत्वा ये त एव नरा भुवि।" ७

(योग-वाशिष्ठ)

भावार्थ.—पृथ्वी पर उन्हें ही मनुष्य कहना चाहिये, जो कि जितेन्द्रिय हैं और आत्म-शक्ति से परिपूर्ण हैं।

"मनुष्य-प्राप्तिः दुर्लभम्।" ८

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—मनुष्य-जीवन की प्राप्ति होना अति दुर्लभ है।

"कुक्षिभरणनिष्ठा ये ते नराः नरकगामिनः।" ९

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—जो मनुष्य केवल अपने पेट भरने की चिंता में ही मग्न हैं, वे नरक-गामी हुआ करते हैं।

"मनुष्याः स्खलनशीलाः।" १०

भावार्थः—मनुष्य भूल करने की आदत वाले हुआ करते हैं।

"तेऽमी मानुषराक्षसा परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।" ११

भावार्थः—जो अपनी हित-साधना के लिये पर के हित का विनाश करते हैं, वे मनुष्य होते हुए भी राक्षस हैं।

"पात्रे दानं सतां संगः फलं मनुज-जन्मनः।" १२

(सूक्त-रत्नावली)

भावार्थः—सत्पात्र को दान देना और सत्पुरुषों की संगति करना, इसी में मानव-जीवन की सफलता है।

(२६)

विवेक-जीवनादर्श

"विवेको मुक्ति-साधनम् ।" १

भावार्थ.—विवेक अथवा सारासार विचार शक्ति मुक्ति-प्राप्ति का साधन है।

"न विवेकं विना ज्ञानं ।" २

भावार्थः—विवेक के अभाव में ज्ञान सार्थक नहीं हुआ करता है।

"जागर्ति को वा ? सदसद्विवेकी ।" ३

भावार्थः—जागृत कौन है ? जो सत् और असत् में भली प्रकार से भेद कर सकता है। ऐसा भाग्यशाली पुरुष ही जागृत है।

"वैशेष्यमेकं हि नरे विचारणम् ।" ४

भावार्थः—अन्य प्राणियों की अपेक्षा से मानव में विचार रूप विवेक शक्ति की ही असाधारण विशेषता है।

"झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः ।" ५

भावार्थः—शीघ्रता पूर्वक दूसरों के तात्पर्य को समझ लेने वाले ही विज्ञ याने बुद्धिमान् कहे जाते हैं।

"विवेकधारा शतधौतमन्तम् ।" ६

भावार्थः—विवेक की सैंकड़ों धाराओं से अन्तःकरण निर्मल होना चाहिए।

"मतिरेव बलाद् गरीयसी ।" ७

भावार्थः—बुद्धि ही बल से अधिक शक्ति रखती है।

"विवेकदृष्ट्या चरतां जनानां
श्रियो न किञ्चित् विपदो न किञ्चित् ।" ८

भावार्थः—विवेक पूर्वक आचरण करने वालों के लिये न कोई संपत्ति है और न कोई विपत्ति। विवेक-दृष्टि से जीवन चलाने वाले पुरुषों के लिये संपत्ति हर्ष-दायक नहीं हुआ करती है और विपत्ति भी दुःखप्रद नहीं होती है। दोनों ही अवस्थाओं में वे तटस्थ भावना रखते हैं।

"एको हि चक्षुरमलः सहजो विवेकः ।" ९

भावार्थः—निर्मल और स्वाभाविक विवेक ही एक मात्र असाधारण नेत्र है।

"विवेको गुरुवत् सर्वं कृत्याकृत्यं प्रकाशयेत् ।" १०

भावार्थः—गुरु के समान विवेक करने योग्य और नहीं करने योग्य कार्य को प्रदर्शित कर देता है।

"निर्वातहृद्गेहगतः प्रकाशयेत्
सर्वेप्सितं वस्तुविचारदीपकः।" ११

—पद्मानन्द

भावार्थः—चंचलता रूप हवा से जो रहित है, एवं हृदय-रूप भवन में जो स्थित है, तथा वस्तु-तत्त्व की विचार-शृंखला को जो प्रकाशित करने वाला है, ऐसा विवेक रूप आदर्श दीपक सभी इष्ट ज्ञान-पद्धति को प्रकाशित कर देता है।

"कीर्तिः कलंकविकला यदि सा ततः किं
अन्तर्विवेककलिका यदि नोल्लसिता ?" १२

—पद्मानन्द

भावार्थः—यदि हृदय में विवेक रूप कली ने अपना विकास नहीं किया और अन्य कारणों से निर्मल यश-कीर्ति प्राप्त भी हो गई तो उससे क्या लाभ होने वाला है ?

"अविवेकः परमापदां पदम्।" १३

भावार्थ—विवेकहीनता अर्थात् सारासार ज्ञान रहितता आपत्तियों का मुख्य स्थान है।

"ईर्ष्या हि विवेक परिपन्थिनी।" १४

भावार्थः—ईर्ष्या-मत्सरता, पर उन्नति के प्रति असहिष्णुता विवेक शक्ति को नष्ट कर देती है।

"किमौषधं ? तस्य विचार एव।" १५

भावार्थः—कषाय-रोग की औषधि क्या है ? विवेक जनित सात्विक विचार धारा ही कषाय रोग को नष्ट करने वाली औषधि है।

"कायः परोपकाराय धारयन्ति विवेकिनः।" १६

(धर्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—विवेकशील महा पुरुष अपना शरीर भी प्राणी मात्र का हित करने के लिए ही धारण किया करते हैं।

"पुंसां विवेकहीनानां सेवया न धनार्जनम्।" १७

भावार्थः—विवेकहीन पुरुषों की सेवा करने से धन की प्राप्ति नहीं हुआ करती है।

"पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना।" १८

भावार्थः—जितने शरीर हैं, उतने ही प्रकार की बुद्धियाँ रही हुई हैं।

"न पतति आपदम्भोधौ विमृश्य कार्यकारकः।" १९

भावार्थः—विचार करके काम करने वाला दुःखसागर में नहीं गिरा करता है।

"अनुरागान्धमनसां विचारः सहसा कुतः ?" २०

भावार्थः—विषय-राग में अंधा हो गया है मन जिनका, ऐसे पुरुषों को अकस्मात् ही सद् विचारों की स्फूर्ति कैसे हो सकती है।

(२७)

वाणी-अद्वितीय आभूषण

"सत्यपूतां वदेद्वाणीम् ।" १

भावार्थः—सत्य से अनुबंधित वचनों को ही, एवं सत्य से पवित्र हुई वाणी को ही बोलना चाहिये।

"अवसरपठिता वाणी गुणगणरहिताऽपि शोभते पुसां ।" २

भावार्थः—गुणों से रहित होती हुई भी परन्तु उपयुक्त अवसर पर कही गई वाणी भी पुरुषों के लिये शोभाजनक हुआ करती है।

"प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।" ३

भावार्थः—मीठे वचन बोलने से सभी प्राणी संतुष्ट हुआ करते हैं।

"शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यम् ।" ४

भावार्थः—शास्त्र द्वारा अनुमोदित और संशोधित वाक्यावली ही बोलना चाहिये। अर्थात् शास्त्रों के प्रतिकूल प्ररूपणा नहीं करना चाहिये।

भावार्थः—यह ऐसा ही है; ऐसी निश्चयात्मक वाणी चतुर पुरुष द्वारा नहीं बोली जानी चाहिए। क्योंकि इससे हठाग्रह प्रतीत होता है, एवं परिस्थितिवशात् अनिष्ट की उत्पत्ति भी हो सकती है।

"नूनं सुभाषितरसोऽन्यरसातिशायी।" १६

भावार्थः—सौन्दर्य से संयुक्त और कल्याण से परिपूर्ण ऐसा संभाषण का रस ही विश्व में उपलब्ध सभी रसों की अपेक्षा से सर्वाधिक-हितावह रस है।

"वाक्यं प्रियं हितं वाच्यं देशकालानुगं बुधैः।" १७
(विवेक-विलास)

भावार्थः—जो प्रिय हो, हितकारी हो, देश-काल की परिस्थिति के अनुकूल हो, ऐसा सुन्दर वाक्य ही बुद्धिमानों द्वारा बोला जाना चाहिए।

"निरवद्यं वदेद्वाक्यं मधुरं हितमर्थवत्।" १८
(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो पाप रहित हो, मधुर हो, हितकारी हो और सार्थ हो, ऐसा ही वचन बोलना चाहिये।

'अल्पाक्षररमणीयं यः कथयति निश्चितं स खलु वाग्मी।' १९

भावार्थः—जो सौन्दर्य के साथ केवल थोड़े से अक्षरों द्वारा ही अपने मन्तव्य को स्पष्ट अर्थ में प्रकट कर देता है, निश्चय में वही श्रेष्ठ और सफल वक्ता है।

"अर्थभारवती वाणी भजते कामपि श्रियम् !" २०

भावार्थः—अर्थ गंभीरता से परिपूर्ण वाणी कुछ निराली शोभा वाली ही हुआ करती है।

"जिनवरवचनादन्यत्र नास्ति शरणं क्वचिल्लोके।" २१
(प्रशम रति)

भावार्थः—इस विशाल विश्व में परिभ्रमण करने वाले प्राणी के लिये वीतराग प्रभु जिनेन्द्रदेव के वचनों के अतिरिक्त अन्य कोई भी और कहीं पर भी ऐसा कल्याणप्रद शरण स्थल नहीं है।

"अनर्थहेतुश्च वचः पटुत्वम्।" २२

भावार्थः—आत्मानुभूति के अभाव में वाक्-चातुर्य केवल अनर्थ का कारण ही हुआ करता है।

'क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।' २३
—भर्तृहरि

भावार्थः—सोने चांदी से निर्मित अलंकार आभूषण तो नष्ट हो जाया करते हैं, किन्तु कवियों और ग्रंथकारों द्वारा निर्मित वाणी रूप आभूषण-अलंकार सदैव अजर और अमर रूप ही हुआ करते हैं।

"मुखरन्ध्रमनाच्छिद्य भणनीयं न कर्हिचित्।" २४

भावार्थः—मुंह को बिना ढंके और बिना यतना किये कभी भी नहीं बोलना चाहिये।

"सुभाषितरसस्वादाल्लज्जिता स्वर्गगता सुधा ।" २५

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—निर्दोष, प्रामाणिक, और सौन्दर्य युक्त संभाषण के मधुरतामय रसास्वादन की तुलना में स्वर्गीय अमृत भी लज्जा अनुभव करता है ।

"याचितारं निराकर्त्तुम् सतां जिह्वा जड़ायते ।" २६

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—याचक की प्रार्थना को अस्वीकृत करने के लिये सज्जनों की जिह्वा जड़ बन जाया करती है । अर्थात् सज्जन पुरुष याचकों के आगे अपने मुंह से 'नहीं' ऐसा नहीं कहा करते हैं ।

"निर्दयं वचस्त्याज्यं प्राणैः कंठगतैरपि ।" २७

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—प्राणान्त कष्ट होने पर भी करुणा हीन वचन नहीं बोलना चाहिये ।

"तास्तु वाचः सभायोग्या याश्चित्ताकर्षणक्षमाः ।" २८

भावार्थः—जो वचन-शैली श्रोताओं के चित्त को आकर्षित करने में योग्य और समर्थ होती है, ऐसी ही सौन्दर्य युक्त वाक्यावली सभा में बोलने योग्य एवं सभा के अनुरूप मानी जाती है ।

"अपशब्दोज्झितं लोकमर्मास्पर्शि सदा वदेत् ।"

(विवेक-विलास)

भावार्थः—सदा ऐसी भाषा ही बोलना चाहिए, जो कि अप-शब्द, ग्रामीण शब्द, तुच्छ शब्द और अश्लील शब्द से रहित हो तथा जनता के हृदय में जम जाने वाली और प्रभाव उत्पन्न करने वाली हो।

"स्तोकं कार्यकरं स्वादु निर्गर्वम् निपुणं वदेत्।" ३०

भावार्थः—जो परिमित हो, उपयोगी हो, मधुर हो, अहंकार रहित हो, और चतुराई से परिपूर्ण हो, ऐसा वचन ही बोलना चाहिए।

"अनुकूलं च सत्यं च वक्तव्यं स्वामिना सह।" ३१

भावार्थः—अपने स्वामी के साथ अनुकूल और सत्य वचन ही बोलना चाहिये। वचनों में अधिक चंचलता और चपलता नही होनी चाहिये।

"स्वामिनां स्वगुरुणां च नाधिक्षेप्यं वचो बुधैः।" ३२
(विवेक-विलास)

भावार्थः—ऐसा वचन बुद्धिमानों द्वारा नहीं बोला जाना चाहिये, जो कि अपने स्वामी का अथवा अपने गुरु-जनों का अपमान करता हो, तिरस्कार करता हो, या निन्दा करता हो।

'यदा यदा मुञ्चति वाक्यबाणं तदा तदा जातिकुल प्रमाणम्' ३३

भावार्थः—पुरुष जिस जिस समय में जैसे-जैसे वचन रूप बाण फेंकता है, उस उस समय में उनके आचार से ही उसकी जाती-यता का और कुलीनता का पता अन्य व्यक्तियों को होता रहता है।

(२८)

वैराग्य-मोक्ष-द्वार
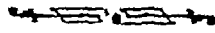
"वैराग्यमेवाऽभयम् ।" १

—भर्तृहरि

भावार्थः—संसार की सभी वस्तुओं में विनाश होने का भय रहा हुआ है, किन्तु वैराग्य एक ऐसा तत्त्व है, जो कि सभी प्रकार के भयों से मुक्त है।

"निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।" २

भावार्थः—अनासक्त पुरुष के लिये गृहस्थावास भी तपोवन के समान ही है।

"मुक्तौ साधनमादौ तत्र विरागो वितृष्णता प्रोक्ता ।" ३

(सुबोध पद्माकर)

भावार्थः—मुक्ति प्राप्ति का सर्व-प्रथम साधन विराग ही है। भौतिक पदार्थों के प्रति अपनी रति भावना को हटाना ही वितृष्णा है।

"तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ?" ४

भावार्थः—स्वर्ग का स्थान क्या है ? तृष्णा का क्षय ही, आसक्ति का विनाश ही स्वर्ग का स्थान है ।

"निःसंगाद्भवति महतां मानपूजोपहारः ।" ५

भावार्थः—निरासक्ति से ही महापुरुषों को मान, पूजा और सन्मान प्राप्त हुआ करते हैं ।

"धन्यास्ते भुवि ये निवृत्तमनसो ।" ६

भावार्थः—पृथ्वी तल पर वे प्रशंसा के पात्र हैं, जो कि विरक्त चित्त हैं, वैराग्यशील हैं ।

"कस्य सुखं न करोति विरागः ।" ७

भावार्थः—वैराग्य किसको सुख नहीं देता है ? अर्थात् वैराग्य तीनों लोक में सुख देने वाला ही है ।

"आत्मैव ह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।" ८

(भगवत् गीता)

भावार्थः—आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है ।

"न वैराग्यात्परं भाग्यम् ।" ९

भावार्थः—वैराग्य से बढ़ कर अधिक श्रेयस्कर दूसरा कार्य अथवा भाग्य नहीं हो सकता है ।

विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निवृतिः ।" १०

(हितोपदेश)

भावार्थः—गंभीरता पूर्वक विचार करता हूँ तो मुझे अनुभव होता है कि इन्द्रिय-भोगों से निवृत्ति लेना ही -इन्हें छोड़ देना ही— वास्तविक सुख है।

संमीलने नयनयो र्नहि किञ्चिदस्ति।" ११

—भर्तृहरि

भावार्थः—सभी प्रकार का वैभव और सुख सुविधाएँ होने पर भी जिस क्षण दोनों आँखें सदा के लिये बंद हो जायंगी, उस समय मे सभी वैभव निरर्थक और शून्य रूप हो जायगा।

"न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति।" १२

भावार्थः—जिसको प्रिय जन याद करते हों, वह विरक्त नहीं कहा जा सकता है।

"न त्वं नाऽहं नाऽयं लोकः तदपि किमर्थं क्रियते शोकः।"१३

(मोह-मुद्गर)

भावार्थ—न तू मेरा है, और न मैं ही तुम्हारा हूँ, एवं यह दृश्यमान जगत् भी किसी का नहीं है, तो फिर व्यर्थ ही शोक-चिंता किस कारण से की जाती है?

विधि-जीवन-व्यवहार
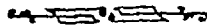
"वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।" १

भावार्थः—पानी को वस्त्र द्वारा छान कर पीना चाहिये ।

"देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।" २

भावार्थः—देश, काल और अपनी शक्ति का परिस्थिति के अनुसार अनुमान लगा करके सभी कामों की साधना करनी चाहिये ।

"दृष्टिपूतं न्यसेत्पादम् ।" ३

भावार्थः—आँखों से ध्यान पूर्वक देखता हुआ ही पैर रक्खें ।

"न गणस्याग्रतो गच्छेत् ।" ४

भावार्थः—साथियों के आगे आगे नहीं चले और सोच विचार करके ही नायक बने ।

"शिष्टागमनेऽनाध्यायः ।" ५

भावार्थः—शिष्ट पुरुषों के आगमन पर पढ़ना-पढ़ाना कुछ समय के लिये स्थगित रखा जाना चाहिये ।

"न पुंसां वामलोचनं ।" ६

भावार्थः—पुरुष का बांया नेत्र फरकना अच्छा नहीं है।

"अविश्रमो लोकतन्त्राधिकारः ।" ७

भावार्थः—प्रजा तंत्र शासन निरंतर प्रगतिशील होता है।

"बहुविघ्नास्तु सदा कल्याणसिद्धयः ।" ८

भावार्थः—अनेक विघ्नों की एक साथ उपस्थिति होना सदा ही कल्याणप्रद समझा गया है।

"निमित्तं च विकालानां न वाच्यं कस्यचित् पुरः । ९

भावार्थः—किसी के सम्मुख हानिप्रद भविष्य वाणी नहीं कहना चाहिये।

"क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम्" १०

(महाभारत शांतिपर्व)

भावार्थः—कार्य की समाप्ति करने में विलम्ब करने पर उस कार्य का महत्त्व घट जाया करता है, इसलिये कहा जाता है कि—शीघ्रता पूर्वक नहीं किये जाने वाले काम का रस समय पी जाता है।

"यत्पापं ब्रह्महत्यायां तद् द्विगुणं गर्भपातेन ।" ११

(पाराशर-स्मृति)

भावार्थः—ब्रह्म हत्या से जो पाप होता है, उससे दो गुना पाप गर्भ गिराने से होता है।

"आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशंकितैः ।" १२

(कूर्म-पुराण)

भावार्थः—भय को सामने उपस्थित हुआ देख करके उस समय में निर्भयता-पूर्वक उस पर प्रहार करना चाहिये ।

"अमंत्रमक्षरं नास्ति ।" १३

—काव्यानन्द

भावार्थ.—कोई भी ऐसा अक्षर नहीं है, जो कि मंत्र रूप न हो । परन्तु मंत्र की साधना करने वाले साधक का ही अभाव समझना चाहिये ।

"दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।" १४

(मनु स्मृति)

भावार्थः—समस्त जनता पर दंड द्वारा ही शासन होता है और दंड ही अनुशासन भी रखता है ।

"गन्तव्यं राजपथे ।" १५

भावार्थः—चोर-मार्ग से जाना सदैव हानिप्रद ही है, इसीलिये कहा जाता है कि राज-मार्ग से ही, प्रधान मार्ग से ही, जाना आना चाहिये ।

"रात्रौ संध्यासु विद्यादौ चौरं नोक्तं तथोत्सवे ।" १६

(विवेक-विलास)

भावार्थः—रात्रि में, संध्या समय में और नवीन विद्या के ग्रहण करने के समय में तथा उत्सव-काल में हजामत करने-कराने का निषेध है।

"शुचिर्भूमिगतं तोयम्।" १७

भावार्थः—पृथ्वी पर याने नदी, झील, तालाव, कुआ आदि में रहा हुआ पानी व्यावहारिक दृष्टि से पवित्र माना गया है।

"आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्।" १८

भावार्थः—खाने पीने के समय में और अन्य व्यवहार के कामों में जो संकोच छोड़ कर कार्य करता है, वह सुखी होता है।

"श्रुत्वा स्वमर्माणि बाधिर्यं कार्यमुत्तमैः।" १९
(विवेक-विलास)

भावार्थः—अपने मर्म तक चोट पहुंचाने वाले वचनों को सुन करके उत्तम पुरुषों को बहिरापन धारण कर लेना चाहिये, जिससे कि मानसिक चोट भी नहीं पहुंचे और पारस्परिक क्लेश भी उत्पन्न नहीं हो।

"तत्कर्त्तव्यं मनुष्येण येनान्ते सुखमेधते।" २०

भावार्थः—मनुष्य को वही कार्य करना चाहिये, जिससे कि अंत में सुख की ही प्राप्ति हो।

"पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी।" २१

भावार्थः—जो बार-बार पाप का आचरण करता है, वह बार-बार धनहीन बनता है।

"उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ।" २२

भावार्थः—अपनी हीन-भावना रूप बुद्धि को एवं संकोच-शीलता रूप दीनता को दूर करते हुए वीर होकर धर्म कार्य का आचरण करना चाहिये।

"अकृत्यं नैव कर्त्तव्यं प्राणत्यागेऽपि संस्थिते ।" २३

भावार्थः—मरणान्त कष्ट होने पर भी अकरणीय पापाचार को कभी भी नहीं करना चाहिए।

"संध्यायां श्रीद्रुहा निद्रा ।" २४

(विवेक-विलास)

भावार्थः—संध्या समय में नींद लेने से धन का क्षय होता है।

"अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तमः ।" २५

(महाभारत शांतिपर्व)

भावार्थः—हे नरश्रेष्ठ ! निद्रा लेने के समय में पहिनने के कपडे दैनिक कपड़ों से भिन्न ही होते हैं।

"सर्वप्रयत्नेन चातुर्मास्ये व्रती भवेत् ।" २६

(भविष्योत्तर-पुराण)

भावार्थः—चार मास वाले वर्षा काल में तो शक्ति अनुसार प्रयत्न पूर्वक किसी न किसी प्रकार का व्रत धारण करना ही चाहिये।

"शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।" २७

(मनु स्मृति)

भावार्थः—*जिस कुल में बहिन, पुत्री और पुत्र-वधू शोकाकुल रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नाश हो जाया करता है ।*

(३०)

मन--भावनाओं का भंडार
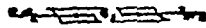
"सर्वमेव वृथा तस्य यस्य शुद्धं न मानसम् ।" १

(धर्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—जिसका मन शुद्ध नहीं है, उसकी सकल धार्मिक शारीरिक क्रियाएँ निरर्थक ही हैं।

"मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते ।" २

(विवेक चूड़ामणि)

भावार्थः—जिस मन की शक्ति द्वारा संसार का बंधन किया जा सकता है, उसी मन की शक्ति द्वारा मोक्ष की प्राप्ति भी की जा सकती है।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।" ३

(पार्श्वनाथ-चरित्र)

भावार्थः—मनुष्यों की मन-शक्ति ही बन्ध का भी कारण है और मोक्ष का भी कारण है। संसार-भ्रमण अथवा मोक्ष-प्राप्ति केवल मानसिक प्रवृत्तियों के ही अधीन हैं।

"दुष्करं चित्तरोधनम् ।" १४

(सूक्त-मुक्तावली)

भावार्थः—*चित्त की वृत्तियों को रोकना वास्तव में अत्यंत कठिन काम है ।*

"परो हि योगो मनसः समाधिः ।" १५

भावार्थः—*मन की अचपलता, अचंचलता, सुस्थिरता और एकाग्रता यही समाधि है । ऐसी समाधि ही श्रेष्ठ योग कहलाती है ।*

"मनोलयान्नाति परो हि योगो ।" १६

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—*चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करना, ध्यान पूर्वक उनको सुस्थिर करना, यही मनोलय अवस्था है । इससे बढ़ कर अधिक श्रेय करने वाला दूसरा कोई योग नहीं हो सकता है ।*

"मनोयोगो वलीयाँश्च भाषितो भगवन्मते ।" १७

भावार्थः—*जैन दर्शन में मनोयोग की बलिष्ठता कही गई है ।*

'त्रैलोक्यमेतद्बहुभिर्जितं यैर्मनोजये तेऽपि यतो न शक्ताः ।' १८

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—*जिन अनेक व्यक्तियों ने इन तीनों लोकों को जीता वे विजयी भी मन को जीतने में अशक्त ही रहे हैं ।*

"विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।" १६

भावार्थः—चित्त की वृत्तियां बहुत ही विचित्र रूप वाली होती हैं, क्योंकि न मालूम किस समय में कौनसी वृत्ति उदय में आकर के मलिनता उत्पन्न करके कषाय की तरंगें उत्पन्न कर देंगी।

"यदि हृदयमशुद्धं सर्वमेतन्न किञ्चित्।" २०

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—यदि मन मलिन है तो जप, तप, यम, नियम ये सव कुछ नही हैं। अर्थात् इनका करना और नहीं करना समान ही है।

"वाचमर्थोऽनुधावति।" २१

भावार्थः—अर्थ वाणी के पीछे पीछे चलता है। अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों ही एक दूसरे से संबंधित हैं।

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।" २२

(वेदान्त-दर्शन)

भावार्थः—आत्मा के स्वरूप के अनुसंधान में लगी हुई शब्द रूप वाणी मन की सहायता से भी आत्मा के स्वरूप को नहीं जानती हुई आगे गति करने में अपनी शक्ति-हीनता प्रकट कर देती है। अर्थात् वाणी एवं संपूर्ण शब्द शास्त्र मन की सहायता से भी आत्मा के स्वरूप को न तो जान सकता है और न प्रकट ही कर सकता है।

"नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।" २३

भावार्थः—चित्त के विकार ग्रस्त होने पर शरीर की धातुएँ भी क्षीण होने लग जाती हैं।

"सिद्धिर्यास्यदि वाऽसिद्धिश्चित्तोत्साहो निवेदयेत्।" २४

भावार्थः—कार्य में सफलता प्राप्त होगी अथवा असफलता प्राप्त होगी, इसकी पूर्व सूचना चित्त में पाये जाने वाले उत्साह के आधार से ही प्राप्त हो जाया करती है।

"अशान्तस्य कुतः सुखम् ?" २५

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—जिसका चित्त स्थिर नहीं है, और जिसकी चित्त-वृत्तियाँ सदा ही डोलायमान रहती हैं, ऐसे पुरुष को मानसिक शांति कैसे प्राप्त हो सकती है ?

"अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः।" २६

(उपदेश-प्रसाद)

भावार्थः—जिनकी चित्त-वृत्तियां अस्थिर और अव्यवस्थित हैं, ऐसे पुरुषों की प्रसन्नता भी भयंकर हुआ करती है, क्योंकि उस प्रसन्नता में अप्रसन्नता की आशंका छिपी हुई रहती है।

"वस्तु रम्यमरम्यं वा मनः संकल्पतः।" २७

(नल-विलास)

भावार्थः—मूलदृष्टि से किसी भी वस्तु-विशेष में न तो रमणीयता ही होती है और न अरमणीयता ही। किन्तु मन के संकल्प विकल्प रूप रति भाव अथवा अरति भाव द्वारा ही वस्तु-विशेष में रमणीयता और अरमणीयता का आरोप हुआ करता है।

"दुस्थे विषमयं जगत् ।" २८

(नल-विलास)

भावार्थ—मन में अशांति और दोलायमानता होने पर संपूर्ण संसार विष के समान प्रतीत होने लगता है।

"सुस्थे हृदि सुधासिक्तम् ।" २६

(नल-विलास)

भावार्थः—मन के और हृदय के स्वस्थ एवं शांत होने पर संसार ऐसा मालूम होता है कि मानों वह अमृत से सींचा गया हो।

"मनो रूपं हि वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः ।" ३०

(नारद पच रात्र)

भावार्थः—मन की भावनाओं के अनुरूप वचनों की अभिव्यक्ति होती है, और वचनों की शैली से ही मन के संविकास का परिचय मिलता है।

"सर्वा संपत्तयस्तस्य विशुद्धं यस्य मानसम् ।" ३१

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—सभी प्रकार की संपत्तियाँ उस पुरुष की सेवा में उपस्थित हो जाया करती हैं, जिसका मन शुद्ध होता है, विकार रहित होता है।

"यस्य चित्तं स्थिरीभूतं स हि ध्याता प्रशस्यते।" ३२

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*जिसका मन स्थिर होता है, अडोल होता है, ऐसा ही पुरुष ध्यान करने वाला होता है और वही प्रशंसा पात्र भी होता है।*

(३१)

गुण-उन्नति द्वार

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।" १

भावार्थः—गुणियों में रहे हुए गुण ही पूजा के योग्य होते हैं, अतएव-बाह्य वेश-भूषा आदि चिह्न पूजा के योग्य नहीं हैं, और न आयु ही पूजा के योग्य है।

"पदं हि सर्वत्र गुणैर्विधीयते।" २

भावार्थः—सब स्थानों पर पद की प्राप्ति केवल गुणों से ही हुआ करती है।

"गुणलुब्धा स्वयमेव संपदः।" ३

भावार्थः—संपत्ति खुद ही गुणों से आकर्षित होती हुई गुणी के समीप चली आती है।

"गुणात् भूषयते रूपम्।" ४

भावार्थः—गुण से ही रूप की शोभा हुआ करती है।

"प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छंति किं जन्मना?" ५

(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—गुणवान् पुरुष अपने गुणों का विकास करके ही प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ करते हैं, अतएव जन्म से क्या प्रसिद्धि प्राप्त हो सकती है ?

"गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति ।" ६

(हितोपदेश)

भावार्थः—जो गुणहीन होते हैं, वे ही अधिक बकवाद किया करते हैं ।

"गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं दूरेऽपि वसतां सतां ।" ७

भावार्थः—सत्पुरुषों के दूर वसने पर भी उनके गुण जीवन-निर्माण में सदेश-वाहक का काम किया करते हैं ।

"दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम् ।" ८

भावार्थः—इस संसार में क्या कोई ऐसी वस्तु देखी है जिसमें कोई न कोई गुण न हो अथवा कोई न कोई दोष न हो ?

"कमिवेशते रमयितुं न गुणाः ?" ९

भावार्थः—गुणगण गुणों के साथ क्रीड़ा करने के लिये किसको नहीं चाहते हैं ?

"विक्रीयन्ते न घंटाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ।" १०

(व्यासदेव)

भावार्थः—दूध नहीं देने वाली गायें उनके गले में घंटियाँ बांधने मात्र से ही नहीं बिका करती हैं ।

(३२)

नीति-जीवन मार्ग

"परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति ?" १

भावार्थ—दूसरे के घर पर स्वार्थ वशात् रहता हुआ ऐसा कौनसा मनुष्य है, जो कि हीनता को नहीं प्राप्त होता हो ?

"वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपाः ।" २

भावार्थः—राजनीति वेश्या के समान अनेक रूप वाली होती है ।

"यथा वीजं तथाङ्कुरः ।" ३

भावार्थः—जैसा बीज होता है वैसा ही अंकुर हुआ करता है।

"नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।" ४

भावार्थः—यह पृथ्वी कल्पलता के समान विविध फल फूलों से फलती रहती है ।

"सोपद्रवापि सुखदा खलु जन्मभूमिः ।" ५

भावार्थः – मातृ-भूमि उपद्रवों से युक्त होने पर भी अलौकिक आनंद देने वाली ही होती है।

"स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरी कर्त्तुमीश्वरः।" ६

(योगशास्त्र)

भावार्थः—जो खुद ही निर्धन है, वह अन्य को धनी बनाने में समर्थ नहीं हो सकता है।

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।" ७

भावार्थः—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की उत्तम जड़ शरीर का स्वस्थ-रहना ही है।

"आरोग्यं विगतांतरं त्रिजगति श्लाघ्यत्वमल्पेतरम्।" ८

भावार्थः—सुन्दर स्वास्थ्य के अभाव में तीनों लोक में फैली हुई यश-कीर्ति भी तुच्छ ही प्रतीत होती है।

"यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।" ९

भावार्थः—यदि उपाय करने पर भी सफलता नहीं मिले तो ऐसी स्थिति में कौनसा दोष अथवा किसकी त्रुटि समझी जायगी।

"सुज्ञेषु किं बहुना ?" १०

भावार्थः—विवेकशील विद्वानों की सेवा में लंबा-चौड़ा कथन करना व्यर्थ सा ही है, क्योंकि वे तो थोड़े शब्दों में ही सारी परिस्थिति को समझ जाया करते हैं।

"नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति ।" ११

भावार्थः—*मगर-घड़ियाल छोटा होता हुआ भी अपने वास-स्थान पर होने के कारण से दिग्गज हाथी को भी अपने भक्षण के लिये खींच लिया करता है ।*

"स्वामिनि शक्ति समेते निवेद्य दुःखं सुखी भवति ।" १२
(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—*शक्तिशाली अधिकारी को ही अपना दुःख सुनाने पर सुख प्राप्त किया जा सकता है ।*

"उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तसमये तथा ।" १३

भावार्थः—*सूर्य नारायण उदय-काल में भी लाल वर्ण वाले ही होते हैं और अस्त समय में भी लाल वर्ण वाले ही होते हैं, यही बात सज्जन पुरुषों के संबंध में भी समझना चाहिये । वे भी संपत्ति में और विपत्ति में, दोनों ही समय में समान भावना वाले ही होते हैं ।*

"न हि सिंहो गजास्कन्दी भयात् गिरि गुहाशयः ।" १४

भावार्थः—*सिह हाथी की विशालता से भय-ग्रस्त होकर पहाड़ों की गुफा में नहीं छिपा करता है ।*

"दोषोऽपि गुणतां याति प्रभोर्भवति चेत्कृपा ।" १५

भावार्थः—*यदि ईश्वर की कृपा हो जाती है तो दोष भी गुण रूप बन जाया करते हैं ।*

"गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः ।" १६

भावार्थः—जनता का दृष्टिकोण किसी विशेष उच्च ध्येय को लिये हुए नहीं हुआ करता है, वह तो केवल परम्परा का अंधानुकरण किया करती है।

"शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि।" १७

भावार्थः—निष्पक्ष और सत्यवादी का यह कर्त्तव्य होता है कि उसके द्वारा शत्रु के भी गुण प्रकट किये जाने चाहिये और गुरु के भी दोष कहे जाने चाहिये।

"मुहूर्त्तं ज्वलनं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।" १८

भावार्थः—मुहूर्त्त तक के लिये प्रज्वलित रहना ज्यादा अच्छा है, बनिस्बत इसके कि लंबे समय तक धूंआ का घटाटोप रहना।

"एकपुरुषपक्षपातिना सर्वगुणान् हंति।" १६

भावार्थः—किसी व्यक्ति-विशेष का पक्ष ग्रहण सभी गुणों को नष्ट कर दिया करता है।

"अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजक स्तत्रदुर्लभः।" २०

भावार्थः—इस संसार विविध अपेक्षाओं से कोई भी पुरुष अयोग्य नहीं हुआ करता है, किन्तु योजना करने वाले अथवा नियुक्ति करने वाले पुरुष की ही दुर्लभता है।

"नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्।" २१

भावार्थः—आगे के स्थान को देखे विना पूर्व स्थान का परित्याग नहीं करना चाहिये।

"न दरिद्रस्तथा दुःखी लब्धक्षीणधनो यथा ।" २२

भावार्थः—एक बार धनवान् बन जाने के बाद गरीब बन जाना जितना दुःख प्रद है, उतना पहले से ही दरिद्र बने रहना दुःख प्रद नहीं है।

"सामर्थ्ययोगाज्जायंते मित्राणि रिपवस्तथा ।", २३

(व्यासदेव)

भावार्थः—अधिक मित्रों का होना अथवा अधिक शत्रुओं का होना यह सब अपनी शक्ति पर ही निर्भर है।

"आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः ।" २४

भावार्थः—कुटिल, वक्र, कपटी और टेढे पुरुषों के साथ सरलता का व्यवहार करना, नीतिमत्ता नहीं है।

"न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ।" २५

भावार्थः—बन्धु बांधवों के बीच में निर्धन अवस्था सुखकर नहीं हुआ करती है।

"उदारस्य तृणं वित्तम् ।" २६

—काव्यानंद

भावार्थः—उदार हृदय वाले पुरुष के लिये धन घास के तिनके के समान होता है।

"गुणैर्गौरवमायाति ।" २७

भावार्थः—गुणों से ही गौरवता, उच्चता, महानता प्राप्त हुआ करती है।

"गुणी गुणिषु मत्सरी।" २८

भावार्थः—गुणवानों में भी पारस्परिक ईर्ष्या हो सकती हैं।

"कालो ह्ययं निरवधि विंपुला च पृथ्वी।" २९

भावार्थः—इस काल की कोई सीमा नहीं है, अतएव यह निरवधि सीमातीत कहलाता हैं। और पृथ्वी विपुल है—विस्तीर्ण है।

"कुदेशेष्वपि जायंते क्वचित् केचिन्महाशयाः।" ३०

भावार्थः—अनार्य देशों में भी कभी कभी और कहीं कहीं पर कोई कोई महापुरुष उत्पन्न हो जाया करते हैं।

"तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।" ३१

भावार्थः—जिसका मन जिसमें लग जाता है, वही उसके लिये मधुर याने आनन्ददायक बन जाता है।

"नैकत्र सर्वो गुणसन्निपातः।" ३२

भावार्थः—समस्त गुण एक साथ एक ही व्यक्ति में नहीं पाये जा सकते हैं।

"मृदंगो मुखलेपेन करोति मधुरध्वनिम्।" ३३

भावार्थः—जिसका अन्न आदि द्वारा पोषण किया जाता है,

वह उसका दास और वश-वर्ती हो जाया करता है, जैसे कि यदि मृदंग नामक बाजे पर अर्थात् तबले पर आटे का लेप किया जाता है, तो वह भी मधुर और आकर्षक आवाज करने लग जाता है।

"प्रायः समापन्नविपत्तिकाले,
धियोऽपि पुंसां मलिना भवंति।" ३४

भावार्थः—*जिस समय में विपत्ति का संयोग होता है, उस समय में अक्सर करके धैर्यशाली महापुरुषों की बुद्धि भी मलिन हो जाया करती है।*

"अंधस्य दीपो बधिरस्य गीतम्।" ३५

भावार्थः—*अंधे के लिये दीपक और बहरे के लिये संगीत कला व्यर्थ ही हैं।*

"संसारदुःखान्न परोऽस्ति रोगः।" ३६
(हृदय-प्रदीप)

भावार्थ.—*जन्म-मरण रूप संसार ही भयंकर दुःख है, ये दुःख ही रोग रूप हैं, और इनसे बढ़ कर दूसरे रोग नहीं हैं।*

"पाणौ पायसदग्धे तक्रं फुत्कृत्य पामरः पिबति।" ३७

भावार्थः—*पामर पुरुष दूध से हाथ जल जाने पर छाछ को भी फूंक फूंक कर पीता है।*

"वस्तुस्वरूपं स्फुट बोधं चक्षुषा स्नेनैव वेद्यं न तु पंडितेन।" ३८
(विवेक-चिंतामणि)

भावार्थः—पदार्थों का वास्तविक ज्ञान अपनी ही आँख से जानने योग्य होता है, न कि पंडित से।

"भूमौ स्थितस्य पतनाद्भयमेव नास्ति।" ३९

भावार्थः—पृथ्वी पर ठहरे हुए को गिरने का भय नहीं होता है, वैसे ही पाप में डूबे हुए दुष्ट प्राणी को भी परलोक का भय नहीं होता है।

"विश्वस्तास्तु प्रनश्यन्ते दुर्बलैर्बलिनोऽपि हि।" ४०

(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—अत्यंत बलशाली होने पर भी यदि विश्वास देकर अनुकूल बना लिये गये हों तो दुर्बल प्राणियों द्वारा वे भुलावे में डाले जाकर बांध लिये जाते हैं।

"इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ?" ४१

(व्यास-स्मृति)

भावार्थः—इच्छानुसार (तृष्णानुसार) धन-संपत्ति कब किसको मिला करती है ?

"गुणा गुणज्ञेषु जायंते तत्रैव निवसन्ति च।" ४२

भावार्थः—गुण गुणवानों में ही निपजते हैं और गुणियों में ही रहते हैं।

"शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्।" ४३

(विवेक चूड़ामणि)

भावार्थः—अधिक तर्क करना भूल भुलैया रूप महा अटवी है, और चित्त विभ्रम का हेतु है।

"कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ।" ४४

भावार्थः—घडे को चाहे तो कुए में डाल कर देखो अथवा समुद्र में डाल कर देखो, दोनों ही अवस्था में समान जल ही ग्रहण करता है। इसी तरह से जैसा भी पाप-पुण्य का उदय होगा, प्राणी उतना ही दुःख-सुख भोगेगा, चाहे वह नगर में रहे अथवा पहाड़ों पर चला जाय।

(३३)

क्रिया--जीवन-शुद्धि-मार्ग

"ज्ञानं भारः क्रियां विना ।" १

(हितोपदेश)

भावार्थः—सच्चारित्र के बिना ज्ञान केवल भारस्वरूप ही है।

"क्रियाहीने न धर्मः स्यात् ।" २

(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—व्रत-नियम, त्याग-प्रत्याख्यान, आदि रूप क्रियाओं के अभाव में धर्मोत्पत्ति नहीं होती है।

"हतं ज्ञानं क्रिया-शून्यं हता चाज्ञानिनः क्रिया ।" ३

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—चरित्र से रहित पुरुष का ज्ञान निरर्थक होने से फल-शून्य होता है और सम्यक् ज्ञान से रहित पुरुष की क्रियाएँ भी भार-भूत होने से व्यर्थ रूप ही हैं।

"क्रियाविरहितं हन्त ! ज्ञानमात्रमनर्थकम् ।" ४

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—खेद के साथ कहना पड़ता है कि उस ज्ञान को निरर्थक ही समझो, जो कि व्रत-नियम, त्याग-प्रत्याख्यान आदि क्रियाओं से रहित है।

"मनःपूतं समाचरेत्।" ५

भावार्थः—पवित्र मन के साथ धार्मिक क्रियाओं की आराधना करो।

"क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति।" ६

भावार्थः—यथा विधि परिपालना करने पर ही क्रिया फलवती हुआ करती है।

"चरित्रशुद्धिस्तु मता दुरापा।" ७

भावार्थः—वास्तव में चारित्र की शुद्धि अत्यन्त कठिन ही मानी गई है।

"आचारः प्रथमो धर्मो नृणां श्रेयस्करो महान्।" ८

(यजुर्वेद आह्निक)

भावार्थः—सात्विक आचार ही पहला धर्म है, और यही मनुष्यों का महान् कल्याण करने वाला है।

"क्रियाविहीनाः खरवद्वहन्ति।" ९

(सुश्रुत)

भावार्थः—जो ज्ञानी होने पर भी यदि चारित्र से शून्य है, तो वे गधे के समान ही ज्ञान का बोझा ढोने वाले हैं।

"यथा खरश्चंदन भारवाही, भारस्य वेत्ता न तु चंदनस्य।" १०

(सुश्रुत)

भावार्थः—जैसे चंदन का बोझा लादने वाला गधा बोझे का ही अनुभव करता है, परन्तु चंदन की सुगंध से कुछ भी संबंध नहीं रखता है, वैसे ही चारित्र हीन पुरुष ज्ञान का बोझा ढोने वाला ही कहा जाता हैं।

"सर्वे व्यसनिनो ज्ञेया यः क्रियावान् स पंडितः।" ११

(सूक्त-मुक्तावली)

भावार्थः—जो मनुष्य सत् प्रवृत्ति नहीं करते हुए केवल पठन-पाठन में ही संलग्न रहते हैं, ऐसे पुरुष विद्या में आसक्ति मात्र ही रखने वाले हैं। किन्तु पंडित तो वही है जो कि क्रियावान् हो।

"विनिवृत्तपराशानामिहैव मोक्षः सुविहितानाम्।" १२

(प्रशमरति)

भावार्थः—जिन्होंने भौतिक सुखों से मुख मोड़ लिया है, जो विधि पूर्वक सात्विक प्रवृत्तियों में संलग्न रहते हैं, ऐसे सज्जन पुरुष यहीं पर रहते हुए ही मोक्ष सुख का अनुभव किया करते हैं।

"आचारात् सर्वमाप्नोति आचारो हंसलक्षणम्।" १३

(यति धर्म)

भावार्थः—जैसे हंस निर्मल श्वेत रंग वाला और नीर क्षीर विवेकी होता हैं, वैसे ही सच्चारित्र भी निर्दोष होने से निर्मल होता

हुआ पाप-पुण्य का विवेकी होता है और ऐसे सच्चारित्र से ही सभी इष्ट कामनाएँ परिपूर्ण होती हैं।

"संयमारामसारणिः।" १४

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—संयम सुख की सरिता है। इन्द्रिय-निग्रह आनंद का सुन्दर स्रोत है।

"संयमो हि महामंत्रस्त्राता सर्वत्र देहिनः।" १५

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—इस लोक में और परलोक में सर्वत्र प्राणियों का रक्षण करने वाला संयम ही है। और इसी लिये यह महामंत्र है।

"व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया।" १६

भावार्थः—सज्जन पुरुषों की शोभा सर्वथा निर्दोष रीति से व्रत-पालन में ही रही हुई है।

"गतिं विना पथज्ञोऽपि नाप्नोति पुरमीप्सितम्।" १७

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—मार्ग का ज्ञाता भी यदि गन्तव्य स्थान की ओर नहीं चले तो इष्ट नगर में कैसे पहुँच सकता है? वैसे ही पंडित भी यदि व्रत-नियमों का पालन नहीं करे तो मोक्ष की प्राप्ति कैसे कर सकता है?

"क्रियैव साधनं सिद्धेः सत्यमेव न संशयः।" १८

भावार्थः—यह बात सत्य ही है कि सफलता का साधन पराक्रम ही है। इस मान्यता में कोई संशय नहीं है।

"आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः।" १६

(वशिष्ठ स्मृति)

भावार्थः—आचार ही (चारित्र ही) सभी प्राणियों के लिये उत्कृष्ट धर्म है। और यह बात सुनिश्चित है।

"उपदेष्टुं च वक्तुं च जनः सर्वोऽपि पंडितः।" २०

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—उपदेश देने में और भाषण देने में तो हर कोई पंडित बनने के लिये तैयार हो जाता है, परन्तु जो क्रिया-शील है, वही वास्तव में पंडित है।

(३४)

दुर्लभ-कठिन वस्तु तत्त्व

"अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।" १

भावार्थः—अप्रिय याने कठोर किन्तु परिणाम में हितकारी, ऐसे वचनों को बोलने वाले और सुनने वाले दोनों ही दुर्लभ हैं।

"विरला जानन्ति गुणान् ।" २

भावार्थः—गुणों के स्वरूप को और गुणों के महत्त्व को विरले पुरुष ही जानते हैं।

"गुणी च गुणरागी च विरलः सरलो जनः ।" ३

भावार्थः—जो स्वयं भी गुणी हो और दूसरों के गुणों के प्रति स्नेह रखने वाला हो, साथ में सरल हृदय वाला भी हो, ऐसा पुरुष विरला ही होता है।

"विरलाः परकार्यरताः ।" ४

भावार्थः—दूसरों की सेवा करने वाले अथवा दूसरों को कार्य आदि द्वारा सहायता पहुंचाने वाले इस संसार में विरले ही होते हैं।

"सर्वप्रियंकरा ये च ते नरा विरला जगे।" १६

(योगसार)

भावार्थः—जो पुरुष सभी को प्रिय अनुभव होते हों, ऐसे सज्जन पुरुष इस संसार में विरले ही होते हैं।

"कल्पोर्विरुहवद्वने न सुलभः प्रायः कृतज्ञो जनः।" १७

भावार्थः—जैसे वन में कल्पवृक्ष सुलभ नहीं होता है, वैसे ही कृतज्ञ पुरुष भी प्रायः करके सुलभ नहीं होते हैं।

(३५)

संगति-पारसमणि

"उत्तमानां प्रसंगेन लघवो यांति गौरवम् ।" १

(वल्लभदेव)

भावार्थः—उत्तम पुरुषों की संगति से क्षुद्र प्राणी भी गौरव-शाली हो जाया करते हैं। सामान्य प्राणी भी महात्मा बन जाया करते हैं।

"स्तोकोऽपि गुणिसंसर्गः श्रेयसे भूयसे भवेत् ।" २

(सूक्त-रत्नावलि)

भावार्थः—गुणशील महापुरुषों की थोड़े काल की संगति भी महान् कल्याणकारी हुआ करती है।

"कस्य सत्संगो न भवेच्छुभः ?" ३

भावार्थः—सत्संगति किसके लिये मंगलमय नहीं हुई है ? अर्थात् सत्संगति का परिणाम सदैव शुभकारक ही रहा है।

"हीयते हि मतिः पुंसां हीनैः सह समागमात् ।" ४

भावार्थः—जैसी संगति की जाती है, वैसा ही परिणाम पैदा हुआ करता है। अतएव यदि नीच पुरुषों के साथ सहवास रक्खा जायगा तो बुद्धि का ह्रास होना प्रारंभ हो जायगा।

"संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।" ५

भावार्थः—संसर्ग से और सहवास से ही दोषों की तथा गुणों की उन्नति-अवनति होती रहती है।

"संगः सत्सु विधीयताम्।" ६

भावार्थः—अपना मेल-मिलाप और सहवास सत्पुरुषों के साथ ही रखना चाहिए।

"चन्द्रचन्दनयो र्मध्ये शीतला साधुसंगतिः।" ७

भावार्थः—चंद्रमा भी शीतल होता है और चंदन भी शीतल होता है, किन्तु इन दोनों से भी बढ़ कर और गुणकारक शीतलता सज्जनों की और साधक पुरुषों की संगति में रही हुई है।

"सत्संगश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्।" ८
(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—सत्संगति और विवेक, ये दोनों ही निर्दोष आँखें है। इनके बल से आध्यात्मिक और भौतिक सभी प्रकार की उन्नति की जा सकती है।

"महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः?" ९

भावार्थः—बडे आदमियों का सहवास और सहचारिता किसके लिए उन्नति करने वाली नहीं हुआ करती है ? अर्थात् जैसी संगति होती है, उसका वैसा ही प्रभाव जीवन पर पड़ा ही करता है।

"आत्मानं यः स्वयं हन्ति त्रायते स परं कथम् ?" १०

भावार्थः—जो अनिष्ट प्रवृत्तियों द्वारा अपने आप को और अपनी आत्मा को घातक चोट पहुँचा रहा है, ऐसा व्यक्ति अन्य पुरुषों को अनिष्ट प्रवृत्तियों से कैसे बचा सकता है ?

"गुणवज्जनसंसर्गाद्याति स्वल्पोऽपि गौरवम् ।" ११

भावार्थ.—गुणवान् महापुरुष के संसर्ग से अति सामान्य पुरुष भी अपने गुणों की क्रमिक वृद्धि करता हुआ एक दिन गौरवशाली और उच्च पुरुष बन जाया करता है।

"क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका ।"१२

भावार्थः—सज्जन पुरुषों की एक क्षण भर की संगति भी संसार-समुद्र को तैरने के लिये एक सफल नाव के रूप में परिणत हो सकती है।

"जनयति नृणां किं नाभिष्टं गुणोत्तमसंगमः ?" १३

(सिंदूर-प्रकरण)

भावार्थः—गुणवान् पुरुषों की उत्तम संगति मनुष्यों के लिए मनो-वाञ्छित कौन से पदार्थ को उपस्थित नहीं किया करती है ?

"सतां हि संगः सकलं प्रसूते ।" १४

भावार्थः—सज्जन पुरुषों की सत्संगति कामधेनु के समान सभी कामनाओं को फलवती करने वाली होती है।

"हा ! हा ! कुबोधैः कुगतौ निधीयते।" १५

भावार्थः—अरे ! अरे ! यह स्थिति अत्यंत कष्ट-प्रद है कि कुत्सित शिक्षाओं से और विपरीत उपदेशों से दुर्गति में स्थान ग्रहण करना पड़ता है।

"असतां सम्प्रयोगेन पंडितोऽप्यवसीदति।" १६

भावार्थः—दुष्टों के संपर्क से पंडित भी दुःखी हो जाया करते हैं। नीच पुरुषों की संगति सदा ही पीड़ाकारक हुआ करती है।

"कस्य नाभ्युदये हेतुर्भवेत् साधुसंगमः ?" १७

भावार्थः—साधक पुरुषों का और साधु महात्माओं का संसर्ग और सम्मेलन किसके विकास में सहायक और प्रेरक नहीं हुआ करता है ?

"असतां संगदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्।" १८

भावार्थः—दुष्टों का संपर्क और सहवास इतना दोषपूर्ण एवं हानिकारक होता है कि इसके कारण से अच्छे-अच्छे साधक और साधु पुरुष भी विकार-ग्रस्त हो जाया करते हैं, एवं पथभ्रष्ट होकर पतित हो जाया करते हैं।

"अश्माऽपि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।" १९

(हितोपदेश)

भावार्थः—बड़े आदमियों द्वारा स्थापित पत्थर भी देवपने को प्राप्त हो जाता है। यह संगति का ही प्रभाव है कि पत्थर भी ईश्वर के रूप में पूजा जाने लगता है।

"पतितान्नं न रोचेत् पतितै र्न सहाचरेत्।" २०

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—पापी के अन्न की इच्छा नहीं करे और न पापी के साथ अपना जीवन-व्यवहार ही चलावे।

"इहामुत्रविरुद्धं यत् तत्कुर्वाणं नरं त्यजेत्।" २१

भावार्थः—जो प्रवृत्ति इस लोक के लिए भी और परलोक के लिए भी महापुरुषों द्वारा विरुद्ध और घातक बतलाई गई है, ऐसी प्रवृत्ति को मनुष्य अवश्यमेव छोड़ दे।

"पावको लोहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते।" २२

भावार्थः—अग्नि कठोर और नीच लोहे की संगति से मोटे-मोटे एवं वजनदार हथोड़ों से कूटी जाती है—पीटी जाती है, यही दशा सज्जनों की भी दुर्जनों की संगति से हुआ करती है।

कीटोऽपि सुमनः संगादारोहति सतां शिरः।" २३

(हितोपदेश)

भावार्थः—फूल के अन्दर रहा हुआ कीड़ा भी फूलों की संगति से महापुरुषों के मस्तिष्क पर चढ़ जाता है। सत्संगति में सर्वोच्च विकास कर देने की शक्ति रही हुई है।

"पुष्पमालाप्रसंगेन सूत्रं शिरसि धार्यते।" २४

(वल्लभ)

भावार्थः—फूलों के समूह के संयोग से ही माला की अवस्था में एक साधारण-सा धागा भी उत्तम से उत्तम पुरुषों के सिर पर स्थान ग्रहण कर लेता है। अर्थ यह है कि अति सामान्य पुरुष भी सत्संगति से महापुरुष बन सकता है।

"मलयाचलगंधेन त्विन्धनं चन्दनायते।" २५

भावार्थः—वायु की कृपा से मलयाचल पर स्थित चदन के वृक्षों की सुगंध वायु-मंडल में चारों ओर फैल सकती है, इससे दूसरे सामान्य वृक्ष भी चंदन की सुगन्ध वाले ही प्रतीत होने लगते हैं, इस तरह से बडे व्यक्तियों की यश कीर्ति की सहायता से सामान्य व्यक्ति भी प्रसिद्धि प्राप्त कर लिया करते हैं।

"मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।" २६

भावार्थः—यह वही सामान्य जल-बिन्दु है, जो कि मनोरम कमलिनी के ऊपर बिन्दु रूप से स्थित होकर मोती के रूप में सुशोभित होने लगता है।

"इलीका भ्रमरीध्यानात् भ्रमरी जायते यथा।" २७

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—संसर्ग और सहवास का सुन्दर परिणाम देखो कि—भंवरी का ध्यान करते करते लट (एक प्रकार का छोटा कीड़ा विशेष) स्वयं भंवरी के रूप में परिणत हो जाया करता है।

"रथ्यांबु जाह्नवीसंगात् त्रिदशैरपि वन्द्यते ।" २८

भावार्थः—सत्-संगति की शक्ति कितनी महिमामयी है कि गली और मार्ग का मैला पानी भी गंगाजी की सत्-संगति से अर्थात् क्रम से गंगा नदी में सम्मिलित होकर मनुष्यों द्वारा ही नहीं परन्तु देवताओं द्वारा भी वंदनीय और पूजनीय हो जाता है ।

"पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ।" २९

भावार्थः—कमल-पत्र पर ठहरा हुआ पानी मोती की शोभा धारण किया करता है । अर्थात् सामान्य जल-विन्दु भी मोती के समान चमक-दमक धारण कर लेती है ।

"स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं सन्मौक्तिकं जायते ।" ३०

भावार्थः—स्वाति नक्षत्र में गिरने वाली जल-विन्दु यदि समुद्र की सीप में गिर जाय तो वही जल-विन्दु एक बहुमूल्य मोती के रूप में बन कर विश्व में परम आदरणीय स्थान प्राप्त कर लेती है । यह है सत्संगति का रहस्य बतलाने वाला जीवित दृष्टांत ।

"किं चन्द्रकान्तश्चन्द्रांशुसंश्लिष्टो न जलं जहौ ?" ३१

(सूक्त-रत्नावलि)

भावार्थः—चन्द्रकान्त मणि चन्द्रमा की किरणों का संस्पर्श होने पर क्या जल नहीं छोड़ा करता है ? तात्पर्य यह है कि सज्जनों के प्रभाव से पत्थर जैसा हृदय भी पिघल जाया करता है ।

"गोमायुमंडलगतो न विभाति सिंहः ।" ३१

(विल्हण-काव्य)

भावार्थः—जैसे शृगालों के समूह में रहता हुआ सिंह शोभा नहीं पाता है, वैसे ही उच्च महत्व की आकांक्षा रखने वाला तुच्छ प्रवृत्तियाँ करने वालों के बीच में शोभा नहीं पाता है ।

स्वभाव-वृत्ति-धर्म

"निर्दंभता सदाचारे स्वभावोऽयं महात्मनाम् ।" १

भावार्थः—अपने सात्विक आचरण में बनावट और आडम्बर को नहीं आने देना, ऐसा महापुरुषों का स्वभाव होता है।

"या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते ।" २

भावार्थः—स्वभाव से ही जिसकी जैसी प्रकृति बन जाया करती है, तत्पश्चात् वह किसी भी प्रकार से छोड़ी नहीं जा सकती है।

"स्वभावं नैव मुञ्चन्ति सन्तः संसर्गतोऽसताम् ।" ३

भावार्थः—दुष्टों का साथ हो जाने पर भी सज्जन पुरुष अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ा करते हैं।

"को वा दधाति विनयं कुलजेषु पुंसु ?" ४

(आचारांग सूत्र टीका)

भावार्थः—कुलीन पुरुषों में विनय की स्थापना कौन करता है? कोई नहीं। यह उनकी स्वाभाविक वृत्ति हुआ करती है।

"शुद्धज्ञानं गुणो मम ।" ५

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—ज्ञान की शुद्धता ही मेरा गुण है। निर्मलज्ञान ही आत्मा का धर्म है।

"मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम् ।" ६

भावार्थः—मृत्यु की गोद में जाना प्राणी मात्र का स्वभाव है। मृत्यु जीवन की अवश्यंभावी और सुनिश्चित घटना है।

"असाधुः साधुर्वा भवति खलु जात्यैव पुरुषो ।" ७

भावार्थः—पुरुष में सज्जनता की अथवा दुर्जनता की उत्पत्ति जन्मजात संस्कारों से ही होती है। मानव-जीवन पर संस्कारों का महान् और अमिट प्रभाव हुआ करता है।

"मणिर्नाहेर्दोषान् स्पृशति न हि सर्पो मणिगुणान् ।" ८

भावार्थः—मणि और सर्प दोनों साथ ही साथ रहते हैं, परन्तु फिर भी न तो मणि ही साँप के दोषों को ग्रहण करती है और न साँप ही मणि के गुणों को ग्रहण किया करता है। यही बात सज्जनों और दुर्जनों के स्वभाव के विषय में भी जानना। दोनों का भाग्य वशात् साथ हो जाने पर भी परस्पर में गुण-दोषों का आदान-प्रदान नहीं हुआ करता है।

"एकैकपक्षे ग्रथिते मणिना तथापि काको न तु राजहंसः ।" ९

भावार्थः—कौए के प्रत्येक पंख में मोती और रत्न जड़ दिये

जाय, तो भी वह कौआ राजहंस के रूप में ख्याति नहीं प्राप्त कर सकता है। आभूषणों से एवं सुन्दर वस्त्रोंसे अलंकृत मूर्ख कदापि विद्वान् नहीं कहा जा सकता है।

"अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम्।" १०

भावार्थः—अग्नि सर्वथा बुझ भले ही जाय, किन्तु अपने मूल धर्म उष्णता के स्थान पर शीतलता को कदापि नहीं ग्रहण करती है। इसी प्रकार से सज्जन कष्ट आने पर भी अपनी सज्जनता को नहीं छोड़ा करते हैं, भले ही मृत्यु क्यों न आ जाय।

"अत्यन्त सिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुतामुपैति।"११

(सुभाषित-सञ्चय)

भावार्थः—दूध से और घी से अनेकानेक बार सींचा जाने पर भी नीम का वृक्ष मीठा नहीं होता है। इसी प्रकार से दुष्ट पुरुष के प्रति विविध और भावपूर्ण उपदेश करने पर भी एवं अनेक प्रकार के उपकार करने पर भी वह अपनी दुष्टता को नही छोड़ा करता है।

"काकः सर्वरसान् भुक्त्वा विनाऽमेध्यं न तृप्यति।" १२

भावार्थः—विविध स्वाद वाले अनेक रसपूर्ण पदार्थों को खाने के पश्चात् भी कौए को उस समय तक तृप्ति नहीं होती है, जब तक कि वह घृणाजनक अपवित्र पदार्थ नही खा ले। निंदक और चुगल खोर आदि दुष्ट पुरुष आल्हादक उपदेश सुन लेने पर भी निंदा एवं चुगली आदि में ही शांति का अनुभव किया करते हैं।

"परिपूर्णेऽपि तटाके काकः कुंभोदकं पिबति।" १३

भावार्थः—जल से भरे हुए तालाब के दिखाई देने पर भी कौआ घड़े में रहे हुए पानी को ही पीता है। अर्थात् नीच पुरुष अपने नीच कार्यों में ही और दुष्ट विचारों में ही परम सुख का अनुभव करता है।

"गिरिशिखरगतोऽपि काकपंक्ति,
न हि तुलनामुपयाति राजहंसैः।" १४

भावार्थः—यदि अनेक कौए मिल कर किसी सर्वोच्च पहाड़ की सबसे अधिक उन्नत चोटी पर पहुँच भी जांय, तो भी क्या वे राजहंसों के समान निर्मल, सफेद वर्ण वाले और आदरणीय बन सकते हैं? तात्पर्य यह है कि जघन्य वृत्ति वाले पुरुष कदापि सम्माननीय नहीं बन सकते हैं।

"छेदेऽपि चन्दनतरुः सुरभीयति मुखं कुठारस्य।" १५

भावार्थः—जिस कुल्हाडे से चंदन का वृक्ष काटा जाता है, उसी कुल्हाडे का मुख सुगन्धित हो जाता है। इसी प्रकार से सज्जन पुरुष अपकार करने वाले के साथ भी उपकार ही किया करते हैं।

"आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते।" १६

भावार्थः—अनेक बडे बडे विषधर सर्पों द्वारा चंदन के वृक्ष को घेर लेने पर भी वह वृक्ष विषमय नहीं बनता है। इसी तरह से सज्जन-पुरुष भी दुष्टों की संगति हो जाने पर भी अपने गुणों को और सुशील स्वभाव को नहीं छोड़ा करते हैं।

"फणी पीत्वा क्षीरं वमति गरलं दुःसहतरम्।" १७

भावार्थः—सर्प दूध पी करके भी तत्काल प्राण हरण करने वाला हलाहल विष ही उगलता है। तदनुसार यह सत्य ही है कि दुष्ट के साथ अच्छा व्यवहार करने पर भी वह बदले में अपनी दुष्टता का ही परिचय देता है और अपनी नीचता को नहीं छोड़ा करता है।

"सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्।" १८

भावार्थः—पानी कितनी ही अधिक मात्रा में गरम किया हुआ हो, तो भी वह अग्नि को तो शांत कर ही देता है। इसी प्रकार से सज्जन पुरुष के सामने विकार-जनक अनेक कारणों के उपस्थित होने पर भी वे अपने मूलस्वभाव को नहीं छोड़ा करते हैं।

"लेखा लग्ना याऽमपात्रे विचित्रा,
नासौ नाशं पाककालेऽपि याति।" १९
(जैन नीति शतक)

भावार्थः—मिट्टी के कच्चे घडे पर चित्रित की हुई रेखा याने लकीर अग्नि में रख देने के पश्चात् और पक जाने पर भी नष्ट नहीं होती है। मिटती नहीं है। इसी प्रकार सज्जनों का स्वभाव संकट आने पर भी बदला नहीं करता है।

"नलिकागतमपि कुटिलं न भवति सरलं शुनः पुच्छम्।" २०

भावार्थः—कुत्ते की टेढी पूंछ को अनेक वर्षों तक सरल और सीधी नली में रखने पर भी वह सरल सीधी नहीं होती है। यह सत्य ही है कि स्वभाव का परिवर्तन करना एक कठिन कार्य है।

"किं मर्दितोऽपि कस्तूर्या लशुनोयाति सौरभम्।" २१

भावार्थः—कस्तूरी जैसे अत्यंत सुगन्धशील पदार्थ में लहसुन को अनेक वार घीसने से और रगड़ने से क्या लहसुन में कस्तूरी की सुगन्ध उत्पन्न हो सकती है ? वैसे ही सज्जनों के सहवास में चिर समय तक रहने पर भी क्या दुष्टों के स्वभाव में परिवर्तन हो सकता है ?

"दुग्धधौतोऽपि किं याति वायसः कलहंसताम् ?" २२

भावार्थः—अनेक वार सुरीति से दूध द्वारा कौए को स्नान कराने पर भी क्या वह राजहंस के समान निर्मल और सफेद वर्ण वाला बन सकता है ? वैसे ही दुष्ट के प्रति अनेक उपकार करने पर भी क्या वह सज्जन वृत्ति को ग्रहण कर सकता है ?

"सरित्पूरप्रपूर्णोऽपि क्षारो न मधुरायते ।" २३

भावार्थः—अनेक नदियों के बाढ के वेग से दौड़ते हुए अपरिमित जल-प्रवाह से परिपूर्ण हो जाने पर भी समुद्र तो खारा का खारा ही रहता है, वह तो मीठा होता ही नहीं है। अहो ! स्वभाव की जटिलता कितनी विषम है।

"न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ?" २४

(आचारांग-टीका)

भावार्थः—प्रयत्न करने पर भी मनुष्य को इच्छानुसार फल की प्राप्ति नहीं हुआ करती।

"कः कंटकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यम् ?" २५

(आचारांग-टीका)

भावार्थः—कांटों में तीखी नोक को कौन पैदा करता है ?

अर्थात् वस्तु-स्वभाव ही अपनी-अपनी प्रकृति का परिचय अपने आप ही दे दिया करता है।

"सुपक्वमपि निम्बस्य फलं बीजे कटु स्फुटम्।" २६

(विवेक-विलास)

भावार्थः—नीम के फल निंबोली के अत्यंत सुरीति से पक जाने पर भी उसके अन्दर रहा हुआ बीज तो फिर भी अत्यधिक कडुआ ही रहता है। सच ही है कि दुष्टों का स्वभाव सदा अपरिवर्तनशील ही होता है।

"शुनः पुच्छं न सारल्यं स्वभावो दुस्त्यजो मतः।" २७

भावार्थः—अनेकविध-प्रयत्न करने पर भी कुत्ते की पूंछ सरल-सीधी नहीं हो सकती है, इससे यही मन्तव्य सिद्ध हुआ कि स्वभाव में—प्रकृति में परिवर्तन आना अत्यन्त कठिन है।

"अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कंटकजालमेव।" २८

—विह्लण कवि

भावार्थः—ऊँट यदि भाग्यवशात् सुन्दर वृक्षों वाले जगल में चला जाय तो वहाँ पर भी वह काँटों के समूह को ही इधर उधर ढूंढता है। इसका तात्पर्य यही है कि दुष्ट पुरुष गुण के समूह में भी दोषों को ही ढूंढा करता है। छिद्रान्वेषी गुणों की ओर दृष्टिपात नहीं किया करता है।

"तोयमुष्णीकृतं कामं शीततां पुनरेतियत्।" २९

(सूक्त-रत्नावलि)

भावार्थः—अत्यधिक गरम किया हुआ पानी पुनः ठंडा हो जाता है। इसका तात्पर्य यही है कि सज्जन पुरुष अनेक विघ्न-बाधाएं आने पर भी अपने सज्जनता पूर्ण स्वभाव का परित्याग नहीं किया करते हैं।

"क्षारभावमपहाय वारिधे गृह्णते सलीलमेव वारिदाः।" ३०
(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—बादल समुद्र के खारेपन का परित्याग करते हुए केवल जल को ही ग्रहण किया करते हैं। इसी तरह से सज्जन पुरुष बुराई की ओर ध्यान नहीं देते हुए केवल गुणों को ही ग्रहण किया करते हैं।

"न त्यजति रुतं मञ्जु काकसंसर्गतः पिकः।" ३१

भावार्थः—बाल्यावस्था में कौए की संगति होने पर भी कोयल अपने मधुर और मनोहर वाणी विलास का परित्याग नहीं करती है। वैसे ही सज्जन पुरुष भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।

(३७)

शम-शान्ति--निर्विकारता

"ज्ञानस्य परिपाको यः स शमः परिकीर्तितः ।" १

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—ज्ञान का परिपक्व फल शम अर्थात् निर्विकारता ही है ।

"सदैव वासनात्यागः शमोऽयमिति शब्दितः ।" २

(अपरोक्षानुभूति)

भावार्थः—सदा के लिये इन्द्रिय-वासनाओं का परित्याग कर देना ही वह व्रत है जो "शम" शब्द से कहा जाता है ।

"शम एव परं तपः ।" ३

(इतिहास समुच्चय)

भावार्थः—इन्द्रिय-निग्रह एवं मनो-निग्रह ही सर्व श्रेष्ठ तप है ।

"शम एव परं ज्ञानम् ।" ४

(इतिहास)

भावार्थः—निर्विकारता ही उत्तम ज्ञान है ।

"शमो योगो परस्तथा।" ५

(इतिहास समुच्चय)

भावार्थः—*शम रूप इन्द्रिय निग्रह और मनो-निग्रह ही सर्व श्रेष्ठ योग है।*

"निर्ममो निरहंकार स शान्तिमधि गच्छति।" ६

(भगवत् गीता)

भावार्थः—*जो माया-ममता से और अहंकार से रहित है, वही वास्तविक शांति को प्राप्त कर सकता है।*

"विशुद्धपरिणामेन शान्ति भंवति सर्वतः।" ७

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*मन की विचार धारा पवित्र रखने से ही सभी प्रकार से शान्ति प्राप्त हुआ करती है।*

"नवे वयसि यः शान्तः स शान्तः इतिमे मतिः।" ८

(भागवत स्कन्ध)

भावार्थः—*नव-यौवन के प्रभात काल में जो विकारों से रहित है वही सच्चा शान्त योगी है, ऐसी मेरी मान्यता है।*

"शम एव परं तीर्थं।" ९

(इतिहास समुच्चय)

भावार्थः—*निर्विकारता ही सच्चा और श्रेष्ठ तीर्थ है।*

"योगारूढ शमादेव शुद्धयत्यन्तर्गतक्रियः ।" १०

(ज्ञानसार)

भावार्थः—आभ्यन्तर क्रियापात्र योगी पुरुष भी शम व्रत से ही याने विकारों को जीतने से ही शुद्ध होते हैं ।

"प्रत्यक्षं प्रशमसुखं न परवशं न व्ययप्राप्तम् ।" ११

भावार्थः—प्रशम व्रत का निर्विकारता का सुख प्रत्यक्ष रूप से अनुभव होता है । यह न तो दूसरे के आधीन है और न इसकी प्राप्ति में कुछ खर्च ही करना पड़ता है ।

"शमार्थं सर्वशास्त्राणि विहितानि मनीषिभिः ।" १२

(सूक्त-मुक्तावली)

भावार्थः—सुविज्ञ पुरुषों द्वारा सभी शास्त्रों की रचना केवल शम व्रत की प्राप्ति के लिये ही की गई है ।

"शमो हि न भवेद्येषाम् ते नराः पशुसन्निभाः ।" १३

(तत्त्वामृत)

भावार्थ—जिन पुरुषों में निर्विकारता धर्म नहीं है वे मनुष्य पशु के समान ही हैं ।

(३८)

अतिथि-व्रतधारी पुरुष

"अतिथिस्तं विजानियात् यस्य लोभो न विद्यते ।" १

(धर्म रत्न प्रकरण)

भावार्थ:—जो लोभ से रहित है, उसी को अतिथि समझो ।

"सर्वधर्ममयोऽतिथिः ।" २

(विवेक-विलास)

भावार्थ:—जो वास्तव में अतिथि है, वह सभी धार्मिक क्रियाओं से और व्रत-नियमों से युक्त है ।

"सर्वस्य अभ्यागतो गुरुः ।" ३

(चाणक्य नीति)

भावार्थ:—अभ्यागत अर्थात् अतिथि सभी वर्णों का गुरु होता है ।

"अतिथिं पूजयेत् यस्तु स याति परमाम् गतिम् ।" ४

(जैन पंच तंत्र)

भावार्थ:—जो अतिथि का आदर-सत्कार करता है वह पुरुष श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है ।

(३६)

पंडित और मूर्ख

"न दुःखितोऽपि सन्तापं भजते यः स पंडितः।" १

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—संकट-ग्रस्त होने पर भी जो खिन्नता अनुभव नहीं करता है वही वास्तव में पंडित है।

"आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पंडितः।" २

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—जो अपनी शक्ति अनुसार ही क्रोध करना जानता है वही पंडित है, वही समयज्ञ है।

"एतदेव हि पांडित्यं यत् स्वल्पात् भूरिरक्षणम्।" ३

(महाभारत-विराट पर्व)

भावार्थः—स्वल्प पदार्थ के आधार से अधिक पदार्थ की रक्षा करना ही बुद्धिमत्ता है।

"नष्टम् मृतम् अतिक्रांतम् नानुशोचन्ति पंडिताः।" ४

(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—जो पंडित होते हैं वे नए पदार्थ की, मरे हुए प्रेमीजन की और बीती हुई बातों की चिन्ताएँ नहीं किया करते हैं।

"उपायं चिन्तयेत् प्राज्ञः।" ५

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष सदा ही उपस्थित समस्याओं का समाधान सोचता रहे। कठिनाइयों को दूर करने का उपाय ढूंढता रहे।

"पंडितैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति।" ६

भावार्थः—पंडितों के साथ मित्रता रखने वाला कभी भी खिन्नता नहीं अनुभव करता है।

"धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।" ७

भावार्थः—पंडित पुरुष को चाहिये कि वह परोपकार के लिये अपना धन और अपना जीवन न्यौछावर करदे।

(वशीकुर्यात्) तत्त्वार्थेन च पंडितम्।" ८

भावार्थः—तत्त्वज्ञान की चर्चा द्वारा पंडित पुरुष को अपने अनुकूल बनावे।

"काव्य-शास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।" ९
(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुषों का समय काव्य-ग्रंथों के और शास्त्र-ग्रंथों के पठन-पाठन द्वारा ही व्यतीत हुआ करता है।

"सारं गृह्णन्ति पंडिताः।" १०

भावार्थः—पंडित पुरुष प्रत्येक बात का सार तत्त्व शीघ्र ही ग्रहण कर लिया करते हैं।

"आगमतत्त्वं तु बुधः परीक्षते सर्वयत्नेन।" ११

—हरिभद्र सूरि

भावार्थः—पंडित पुरुष आगम-तत्त्व की परीक्षा प्रयत्न-पूर्वक और विविध रीति से किया करते हैं।

"विद्वान् कुलीनो न करोतिगर्वम्।" १२

(हितोपदेश)

भावार्थः—जो श्रेष्ठ कुल का होता है और विद्वान होता है वह अहंकार नहीं किया करता है।

"ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः।" १३

(भगवत् गीता)

भावार्थः—जिसने अपने ज्ञान रूप अग्नि द्वारा कर्मों को जला दिया है उसी को ज्ञानियों ने पंडित कहा है।

"वर्तमानेन कालेन वर्त्तयन्ति विचक्षणाः।" १४

भावार्थः—समयज्ञ-व्यवहारज्ञ पुरुष समय की गति के अनुसार ही अपना व्यवहार और कार्य चलाया करते हैं।

"न केवलं यः पठते स विद्वान्।" १५

भावार्थः—जो केवल पढ़ता ही रहता है और उसका चिन्तन एवं मनन नहीं करता वह विद्वान नहीं कहा जा सकता है।

"ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने मराल इव मानसे।" १६

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—जैसे मान सरोवर में राजहंस विविध क्रीड़ा करता हुआ आल्हाद अनुभव किया करता है, वैसे ही ज्ञानी ज्ञान-सागर में गोते लगाता-हुआ अपूर्व आनंद का अनुभव किया करता है।

"आपत्काले च कष्टेऽपि नोत्साहस्त्यज्यते बुधैः।" १७

भावार्थः—विपत्ति काल में और संकट ग्रस्त अवस्था में बुद्धिमान् पुरुष उत्साह को ज्यों का त्यों ही बनाये रखते हैं। अपने साहस में जरा भी कमी नहीं आने-देते हैं।

"अस्य दग्धोदरस्यार्थे किं न कुर्वन्ति पंडिताः ?" १८

भावार्थः—भूख रूप अग्नि से जले हुए इस पेट के लिये पंडित क्या नहीं करते हैं ? अर्थात् विवेकशील और बुद्धिमान् पुरुषों को भी अपनी उदर-पूर्त्ति के लिये अपने ज्ञान-ध्यान के कार्य को कुछ समय के लिये स्थगित करके कोई न कोई व्यावहारिक कार्य करना ही पड़ता है।

"कुकृत्ये को न पंडितः ?" १९

भावार्थः—प्रत्येक प्राणी की इन्द्रियाँ विषयों की ओर आकर्षित रहती ही हैं और मन भी विकार-ग्रस्त रहता ही है। इन्हीं परिस्थितियों से जीवन स्वच्छंदतामय होता है। इसीलिये सूक्ति में कहा गया है कि कुकृत्य करने में—नीच कार्य करने में कौन चतुर नहीं है ?

मूर्ख

"अजातमृतमूर्खाणाम् वरमाद्यौ न चान्तिमः ।" २०

भावार्थः—पुत्र का पैदा नहीं होना, होकर मर जाना और उत्पन्न होकर उसका मूर्ख रहना, इन तीनों दशाओं में से पहली दो दशाएँ अपेक्षाकृत ठीक हैं परन्तु अंतिम दशा अच्छी नहीं है। क्योंकि पूर्व अवस्थाओं में तो एक ही बार दुःख का अनुभव होता है, जब कि मूर्ख पुत्र से तो जन्म भर तक विविध रीति से और अनेकानेक बार दुःख एवं संकट उठाने पड़ते हैं।

"विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ।" २१

भावार्थः—जैसे किंशुक—टेसू के फूल—सुन्दर होने पर भी गंध रहित होने से निरर्थक ही हैं, वैसे ही यदि कोई सुन्दर आकृति वाला तो है परन्तु विद्याहीन है तो वह भी यशः कीर्त्ति और सन्मान नहीं प्राप्त कर सकता है।

"विवेकभ्रष्टानाम् भवति विनिपातः शतमुखः ।" २२

भावार्थः—मानव प्राणी जब एक बार विवेक से भ्रष्ट हो जाता है तो उसके बाद उसका पतन सैंकड़ों प्रकार से प्रारम्भ हो जाता हैं। अर्थात् उसका पतन निरन्तर चालू ही रहता है।

"सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभिं ।" २३

(चाणक्य नीति)

भावार्थः—तेजस्विता, शक्ति और साहस से रहित पुत्रों की

माता उसी प्रकार से कष्ट एवं दुःख उठाती रहती है जैसे दश पुत्रों के साथ होने पर भी गधी—बोझा ही ढोती रहती है।

"मूर्खत्वं हि सखे ममापि रुचिरं यस्मिन् यदष्टौ गुणाः।"२४

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—हे मित्र ! मुझे भी मूर्खता प्रिय है क्योंकि मूर्खता में ये आठ गुण रहे हुए हैं:—(१) निश्चिन्तता, (२) इच्छानुसार भोजन करना, (३) लज्जा का अनुभव नहीं करना, (४) रात-दिन सोना, (५) विचार भार का अभाव, (६) मान-अपमान के प्रति तटस्थता, (७) रोग रहितता, और (८) शरीर की बलिष्ठता। (व्याज-स्तुति)

"न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्र भवनेष्वपि।" २५

भावार्थः—हे भगवन् ! मेरी आप से करबद्ध यही प्रार्थना है कि इन्द्रराज के महलों में भी मूर्खों की संगति हितकर नही हुआ करती है, अतएव जीवन में कहीं पर भी और कभी भी मूर्खों की संगति मत देना।

"सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्र विहितं,
मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।" २६

भावार्थः—इस रोग ग्रस्त विश्व में सभी प्रकार के रोगों की औषधियाँ शास्त्र-ग्रंथों में कही गई हैं, परन्तु मूर्ख की औषध कहीं पर भी नहीं कही गई है।

"मूर्खाणाम् बोधको रिपुः।" २७

(चाणक्य-निति)

भावार्थः—मूर्खों के प्रति उपदेश देना शत्रुता मोल लेना है, क्योंकि मूर्ख उपदेश देने वाले को अपना शत्रु एवं आनन्द-घातक ही समझता है। जैसे ऊँट मीठे गन्ने के प्रति अपनी अरुचि और विपरीत भावना प्रकट करता है, वैसे ही मूर्ख भी सदुपदेश के प्रति क्रोध और घृणा ही व्यक्त करता है।

"मूर्खस्य किं शास्त्रकथाप्रसंगः ?" २८

भावार्थः—जैसे उल्लू को सूर्य का प्रकाश विष के समान प्रतीत होता है और वह उसको नहीं चाहता है, वैसे ही मूर्ख भी शास्त्र-कथा को और व्याख्यान को अपनी स्वतंत्रता में बाधक समझता हुआ उसके प्रति अपनी रुष्टता ही प्रकट करता है तथा उससे किसी भी प्रकार का संबंध नही रखता हुआ उसे निरुपयोगी ही समझता है।

"प्रतिपन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते।" २९

भावार्थः—जो विपत्तिग्रस्त हो जाते हैं, उनकी मानसिक शक्ति मूढ अर्थात् कर्तव्य को और अकर्तव्य को समझने में असमर्थ हो जाती है और प्रायः करके उनकी बुद्धि क्षीण हो जाया करती है। जैसे कि सोने के हरिण के प्रति रामचन्द्रजी की और जुआ खेलने के प्रति धर्मराज युधिष्ठिर की मति क्षीण हो गई थी।

"लोचनाभ्याम् विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ?" ३०

भावार्थः—जो आँखों से रहित होने के कारण से अंधा है उसके लिये दर्पण किस काम का है? उसी तरह से जो विवेक और ज्ञान रूप आँखों से रहित होता हुआ मानसिक दृष्टि से अंधा है उसके

लिये शास्त्र और ग्रंथ क्या अर्थ रखते हैं ? एक स्थूल-चक्षु से अंधा है तो दूसरा बुद्धि-रूप भाव-चक्षु से अंधा है। इस प्रकार से ज्ञानी की दृष्टि में तो दोनों ही अंधे हैं।

"उपेक्ष्य लोष्टक्षेप्तारं लोष्टं दृष्टवातिमंडलः।" ३१

भावार्थः—जैसे कुत्ता पत्थर फेंकने वाले की उपेक्षा करके पत्थर को ही काटता है, वैसे ही मूर्ख मनुष्य भी अपने संकट और दुःख की कारण रूप अपनी बुद्धि की ओर उपेक्षा करके किसी बाह्य व्यक्ति-विशेष को ही अकारण ही अपना शत्रु समझ लेता है।

"विद्याविहीनाः बहुभाषकाः स्युः।" ३२

भावार्थः—विद्या से रहित मूर्ख मनुष्य ही बहुत बोला करते हैं। मूढ ही अधिक वाचाल हुआ करते हैं। जैसे रीते घडे ही अधिक शब्द किया करते हैं, वैसे ही बुद्धिहीन प्राणी ही अधिक और निरर्थक बकवाद किया करते हैं।

"लोकस्थितिं यदि न वेत्ति यथानुरूपाम्
सर्वस्य मूर्खनिकरस्य स चक्रवर्ती।" ३३
(भर्तृहरि)

भावार्थः—जैसा लोक व्यवहार है उसको यदि उसी रूप में और वैसा ही जो नहीं समझता है, उसको सम्पूर्ण मूर्ख समाज का चक्रवर्ती अर्थात् महान् सम्राट् ही समझो। लोक-व्यवहार के ज्ञान से हीन पुरुष मूर्खाधिराज ही है।

"मन्मथ शंकरः सिन्धुम् रत्नान्यापुर्दिवौकसः ।" ३४

भावार्थः—समुद्र का मंथन तो भगवान् शंकर ने किया और रत्नों की प्राप्ति देवताओं को हुई । इससे यही प्रमाणित होता है कि सभी स्थानों पर भाग्यानुसार ही फल की प्राप्ति हुआ करती है । विद्या और पुरुषार्थ का प्रभाव गौण रूप ही होता है ।

पुरुषार्थ-जीवन-धर्म
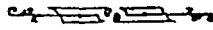
"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।" १

(हितोपदेश)

भावार्थः—जो पुरुष निरन्तर परिश्रमशील होता है, सदैव कर्मण्यता में संलग्न रहता है, वह पुरुष सिंह कहलाता है। ऐसे पुरुष सिंह को ही लक्ष्मी प्राप्त हुआ करती है।

"न साहसमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।" २

भावार्थः—विना साहस किये मनुष्य मंगलकारी पदार्थों को नहीं प्राप्त कर सकता है। साहसपूर्ण उत्तरदायित्व ग्रहण किये विना मनुष्य कल्याणमय पदार्थों को नहीं देख सकता है।

"सत्त्वाधीना हि सिद्धयः।" ३

भावार्थः—सिद्धियाँ शक्ति और पुरुषार्थ के ही अधीन और अनुसारिणी हुआ करती हैं।

"एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति।" ४

भावार्थः—विना प्रयत्न और पुरुपार्थ के भाग्य फलता-फूलता नहीं है।

"उद्योगः पुरुष-लक्षणम्।" ५

भावार्थः—परिश्रम करना ही, पुरुपार्थ करना ही मनुष्य का लक्षण है।

"धिक् जीवितं चोद्यमवर्जितम्।" ६

(चिल्हण कवि)

भावार्थः—यदि मानव-जीवन उद्यम से हीन है, पुरुपार्थ से रहित है, तो उस जीवन को धिक्कार है।

"किं दूरं व्यवसायिनाम्।" ७

भावार्थः—पुरुपार्थियों के लिये दूर क्या है? अर्थात् परिश्रम के सामने सव कुछ समीप में ही रहा हुआ होता है।

"किं पौरुपं रक्षति यो न वार्ताम्।" ८

भावार्थः—जो बात को नहीं पचा सकता है उसका पुरुपार्थ किस काम का है? अर्थात् उसकी परिश्रमशीलता कुपुरुपार्थ रूप ही है।

"कुरु कुरु पुरुपार्थम् निर्वृत्तानन्दहेतोः।" ९

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—अनासक्ति स्वरूप आनन्द की प्राप्ति के लिये वार-वार पुरुपार्थ कर।

"उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।" १०

भावार्थः—*सभी प्रकार के कार्य केवल उद्यम से ही सिद्ध होते हैं, न कि केवल मन की कल्पनाओं से।*

"नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वायं नावसीदति।" ११

भावार्थः—*उद्यम के बराबर कोई बंधु नहीं है, क्योंकि इसके आचरण से कभी भी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता है।*

"शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च,
लक्ष्मी स्वयं याति निवासहेतोः।" १२

भावार्थः—*पुरुषार्थी के यहाँ, उपकार मानने वाले के यहाँ और मनस्वी के यहाँ लक्ष्मी निवास करने के लिये खुद ही चली आती है।*

"नो भाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाग्यस्य नाशः कुतः?" १३

भावार्थः—*इस संसार में दुःख-सुख, होनहार अकारण ही और अकस्मात् ही नहीं हुआ करते हैं, क्योंकि भाग्य का नाश बिना फल दिये ही कैसे हुआ करता है? पूर्वकृत कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है।*

"सिद्धयन्ति कुत्र सुकृतानि विना श्रमेण?" १४

भावार्थ—*बिना परिश्रम किये सत्कार्यों की सिद्धि कहाँ है?*

"जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।" १५

भावार्थः—जल-बिन्दुओं के क्रम से आते रहने से घट भर जाता है। इसी प्रकार से निरन्तर परिश्रम करते रहने से प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त हो जाती है।

"योजनानां सहस्रन्तु शनैर्गच्छेत् पिपीलिका।" १६

भावार्थः—निरन्तर चलती रहने से चिंटी भी—कीड़ी भी हजारों योजन तक पहुंच जाया करती है।

"उपायज्ञोऽल्पकायोऽपि न शूरैः परिभूयते।" १७

भावार्थः—यत्नशील पुरुष शरीर की अल्पशक्ति होने पर भी विविध उपायों द्वारा शूरवीर पुरुषों से भी नहीं हराया जा सकता है।

(४१)

माता-पुत्र-मित्र
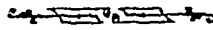
"नास्ति मातृ-समो गुरुः ।" १

भावार्थः—माता के बराबर उच्च कोटि का दूसरा कोई शिक्षक नहीं हो सकता है ।

"गरीयसी वै भुवि मातृशक्तिः ।" २

भावार्थः—पृथ्वी पर निश्चय ही माता की शक्ति सर्वाधिक महती है—विशाल है ।

"सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ।" ३

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—पिता की अपेक्षा से माता का गौरव हजार गुना अधिक माना गया है ।

"नास्ति मातुः परो गुरुः ।" ४

(अत्रि-संहिता)

भावार्थः—माता से अधिक श्रेष्ठ गुरु दूसरा कोई नहीं है ।

"पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीताः स्युः सर्वदेवताः ।" ५

(इतिहास समुच्चय)

भावार्थः—माता-पिता के प्रसन्न होने पर समस्त देवता प्रसन्न हो जाया करते हैं ।

"त्रातः पुत्रः कथमपि यया स्तूयतां सैव माता ।" ६

भावार्थः—अनेक कठिनाइयों के उपस्थित होने पर भी जिस माता ने अपने पुत्र की रक्षा की है, वही माता स्तुति के योग्य है ।
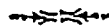
पुत्र

"पित्रोराज्ञानुसारी स्यात् सः पुत्रः कुलपावनः ।" ७

भावार्थः—जो पिता की आज्ञा का पालक होता है, वह पुत्र कुल को उज्ज्वल करने वाला और पवित्र करने वाला होता है ।

सत्पुत्र एव कुलसद्मनि कोऽपि दीपः ।" ८

भावार्थः—कुलरूप घर में सत्पुत्र एक अवर्णनीय दीपक ही है ।

"एकश्चन्द्रो जगच्चक्षुः ।" ९

भावार्थः—अकेला चन्द्र ही सम्पूर्ण विश्व के लिये आँख के समान है ।

"प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत् ।" १०

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—पुत्र के सोलह वर्ष पूरे होने पर उसके प्रति मित्र जैसा आचरण करना चाहिये।

"धिक् पुत्रमविनीतं च।" ११

भावार्थः—अविनीत याने आज्ञा नहीं मानने वाले और ढीठ पुत्र के लिये धिक्कार है।

"सिंही दीर्घपराक्रमेण मनसा पुत्रेण गर्वायते।" १२
(अन्योक्ति-मुक्तावली)

भावार्थः—महान् पराक्रमशाली अपने पुत्र के कारण से ही सिंहनी मन ही मन गौरव अनुभव किया करती है।

"एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भया।" १३

भावार्थः—सत्पुत्र की महिमा देखो कि—सिंहनी केवल एक पुत्र के कारण से ही निर्भय होकर सोती है।

"कुपुत्रस्तु कुले जातः स्वकुलं नाशयत्यहो।" १४

भावार्थः—दुःख की बात है कि अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ कुपुत्र अपने कुल का नाश कर देता है।

मित्र

"आपत्काले तु संप्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्।" १५
(पंच तंत्र)

भावार्थः—*आपत्तिकाल में जो मित्र होता है, जो सहायक होता है, वही वास्तव में मित्र शब्द से कहे जाने के योग्य है।*

"केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ?" १६

—व्यासदेव

भावार्थः—*"मित्र" ऐसा दो अक्षरों से बनने वाला यह रत्न रूप मंत्र भाषा साहित्य में किस महापुरुष ने बनाया है ?*

"मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानंदनं चेतसः।" १७

भावार्थः—*"मित्र" एक ऐसा प्रीतिपूर्ण रसायन है जो दोनों आँखों को और चित्त को महान् आनंद देने वाला है।*

"समानशीलव्यसनेषु सख्यम्।" १८

(भागवत स्कन्ध)

भावार्थः—*समान व्यवहार, समान-स्थिति और समान स्वभाव वालों में ही परस्पर मैत्री-भावना स्थायी हो सकती है।*

"नालं सुखाय सुहृदः।" १६

भावार्थः—*सुहृद याने मित्र केवल सुख-दाता ही नहीं होता है, बल्कि आत्म-विकास के लिये एक उच्च कोटि का साथी भी होता है।*

"अमृतं प्रियदर्शनम्।" २०

भावार्थः—*अपने प्रिय जन से—स्नेही पुरुष से भेंट हो जाना यही अमृत-प्राप्ति है।*

"धन्यः कोऽपि न वासरः खलु भवेद्यत्रावयोः संगमः।" २१

भावार्थः—*सचमुच में वह दिन अवर्णनीय रूप से धन्य स्वरूप है, जिस दिन अपना दोनों का प्रेम-पूर्वक मिलन होता है।*

"बुद्धि र्नाम च सर्वत्र मुख्यं मित्रं न पुरुषः।" २२

भावार्थः—*बुद्धि ही सभी स्थानों पर मुख्य मित्र का काम किया करती है। अन्य पुरुष कहाँ तक सहायक हो सकते हैं।*

"एकं मित्रं भूपति र्वा यति र्वा।" २३

भावार्थः—*मानव-जीवन में मित्रता या तो राजा के साथ ही होना चाहिये अथवा किसी उच्च कोटि के साधु के साथ अथवा योगीराज यति के साथ ही होना चाहिये।*

"योगी यथा ध्यायति मुक्ति-सौख्यं,
स्मरामि चित्तेऽप्यनिशं तथा त्वाम्।" २४

भावार्थः—*हे मित्र! जैसे योगी और ध्यानी निरन्तर मोक्ष सुख का ही ध्यान लगाये रखते हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने चित्त में निरन्तर—रात और दिन तुम्हें स्मरण करता रहता हूँ।*

"यो यस्य चित्ते न कदापि दूरम्।" २५

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—*जो जिसके चित्त में रमा हुआ होता है वह उससे कदापि दूर नहीं होता है।*

"चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतलः प्रियसमागमः ।" २६

—वाल्मिकि

भावार्थः—चन्द्र और चन्दन की अपेक्षा स्नेही बंधु का सम्मेलन अधिक शीतल याने अधिक सुखदायक प्रतीत होता है ।

"यो यस्याभिमतः स तस्य निकटे दूरेऽपि सन् वल्लभः ।" २७

भावार्थः—जो जिसको प्रिय और मधुर मालूम होता है, वह चाहे दूर हो अथवा निकट हो, तो भी उसके लिये वल्लभ होता है ।

"अधनस्य कुतो मित्रम् ?" २८

भावार्थः—निर्धन पुरुष के कौन मित्र होता है ? गरीब से कोई भी मित्रता नहीं करना चाहता है ।

जीवनोपयोगी-विषय

श्रेष्ठता-सूचक

"विषयेभ्यो निवृत्तानां श्लाघ्यं तेषाम् हि जीवितम् ।" १

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*जो इन्द्रिय-भोग्य-भोगों से विरक्त हैं, उन्हीं का जीवन प्रशंसनीय है।*

"इन्द्रियै र्न जितो योऽसौ धीराणाम् धुरि गण्यते ।" २

(ज्ञानसार)

भावार्थः—*इन्द्रियों द्वारा जिसका पराभव नहीं हुआ है, वही पुरुष धीरों में अग्रगण्य हैं।*

"स एव धन्यो विपदि स्वरूपं न विमुंचति ।" ३

भावार्थः—*वही धन्य है, जो विपत्ति में अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता है।*

"श्रेयो निर्मलधर्मकर्मनिरतिः श्लाघ्या नराणां स्थितिः।" ४

(सूक्त-मुक्तावलि)

भावार्थः—कल्याणकारी और पवित्र धार्मिक कार्यों में जो लीन रहते हैं, उन पुरुषों का जीवन प्रशंसनीय है।

"धन्यास्ते पशवो येषाम् चर्माप्युपकरोति हि।" ५

भावार्थः—वे पशु धन्य हैं और प्रशंसा के पात्र हैं, जिनके शरीर का चमड़ा तक पर-हित में उपयोगी बनता है।

"धन्योऽन्ध ! त्वं धनमदवताम् नेक्षसे यन्मुखानि।" ६

भावार्थः—अरे अन्धराज ! तू सौभाग्यशाली है कि धन के मद से गर्वित पुरुषों के मुख को तू नहीं देखता है।

"लेखयन्ति नरा धन्या ये जिनागमपुस्तकम्।" ७

(कुमारपाल प्रबन्ध)

भावार्थ—वे पुरुष धन्य हैं, जो कि वीतराग प्रणीत शास्त्रों का अवलोकन किया करते हैं अथवा उनकी प्रतिलिपियाँ किया करते हैं।

"धन्याः केऽपि धनानि सन्त्यपि तृणानीव त्यजन्ति क्षणात्।"

(संवेगद्रुम कन्दली)

भावार्थः—वे महापुरुष अत्यन्त प्रशंसा के पात्र हैं, जो कि क्षण भर में ही अपने धन को घास के तिनके के समान अनासक्त भावना के साथ त्याग देते हैं।

"परार्थसाधने यस्य व्यापारो धन्य एव सः ।" ९

भावार्थः—*जिसकी प्रवृत्ति परहित साधन में है, वही पुरुष धन्य है।*

स्वाभिमान-गौरव

"मानो हि महतां धनम् ।" १०

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—*आत्म-गौरव ही महापुरुषों का धन होता है।*

"सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरगमनम् ।" ११

(विल्हण कवि)

भावार्थः—*सत्पुरुष अपने गौरव में ठेस पहुंचने पर या तो मृत्यु की शरण लिया करते हैं अथवा कहीं दूर देश में चले जाया करते हैं।*

"मृत्योश्च क्षणिके दुःखं मानभंगात् दिने दिने ।" १२

(चाणक्य-नीति)

भावार्थः—*मृत्यु से तो दुःख क्षण मात्र तक ही होता है, जबकि अपमान का दुःख सदैव ज्यों का त्यों ही बना रहता है।*

"मृत्युस्तु क्षणिका पीड़ा मानखंडं पदे पदे ।" १३

भावार्थः—मरण का दुःख तो क्षण मात्र तक ही होता है, जबकि अपमान की व्यथा तो पग पग पर शूल के समान सदैव अनुभव हुआ करती है।

"पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्।" १४

भावार्थः—(सेवा और संयम के मार्ग में) कष्ट रूप पराभव भी गौरवशील पुरुषों के लिये उत्सव समान ही हुआ करता है।

"परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम्।" १५

भावार्थः—अभिमानियों का मन अन्य की उन्नति में द्वेष रखने वाला ही हुआ करता है।

भक्ति

"हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।" १६
(भगवद् गीता)

भावार्थः—हे अर्जुन! जो हर्ष, क्षोभ, भय और उद्वेग से रहित है, वही मुझे प्रिय है।

"कण्ठे सुधा वसति वै भगवज्जनानाम्।" १७

भावार्थः—भगवान् के भक्तों के कंठ में ही वास्तव में अमृत का निवास है।

"सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।" १८
(भगवद्-गीता)

भावार्थः—जो सभी प्रकार के आरंभ-समारंभ का परित्याग करता हुआ मेरा भक्त बन कर रहता है, वही मुझे प्रिय है।

"प्रिया भवंति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्युपस्थिता।" १९

(अत्रि-स्मृति)

भावार्थः—अपने अपने कर्त्तव्य में परायण पुरुष ही संसार में लोक-प्रिय हुआ करते हैं।

"अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।" २०

(भगवद्-गीता)

भावार्थः—जो घर रहित है, स्थिर बुद्धि वाला है, और भक्तिशील है, ऐसा पुरुष ही मुझे प्रिय है।

"नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः।" २१

भावार्थः—जो भगवान् का स्मरण नहीं किया करता है, वह पुरुष नीच है—जघन्य है।
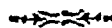
गृहस्थ-आश्रम

"साधोः संगमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।" २२

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—वह गृहस्थाश्रम सदा धन्य है, जिस में निरन्तर साधु-पुरुषों की सत्संगति का लाभ प्राप्त किया जाता है।

"दानादौ व्रतपालने च सततं कार्या रतिः श्रावकैः।" २३

(उपदेश तरंगिणी)

भावार्थः—*श्रावकों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे सदैव दान आदि में और व्रत पालन में रुचि रखें।*

"वशीकृतेन्द्रियग्रामो गृहिधर्माय कल्पते।" २४

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*जिसने इन्द्रिय-समूह को वश में कर लिया है, वह पुरुष गृहस्थ धर्म अंगीकार करने का अधिकारी माना जाता है।*

"गृहस्थोऽपि क्रियायुक्तो गृहेण न गृही भवेत्।" २५

(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—*क्रिया-पात्र गृहस्थ घर में रहता हुआ भी "गृही-परिग्रही" नहीं है, किन्तु त्यागी ही है।*

"आवृत्तश्च व्रतैर्नित्यं श्रावकः सोऽभिधीयते।" २६

(श्राद्ध गुण विवरण)

भावार्थः—*जो निरन्तर व्रतों की साधना किया करता है, वही श्रावक कहलाता है।*

"नाश्रमः कारणं मुक्तेः।" २७

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—*मुक्ति का कारण केवल आश्रम ही नहीं है। वास्तव में मुक्ति की प्राप्ति चारित्र से ही हुआ करती है।*

शिष्य

"यः पूज्य गुणदर्शी च स शिष्योऽन्वर्थकः खलु । २८

भावार्थः—जो पूज्य पुरुषों के गुणों का दर्शी है, वही वास्तव में सच्चा शिष्य है ।

"उत्तिष्ठेत् प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ।" २९
(मनु-स्मृति)

भावार्थः—गुरु के उठने के पहले उठे और उनके बैठने के अंत में बैठे ।

"कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ।" ३०

भावार्थः—अयोग्य शिष्य को पढाने से यश की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

"शिक्षा तस्मै प्रदातव्या यो भवेत्तत्र यत्नवान् ।" ३१
(विवेक-विलास)

भावार्थः—शिक्षण उसी को देना चाहिये, जो कि शिक्षण लेने के लिये प्रयत्नशील हो ।

"कस्य नोच्छृङ्खलं बाल्यं गुरुशासनवर्जितम् ।" ३२

भावार्थः—गुरु-आज्ञा के बिना किस की बाल अवस्था उद्दण्डता को नहीं प्राप्त हुई है ?

धीर पुरुष

"आपदि स्फुरति प्रज्ञा यस्य धीरः स एव हि ।" ३३

भावार्थः—*जिसकी बुद्धि आपत्तिकाल में भी कुण्ठित नहीं होती है और कठिनाइयों में भी स्फूर्ति वाली ही रहती है, वही 'धीर-पुरुष' कहलाने के योग्य होता है ।*

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषाम् न चेतांसि त एव धीराः ।" ३४

भावार्थः—*विकार को उत्पन्न करने वाले बाह्य आंतरिक कारण मौजूद होने पर भी जिन पुरुषों के चित्त में विकार उत्पन्न नहीं हुआ करते हैं, ऐसे ही महापुरुष धैर्य गुण को धारण करने वाले कहे जा सकते हैं ।*

"शिरः छेदेऽपि वीरस्तु धीरत्वं नैव मुञ्चति ।" ३५

भावार्थः—*वीर पुरुष सिर के कट जाने पर भी धैर्य को कभी नहीं छोड़ा करते हैं ।*

"न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।" ३६
—भर्तृहरि

भावार्थः—*धीर पुरुष न्याय के मार्ग से एक पग भी इधर-उधर नहीं रक्खा करते हैं ।*

"अनिश्चितावधिं धीराः सहन्ते विरहं चिरम् ।" ३७

भावार्थः—धीर पुरुष लम्बे समय के विरह को भी अनिश्चित अवधि तक सहन किया करते हैं।

"मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे पुंसः श्रेयस्करी धृतिः।" ३८

—व्यासदेव

भावार्थः—कष्ट सागर में डूबे हुए पुरुष के लिए धैर्य ही कल्याणकारी होता है।

"अल्पसत्वेषु धीराणामवज्ञैव हि शोभते।" ३९

भावार्थः—अल्प शक्ति रखने वाले जीवों के प्रति उनके अपराधों पर धीर पुरुषों के लिये अवज्ञा करना ही शोभास्पद है।

पराधीनता

"सर्वम् परवशम् दुःखम्।" ४०

भावार्थः—पराधीनता ही सभी दुःखों की खान है।

"कष्टः खलु पराश्रयः।" ४१

भावार्थः—पराधीनता ही घोर दुःख है।

"पराधीनं वृथा जन्म।" ४२

भावार्थः—जिस जीवन में पराधीनता है, वह जीवन व्यर्थ है।

"यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।" ४३

भावार्थः—जो जो काम पर वश हैं, उन उनको यत्न-पूर्वक छोड़ दो।

मौन-धर्म

"मौनं सम्मति-लक्षणम् ।" ४४

भावार्थः—किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देते हुए उस पर मौन रह जाना, यह उस बात को स्वीकार करने का लक्षण है।

"मौनं सर्वार्थसाधकम् ।" ४५

भावार्थः—मौन रहना, मन-वचन-काया का गुप्ति-रूप धर्म है, अतः यह सभी कामनाओं को सफल करने वाला है।

"मौनिनः कलहो नास्ति ।" ४६

भावार्थः—मौन रखने वाले महापुरुष के लिये कलह की—क्लेश की उत्पत्ति नहीं हुआ करती हैं।

"विभूषणं मौनमपंडितानाम् ।" ४७

भावार्थः—मूर्खों के लिये सभा आदि स्थानों पर मौन रहना ही शोभास्पद है।

"सदा मूकत्वमासेव्यं वाच्यमानेऽन्यमर्माणि ।" ४८

(विवेक-विलास)

भावार्थः—किसी की भी मर्म युक्त बात कहने का मौका आवे तो उस समय में सदा मौन का ही सहारा लेना चाहिये।

"दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम्।" ४६

भावार्थः—मेंढ़कों के समान मूर्ख पुरुष ही जहाँ पर बोलने वाले हों, वहाँ पर विवेकशील पुरुषों के लिये मौन धारण करना ही शोभा-रूप है।

संगठन

"अल्पानामपि वस्तूनाम् संहतिः कार्यसाधिका।" ५०

भावार्थः—छोटी छोटी वस्तुओं का समूह भी सफलता का हेतु होता है।

"संघ-शक्तिः कलि-युगे।" ५१

भावार्थः—कलि काल में पारस्परिक संगठन ही महान् शक्ति है

"तृणैरावेष्ट्यते रज्जुः तया नागोऽपि बध्यते।" ५२
(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—घास के तिनकों से जो रस्सी बनाई जाती है, उससे हाथी जैसा शक्ति-शाली प्राणी भी बांध दिया जाता है, यह सब-संगठन का ही प्रताप है।

"पञ्चभिर्मिलितैः किं यज्जगतीह न साध्यते?" ५३

भावार्थः—इस संसार में वह कौनसी बात है जो कि पांच व्यक्तियों के मिलने पर सिद्ध नहीं हुआ करती है ?

"बहुभि र्न विरोद्धव्यं दुर्जयो हि महाजनः ।" ५४

भावार्थः—एक साथ अनेक पुरुषों से विद्रोह नहीं करना चाहिये, क्योंकि अनेक मनुष्यों के साथ संयुक्त रूप से जीतना असंभव सा होता है ।

"संहतेः पश्य प्रौढिं तृणैस्तद् वारिवारणम् ।" ५५

भावार्थः—जो पानी कठोर पर्वत को भी भेद दिया करता है, वही पानी घास-समूह से रोक दिया जाता है । ऐसे शक्ति-शाली संगठन के रहस्य को समझो ।

"सर्वे महत्त्वमिच्छंति तद् वृन्दमवसीदति ।" ५६
(श्राद्ध गुण विवरण)

भावार्थः—वह समूह दुःख पाता है, जिसमें सभी नेता बनना चाहते हैं ।

धारण-योग्य

"विषादप्यमृतं ग्राह्यम् ।" ५७

भावार्थः—यदि विष में भी अमृत रहा हुआ हो तो उसमें से अमृत को निकाल लेना चाहिये । अर्थात् अप्रिय में से भी प्रिय ढूंढ लेना चाहिये ।

"यत्सारभूतं तदुपासितव्यं
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ।" ५८

भावार्थः—जो सार रूप तत्त्व है, उसी को ग्रहण करना चाहिये, जैसे हंस पानी में से दूध को ग्रहण कर लेता है।

"ग्रहितव्यं बालादपि सुभाषितम् ।" ५९

भावार्थः—यदि वचन हितकारी हो तो उसको बालक से भी ग्रहण कर लेना चाहिये। हितकारी वचनों के प्रति वक्ता की आयु की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये।

"अवधार्या विशेषोक्तिः परवाक्येषु कोविदैः ।" ६०
(विवेक-विलास)

भावार्थः—दूसरों के वचनों में जो जो विशेष बात हो, उसको समझदार पुरुषों द्वारा ग्रहण कर लिया जाना चाहिये।

पात्र-योग्यता सम्पन्न

"तत्त्वार्थाहितचेतस्कास्ते दातुरुत्तमाः ।" ६१
(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो वस्तु-स्थिति की विचारणा में स्थिर चित्त हैं, वे ही दाता के लिये उत्तम पात्र हैं।

"सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं तन्न विनश्यति ।" ६२

(पाराशर स्मृति)

भावार्थः—सुक्षेत्र में और सुपात्र में जो अंकुरित हुआ है, वह नष्ट नहीं हुआ करता है ।

"स्वाध्यायब्रह्मचर्यादियुक्तं पात्रं तु जंगमम् ।" ६३

(उपदेश तरंगिणी)

भावार्थः—जो महात्मा स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य आदि सद्-गुणों से शोभायमान हैं; वे ही सजीव सत्पात्र हैं ।

"पात्रानुसारं फलं ।" ६४

भावार्थः—जैसा पात्र होता है वैसा ही फल भी होता है ।

"व्रताढ्या ज्ञानसंपन्नास्ते पात्रं करुणापराः ।" ६५

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो व्रत-नियम पालने में आदर्श हैं, जो ज्ञान-शील हैं, जो करुणा से शोभायमान हैं, ऐसे महापुरुष ही सत्पात्र हैं ।

"अनवसरे याचितमिति सत्पात्रमपि कुप्यते दाता ।" ६६

भावार्थः—सत्पात्र होने पर भी बिना अवसर के मांगने पर दाता कुपित हो जाया करता है ।

"वृथा दानं समर्थस्य ।" ६७

भावार्थः—कार्य करने की शक्ति रखने वाले समर्थ पुरुष को दान देना व्यर्थ ही है।

"सैव भूमिस्तदेवाम्भः पश्य पात्रविशेषतः।" ६८

(याज्ञवल्क्य स्मृति)

भावार्थः—एक ही भूमि पर और एक समान जल द्वारा ही विकसित होने वाले (जैसे कि आम और नीम वृक्षों) में जो विशेषता और भिन्नता पाई जाती है, उसका मूल कारण पात्रों की भिन्नता और विशेषता ही समझना चाहिये।

हिंसा-पाप का मूल स्थान

"हिंसैव दुर्गते द्वारम् ।" १

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*हिंसा ही दुर्गति का द्वार है ।*

"हिंसामन्यस्य नाचरेत् ।" २

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*दूसरे की हिंसा नहीं करे । किसी को भी पीड़ा नहीं पहुंचावे ।*

"मा हिंस्यात् सर्व भूतानि ।" ३

भावार्थः—*किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो ।*

"हिंसैव दुरितार्णवः ।" ४

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*हिंसा ही पाप का समुद्र है ।*

"हिंसैव गहनं तमः ।" ५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*हिंसा ही घोर अंधकार है ।*

"धर्मो न हिंसया ।" ६

(हिंगुल प्रकरणं)

भावार्थः—*हिंसा करते हुए धर्म की साधना नहीं हो सकती है ।*

"हिंसा नाम भवेद् धर्मो न भूतो न भविष्यति ।" ७

(पूर्व मीमांसा)

भावार्थः—*"हिंसा में धर्म है" ऐसा न तो कभी होता है, न कभी हुआ है और न कभी होगा ।*

"वधको नैव शुद्धयति ।" ८

(देवी भागवत)

भावार्थः—*प्राणियों की घात करने वाला कभी भी पवित्र नहीं हो सकता हैं ।*

"जन्तून् यः पातकी हन्यात् स नरत्वेऽपि राक्षसः ।" ९

— शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*जो पापी जीवों की हत्या करता है, वह मनुष्य होता हुआ भी राक्षस ही है ।*

"जीवितार्थे ध्रुवं मृत्युं कृता हिंसा प्रयच्छति ।" १०

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—जीवन-निर्वाह के लिये की गई हिंसा अवश्य ही मृत्यु जैसा संकट दिया करती है। हिंसा का भीषण परिणाम घोर पीड़ा ही है।

"बाह्यप्राणा नृणामर्थो हर्ता तं हता हि ते।" ११

(त्रिषष्ठि पुरुष चरित्र)

भावार्थः—धन मनुष्यों का बाह्य प्राण है। उस धन को हरण करने वाला निश्चय में उसके प्राणों का ही हरण करने वाला होता है।

"घ्नन्ति जन्तून् गतघृणा घोराम् ते यान्ति दुर्गतिम्।" १२

(योग शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थः—जो घृणा रहित होकर, अथवा करुणा रहित होकर निरपराध जीवों की घात किया करते हैं वे मर कर अत्यंत दु:ख देने वाली दुर्गति में जाते हैं।

(४४)

असत्य-जीवन का घोर अधः पतन

"नानृतात् पातकं परम् ।" १

भावार्थः—झूठ बोलने के बराबर दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है ।

"असत्यमप्रत्ययमूलकारणम् ।" २

भावार्थः—झूठ अविश्वास को उत्पन्न करने में मूल कारण होता है । अर्थात् झूठ बोलने से साख बिल्कुल ही उठ जाती है ।

"वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम् ।" ३

भावार्थः—मौन रह जाना अर्थात् चुपचाप हो जाना अच्छा है, परन्तु जो वचन बोला जाय, वह झूठ हो, यह बात अच्छी नहीं है ।

"अभ्याख्यानं तथाकर्म सर्वकर्मसु गर्हितम् ।" ४

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—किसी के भी प्रति झूठा कलंक लगाना, ऐसा कर्म सभी कर्मों में ज्यादा निंदनीय है ।

"असत्यवचनं प्राज्ञः प्रमादेनापि नो वदेत् ।" ५

(योग-शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष प्रमाद से भी-भूल से भी असत्य वचन नहीं बोले ।

"प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ।" ६

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—वचन प्रिय होने पर भी यदि वे असत्य हैं, तो उन वचनों को कभी भी नहीं बोलना चाहिये, यही सनातन धर्म है ।

"नासत्यवादिनः सख्यं न पुण्यं न यशो भुवि ।" ७

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—झूठ बोलने वाले को इस पृथ्वी पर न तो सज्जन आदमियों की मित्रता ही मिला करती है, और न पुण्य ही मिलता है, तथा न यश की ही प्राप्ति हो सकती है ।

"सर्वं भूम्यनृतं हंति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ।" ८

(बृहस्पति-स्मृति)

भावार्थः—खेत-मकान आदि रूप से जमीन संबंधी बोला गया झूठ पुण्य-धन-सुख आदि सभी पदार्थों को नष्ट कर देता है, अतः जमीन संबंधी झूठ कभी भी नहीं बोलना चाहिये ।

"तत्तथ्यमपि नो तथ्यमप्रियं चाहितं च यत् ।" ९

(त्रिषष्टि पुरुष चरित्र)

भावार्थः—जो वचन न तो प्रिय ही हैं और न हितकारी ही हैं, वे चाहे सत्य भी हों, तो भी वे वास्तव में मिथ्या ही हैं—झूठे ही हैं।

"असत्यवादिनः पुंसः प्रतिकारो न विद्यते।" १०

(योग-शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थः—झूठ बोलने वाले पुरुष का प्रतिकार नहीं है। दूसरे पापों की तो तप आदि के द्वारा निर्जरा हो सकती है, लेकिन झूठ का तो फल भोगना ही पड़ता है।

"पापास्रवाय विज्ञेयमसत्यं पुरुषं वचः।" ११

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—मनुष्य के द्वारा बोला गया झूठ वचन साक्षात् पाप का रूप ही समझा जाना चाहिये।

"वाधिर्यं मुखरोगित्वमसत्यादेव देहिनाम्।" १२

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—प्राणियों को बहिरापन की प्राप्ति और मुख के अन्य रोगों की प्राप्ति झूठ बोलने के कारण से ही हुआ करती है।

"यो न्यायमन्यथा ब्रूते स याति नरकं नरः।" १३

(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—जो पुरुष न्याय-नीति के विपरीत बोलता है, वह नरक में जाता है।

काम-विकार-जघन्यतम पाप

"न-कामसदृशो रिपुः।" १

भावार्थः—कामभोगों के समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है।

"नास्ति कामसमो व्याधिः।" २

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—इस काम-वासना के समान दूसरा कोई भी रोग नही हो सकता है। यह साक्षात् हलाहल विष ही है।

"कुतः सत्यं च कामिनाम्।" ३

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—कामी पुरुष सत्य-भाषण कब किया करते हैं?

"संसारमूलं हि किमस्ति ? काम-चिंता।" ४

भावार्थः—जन्म-मरण रूप संसार की मूल जड़ क्या है? उत्तर—विषय-भोग संबंधी दुश्चिन्ताएं ही संसार की मूल जड हैं।

"को वा विरक्तो ? विषये विरक्तः।" ५

भावार्थः—संसार से उदासीन कौन है ? जो पुरुष विषय-भोगों से सर्वथा दूर है, वही विरक्त है, उदासीन है।

"किं वा न कारयति मन्मथः ?" ६

भावार्थः—काम-वासना क्या क्या पाप नहीं करा लेती है ?

"इन्द्रचापसमा भोगाः।" ७

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—विषय-वासनाओं के सुख वर्षाकालीन मेघों के इन्द्र धनुष की तरह ही क्षण-स्थायी होते हैं।

"हतमपि निहंत्येव मदनः।" ८

भावार्थः—काम-वासना के संस्कार इतने प्रबल हुआ करते हैं कि ये निर्बल और रोग से पीड़ित प्राणी को भी सताया करते हैं।

"कामिनश्च कुतो विद्या ?" ९

भावार्थः—कामी और भोगी पुरुष को विद्या कैसे प्राप्त हो सकती है।

"व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः कुमारीगमनेन च।" १०

(शातातप स्मृति)

भावार्थः—जो मनुष्य कुमारी कन्या के साथ काम-क्रीड़ाएँ करता है, वह बाघ आदि हिंसक पशुओं द्वारा मारा जाता है।

"सतां न कामः कलुषीकरोति।" ११

भावार्थः—मुनियों को काम-वासना मलीन नहीं किया करती है। क्योंकि मुनिगण तो इन्द्रियों और मन को पूरी तरह से निग्रह करने वाले होते हैं।

"काम-क्रोधौ हि जीवाणां मोक्षद्वारार्गलावुभौ।" १२

भावार्थः—प्राणियों के काम और क्रोध ये दोनों ही मोक्ष रूप नगरी के द्वार के दो आगल के समान हैं।

"भोगा भुजंगभोगाभाः सद्यः प्राणापहारिणः।" १३

भावार्थः—जैसे सर्प का फन भयंकर और विष वाला होता है, वैसे ही ये विषय-भोग भी भयंकर और विष वाले होते हुए भोगियों के आत्मिक, मानसिक और शारीरिक गुणों को और प्राणों को तत्काल हरण करते हैं।

"संगात् संजायते कामः।" १४

(भगवद्-गीता)

भावार्थः—दुस्संगति के प्रभाव से ही काम-वासना जागृत होती है।

"अहो अतीवभोगाशा किं नाम न विडम्बयेत् ?" १५

भावार्थः—अरे! अत्यन्त विषय-वासना कौन कौनसी विडम्बना नहीं दिया करती है ? तात्पर्य यह है कि विषय-वासना से सभी प्रकार के संकट उत्पन्न हुआ करते हैं।

"कः सदा दुःखी ? विषयानुरागी।" १६

भावार्थः—नित्य और नियमित रूप से दुःखी, संतप्त एवं व्यग्र कौन है? उत्तर—जो विषय भोग से आसक्ति रखता है, वहीं दु.खी, संतप्त और व्यग्र है।

"कोऽवकाशो विवेकस्य हृदि कामांधचेतसः?" १७

भावार्थः—जिसका चित्त विषय-वासनाओं से अंधा हो गया है, और केवल काम-क्रीड़ाओं में ही जिसका चित्त आसक्त है, उसके हृदय में विवेक रूप ज्ञान-चक्षु ज्योतिसंपन्न कैसे हो सकते हैं?

"विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विंदति।" १८

(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—जिसका चित्त साधु-वेश धारण करने के पश्चात् भी विषयासक्त ही रहता है, तो ऐसी आत्मा मोक्ष नहीं प्राप्त किया करती है।

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।" १६

भावार्थः—जैसे निरन्तर इंधन डालते रहने से जलती हुई अग्नि कभी भी बुझा नहीं करती है, वैसे ही निरन्तर काम-वासना का सेवन करते रहने से यह काम-वासना भी किसी भी दशा में शांत नहीं हो सकती है।

"पुंसो विना विरागं मुक्तेरधिकारिता न स्यात्।" २०

(सुबोध पद्माकर)

भावार्थ—वैराग्य-भावना की आराधना किये विना कोई भी पुरुष मुक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता है।

"धिग्दुःखितान् कामिनः ।" २१

भावार्थः—काम वासना से दुःखी और संतप्त प्राणियों के प्रति, तथा कामातुर भोगियों के प्रति बार बार धिक्कार है ।

"उपभुक्तं विषं हन्ति; विषयाः स्मरणादपि ।" २२

(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—विषय-भोग विष से भी तीव्र घातक होते हैं । विष तो भक्षण करने पर विनाश करता है, जबकि विषय केवल स्मरण करने मात्र से ही आत्मा के गुणों का विनाश कर दिया करते हैं ।

"दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि ।" २३

(विवेक चूड़ामणि)

भावार्थः—काले सर्प के विष की अपेक्षा भी यह विषय-वासना रूप विष फल की दृष्टि से अत्यंत घातक और तीव्रतम विषम होता है ।

"वयसि गते कः कामविकारः ?" २४

भावार्थ—आयु के पक जाने पर अर्थात् वृद्ध अवस्था के आ जाने पर काम-विकार की जागृति कैसी ? इस अवस्था में तो काम-विकार पर अवश्यमेव विजय प्राप्त करना ही चाहिये ।

"न तु भोगविषं भुक्तमनंतभवदुखदम् ।" २५

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—अनन्त भावों तक नाना प्रकार की पीड़ा देने वाले

इस काम भोग रूप विष का भक्षण कदापि नहीं करना चाहिये ।

"विषया विश्ववंचकाः ।" २६

(त्रिषष्ठि पुरुष चरित्र)

भावार्थः—पाँचों इन्द्रियों के विषय विश्व मात्र को ठगने वाले हैं । क्योंकि ये आत्मा को सभी गुणों को नष्ट कर दिया करते हैं ।

किं किंपाकफलेष्विवान्तविरसेष्वेतेषु धत्से रतिम् ?" २७

(संवेगद्रुम कंदली)

भावार्थः—ये विषय-वासनाएं किंपाक फल की तरह से प्रारंभ में तो मधुर, आकर्षक और प्रिय प्रतीत होती है, परन्तु अंत में असाधारण और असहनीय पीड़ाए देने वाली होती हैं, ऐसी इन विरस स्वभाव वाली काम-वासनाओं में प्रेम तथा आसक्ति क्यों प्रकट करता है ?

"अधमाधमा कामचिन्ता च ।" २८

(उपदेश-प्रसाद)

भावार्थः—नीच से भी नीच कोई चिन्ता हो सकती है, तो वह काम-वासना संबंधी चिंता ही हैं ।

"तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेत् विन्ध्यस्तरेत् सागरम् ।"२९

भावार्थः—जो भोगों में पूरी तरह से आसक्त हैं, उनका इन्द्रिय-निग्रह उसी अवस्था में हो सकता है, जिस अवस्था में विन्ध्याचल पहाड़ समुद्र में तैरने लग जाय ।

"आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः ।" ३०

भावार्थः—ये विषय-भोग भोगने के समय में तो आल्हादक, रमणीय, आकर्षक और प्रीतिप्रद मालूम होते हैं, परन्तु इनका परिणाम घोर विषाद, अनन्त पीड़ा और नाना जन्म-मरण के रूप में प्राप्त होता है। ये विषय-भोग आत्मा के निर्मल गुणों के लिये हलोहल विष के समान ही हैं।

"कस्मादात्मन्नेकान्तमूढ़ !
कलयसि विषयेष्वेव सौख्याभिमानम् ।" ३१
(संवेगद्रुम कन्दली)

भावार्थः—हे आत्मन् ! तू एकान्त मोह-सागर में अत्यन्त गहरा डूब कर इन विषय-भोगों में ही सुख-संतोष क्यों अनुभव करता है ?

"ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धावंति भोगाशया ।" ३२

भावार्थः—वे पुरुष वास्तव में नीच से भी नीच ही हैं, जो कि आदर्श दया-धर्म को प्राप्त करके भी इसको छोड़ देते हैं और केवल विषय-भोगों की ओर ही रात और दिन दौड़ते रहते हैं।

"संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।" ३३
(भगवद् गीता)

भावार्थः—भोगों के प्रति आसक्ति रखने से काम-वासना पैदा होती है, और काम वासना की पूर्ति में बाधा डालने वालों के प्रति जाज्वल्यमान और उग्र क्रोध उत्पन्न हुआ करता है।

"किं रे चित्त ! रतिं करोषि विमुखां
सिद्ध्यंगना-संगमात् ।" ३४

भावार्थः—अरे चित्त ! मोक्ष रूप स्त्री से शत्रुता रखने वाली इस काम-वासना के प्रति तू प्रेम क्यों करता है ।

"व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।" ३५
(मनु-स्मृति)

भावार्थः—कुत्सित प्रवृत्ति करने की आदत बन जाना, यही व्यसन है । व्यसन और मृत्यु इन दोनों में से व्यसन ही अधिक पीड़ा-कारी कहा जाता है ।

"काम-व्यसनवृक्षस्य मूलं दुर्जनसंगतिः ।" ३६

भावार्थः—काम-वासना रूप व्यसन ही एक प्रकार का वृक्ष है, और दुष्टों की संगति करना ही इस विष-वृक्ष की जड़ है ।

"सुदुस्त्यजास्त्यजन्तोऽपि कामाः कष्टा हि शत्रवः ।" ३७

भावार्थः—ये काम-विकार रूप शत्रु अत्यंत भयंकर और अवर्णनीय दुःख को देने वाले हैं, इनका परित्याग करने के लिये बार-बार घोर प्रयत्न करने पर भी इनसे पिंड छुड़ाना अत्यन्त ही कठिन है ।

"वैराग्यं न भजन्ति मन्दमतयः कामातुरा हि नराः ।" ३८
—पद्मानन्द

भावार्थः—जो पुरुष काम-भोगों के प्रति आतुर और व्यग्र

रहते हैं, वे महामूर्ख हैं, तथा वे वैराग्य जैसे श्रेष्ठ रत्न को नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

"कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः।" ३९

—भर्तृहरि

भावार्थः—काम-वासना के अहंकार को, अथवा काम-भावना की शक्ति को चकनाचूर करने वाले कोई विरले महापुरुष ही हुआ करते हैं।

"अपूर्वः कोऽपि कामान्धो दिवा नक्तं न पश्यति।" ४०

(उपदेशमाला)

भावार्थः—काम भोगों में अंधा हुआ प्राणी कितना विचित्र और धिक्कार का पात्र बन जाता है कि उसे न तो दिन में दिखाई देता है और न रात में ही दिखाई देता है।

"किंपाकफलसंकाशं तत् कः सेवेत् मैथुनम् ?" ४१

(त्रिषष्ठि पुरुष चरित्र)

भावार्थः—जो किंपाक फल के समान रमणीय प्रतीत होता हुआ भी आत्मा के गुणों का घातक है, ऐसे जघन्य कर्म रूप मैथुन को कौन समझदार सेवेगा ?

लोभ-लालसा-दुर्गुणों की खान

"लोभो व्यसन-मंदिरम् ।" १

(योग-सार)

भावार्थः—लोभ अनिष्ट-प्रवृत्तियों का मूल-स्थान है। लोभ ही आपत्तियों का केन्द्र स्थान है।

"लोभमूलानि पापानि ।" २

(उपदेशमाला)

भावार्थः—पापों को उत्पन्न करने वाला लोभ ही है।

"लोभाद्धर्मो विनश्यति ।" ३

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—लोभ से ही धार्मिक प्रवृत्तियों का नाश हुआ करता है।

"लोभो जगद्-व्यापकः ।" ४

(हिंगुल प्रकरण)

भावार्थः—लोभ नामक कषाय प्राणी मात्र में मौजूद है, इसीलिये कहा जाता है कि लोभ विश्व व्यापक है ।

"त्रिलोक्यामपि ये दोषास्ते सर्वे लोभसंभवाः ।" ५

(योग सार)

भावार्थः—तीनों लोक में जितने भी पाप हैं, वे सभी लोभ के कारण से ही उत्पन्न हुआ करते हैं । लोभ ही दोषों का मूल उत्पादक है ।

"सर्वगुणविनाशनम् लोभात् ।" ६

(प्रशम रति)

भावार्थः—लोभ से सभी गुणों का नाश हुआ करता है ।

"मुक्तिर्मुक्तिवधूसमागमविधौ दूती समाराध्यताम् ।" ७

(संवेग द्रुम कंदली)

भावार्थः—मोक्ष रूप स्त्री की प्राप्ति कराने में दूती समान निर्लोभता को अपनाओ । अर्थात् लोभ का परित्याग करना ही मोक्ष को प्राप्त करना है ।

"सर्वेषामपि पापानाम् निमित्तं लोभ एव हि ।" ८

(धर्म-परीक्षा)

भावार्थः—सभी प्रकार के पापों का निमित्त कारण अर्थात् उत्पादक कारण केवल लोभ ही है ।

"लोभो पापस्य कारणम् ।" ९

(हितोपदेश)

भावार्थः—पाप का एक मात्र कारण लोभ ही है।

"लोभः सर्वार्थबाधकः ।" १०

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—सभी प्रकार की हित-साधना में बाधा पहुंचाने वाला लोभ ही है।

"केषां हि नापदां हेतुरतिलोभान्धबुद्धिता ?" ११

भावार्थः—अति लोभान्ध बुद्धि किनके लिये विपत्ति का कारण नहीं हुआ करती है ? अर्थात् बिना किसी अपवाद के लोभ-बुद्धि सभी के लिये आपत्तियाँ लाने वाली ही होती है।

"अर्थातुराणां न गुरु र्न बन्धुः ।" १२

भावार्थः—धन-संग्रह करने में अंधे और व्यग्र पुरुष न तो गुरुजनों को ही देखते हैं और न बन्धु बान्धवों का ही ध्यान रखते हैं।

"मूले लघीयांस्तल्लोभः शराव इव वर्धते ।" १३

भावार्थः—देवी-देवताओं के आगे धूप देने का मिट्टी का जो पात्र होता है, वह जैसे प्रारंभ में तो छोटे रूप वाला होता है, और बाद में ऊपर का भाग विस्तृत होता है, वैसे ही लोभ भी प्रारंभ में तो सामान्य मात्रा में ही हुआ करता है और बाद में दिनों दिन बढ़ता रहता है।

"लोभानलस्तु न कदाचिददाहकः स्यात् ।" १४

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—लोभ रूप अग्नि कभी भी अदाहक नहीं होती है। अर्थात् लोभ का परिणाम बिना किसी अपवाद के सदैव आत्मा को जलाने वाला ही होता है। लोभ से अंत में निश्चित रूप से पश्चात्ताप ही करना पडता है।

"लोभांशमात्रदोषेण पतंति यतयोऽपि हि ।" १५

(योग शास्त्र)

भावार्थः—यति संयम-शील होते हैं, फिर भी यदि उनमें लोभ का सामान्य अंश भी जागृत हो जाय तो वे पतित हो जाया करते हैं।

"अदत्तदोषेण भवेद् दरिद्री ।" १६

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—लोभ के कारण से ही दान देने की भावना उत्पन्न नहीं हुआ करती है, और दान नहीं देने से ही दरिद्र-अवस्था की प्राप्ति हुआ करती है।

"लोभाकुलो वितनुते सधनस्य सेवाम् ।" १७

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—लोभ से व्याकुल पुरुष ही धनवान् पुरुष की सेवा में अपने तन-मन की संपूर्ण शक्ति और प्रयत्न लगाया करता है।

"लोभाविष्टो नरो वित्तं वीक्षते न स चापदम् ।" १८

भावार्थः—लोभी पुरुष की नजर धन की ओर ही हुआ करती है, वह आपत्ति की ओर ध्यान नहीं दिया करता है।

"लुब्धेनोपार्जितं द्रव्यं समूलं च विनश्यति ।" १९

भावार्थः—लोभ के वश में होकर अन्याय से इकट्ठा किया हुआ धन सम्पूर्ण रूप से और समूल रूप से नाश हो जाया करता है।

"अहो ! लोभस्य साम्राज्यमेकच्छत्रं महीतले ।" २०

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—लोभ निश्चित रूप से दुःखदाता है, फिर भी आश्चर्य है कि इस लोभ का इस पृथ्वी पर एकछत्र शासन है। अर्थात् न्यूनाधिक मात्रा में प्राणी मात्र लोभ से ग्रसित हैं।

"भूम्यो हसंति मम भूमिरिति ब्रुवाणम् ।" २१

भावार्थः—"यह जमीन-जायदाद मेरी है" ऐसे लोभी वक्ता को देख कर पृथ्वी हंसती है। तात्पर्य यह है कि ममता वाला अन्त में घोर दुःख का भागी ही बनता है।

"अर्था हसन्त्युचितदानविहीनलुब्धं ।" २२

भावार्थ—दान देने की शक्ति होने पर भी दान नहीं देने वाले लोभी पुरुष के प्रति उसका धन हंसता रहता है। अर्थात् दान-हीन धनवान् की यहाँ पर भी अपकीर्त्ति होती है और परलोक में भी उसको नाना प्रकार के दुःख-संकट ही प्राप्त होते हैं।

"लोभमोहमदाविष्टः संसारे संसरत्यसौ ।" २३
(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो आत्मा लोभ से, मोह से और अहंकार से घिरा हुआ है, वही संसार में अनन्तकाल तक जन्म-मरण किया करता है।

"लोभग्रहस्य वशिनो न भवंति धीराः ।" २४
(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—धीरज रखने वाले महापुरुष ही लोभ रूप ग्रह के वश में नहीं आया करते हैं। अर्थात् लोभ से छुटकारा प्राप्त करने के लिये धीरज एक बहुत अच्छी औषधि है।

"छिदन्ति ज्ञानदात्रेण स्पृहाविषलतां बुधाः ।" २५
(ज्ञान-सार)

भावार्थः—समझदार और विवेक रखने वाले पुरुष तृष्णा रूप विष की वेल को ज्ञान रूप हासिये से काट देते हैं।

"तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ।" २६
(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—तृष्णा-लालसा-लोभ के नाश होने पर जो सुख मिल सकता है, उस सुख के सोलहवें भाग के बराबर भी सांसारिक सुखों की तुलना नहीं की जा सकती है।

"निष्काशनीया विदुषा स्पृहा चित्तगृहाद्बहिः ।" २७
(योग-शास्त्र)

भावार्थः—ज्ञानवान् पुरुष का यही कर्त्तव्य है, कि वह अपने चित्त रूप घर से तृष्णा-लालसा रूप कुलटा स्त्री को बाहिर निकाल दे।

"निस्स्पृहस्याहो चक्रिणोऽप्यधिकं सुखम्।" २८

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—जो आशा और तृष्णा से रहित हो गया है, ऐसे महापुरुष को चक्रवर्ती से भी अधिक सुख का अनुभव हुआ करता है।

"यो हि तृप्तिं न संप्राप्तः स किम् प्राप्स्यति सांप्रतम् ?" २६

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो पुरुष वर्त्तमान में प्राप्त वस्तु के प्रति तृप्त नहीं हुआ है, ऐसा पुरुष भविष्य में भी कैसे सन्तुष्ट हो सकेगा ?

"स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।" ३०

भावार्थः—जिसकी लोभ-लालसा विशाल होती है, वह दरिद्र ही बना रहता है।

"तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।" ३१

—भर्तृहरि

भावार्थः—तृष्णा-लालसा तो वृद्ध अथवा कमजोर नहीं हुई है, परन्तु आश्चर्य के साथ दुःख है कि तृष्णा की आराधना करते-करते हम खुद ही वृद्ध और शक्तिहीन हो गये हैं।

"वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुंचत्याशापिंडम्।" ३२

(स्वामी शङ्कराचार्य)

भावार्थः—पुरुष वृद्ध हो जाने पर भी और लकड़ी का सहारा लेकर चलते रहने पर भी तृष्णा के पिंड से छुटकारा प्राप्त करना नहीं चाहता है। हृदय में तृष्णा की ज्वाला तो जलती ही रहती है।

"को वा दरिद्रो हि ? विशाल-तृष्णः।" ३३

भावार्थः—इस संसार में वास्तव में दरिद्र कौन है ? उत्तर—जो विशाल तृष्णा से ग्रसित है।

"तृषार्त्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः।" ३४

(हितोपदेश)

भावार्थ—तृष्णा से पीड़ित पुरुष इसलोक में भी और परलोक में भी सर्वत्र दुःख ही दुःख पाता है।

"आशैव राक्षसी पुंसां।" ३५

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—आशा तृष्णा ही पुरुषों के लिये एक नृशंस राक्षसी है।

"आशैव विषमंजरी।" ३६

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—आशा-तृष्णा ही विष-वृक्ष की ऐसी घातक कोंपल है, जिसके पैदा होने वाले कटु फल अत्यन्त पीड़ाकारक और दुर्गति के देने वाले हैं।

"स्पृहावन्तो विलोक्यन्ते लघवस्तृणतूलवत्।" ३७

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—तृष्णा-लालसा से ग्रसित पुरुष घास के समान अथवा रुई के समान तुच्छ और हल्के तथा क्षुद्र दिखाई देते हैं।

"संगात् भवन्ति असन्तोऽपि रागद्वेषादयो द्विषः।" ३८

(योग शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थः—तृष्णा-लालसा की आसक्ति से राग द्वेष रूप शत्रु अपने आप ही हृदय में उत्पन्न हो जाया करते हैं।

"कोऽर्थी गतो गौरवम् ?" ३९

भावार्थः—ऐसा कौन है, जो कि लालची होकर भी सम्मान को प्राप्त हुआ हो ?

"आशा दासी कृता येन तस्य दास्ये जगत्-त्रयी।" ४०

(श्राद्ध-विधि)

भावार्थः—जिसने आशा को अपनी दासी बना करके अपने आपको निस्पृह बना लिया है, उसकी सेवा में तीनों जगत् दास बन कर आज्ञा-पालन के लिए तैयार रहते हैं।

"धिगाशा सर्वदोषभूः।" ४१

भावार्थः—सभी दोषों को और पापों को उत्पन्न करने वाली इस आशा-तृष्णा को अनन्त बार धिक्कार है।

"धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति।" ४२

(हितोपदेश)

भावार्थः—समय के अनुसार सभी वस्तुएँ जीर्ण-शीर्ण और नष्ट हो जाया करती हैं, परन्तु धन संग्रह करने की आशा और जीवित रहने की आशा ज्यों-ज्यों समय जाता है, त्यों त्यों नित्य नवीन और तरुण होती रहती हैं। इस प्रकार तृष्णा-लालसा कभी वृद्ध नहीं हुआ करती है।

"आशा नाम मनुष्याणां काचिदाश्चर्यशृङ्खला।" ४३

भावार्थः—आशा-तृष्णा मनुष्यों के लिये एक ऐसी आश्चर्य-जनक सांकल है, कि जिससे बन्धा हुआ होने पर तो खूब इधर-उधर का परिश्रम करता है, और इससे मुक्त हुआ स्थिर हो जाता है, परम शान्त बन जाता है।

"बद्धो हि को? यो विषयानुरागी।" ४४

भावार्थः—संसार रूप कैदखाने में कौन बंधा हुआ है? उत्तर-जो विषयों से प्रेम करता हुआ उनमें आसक्त है।

"तृष्णैका निरुपद्रवा।" ४५

भावार्थः—विश्व में सभी समय आने पर रोग-ग्रस्त और विघ्न-ग्रस्त हुआ ही करते हैं, परन्तु तृष्णा ही एक ऐसी दुष्ट-वृत्ति है, जो कि विघ्न-ग्रस्त नहीं हुआ करती है।

"तृष्णैका तरुणायते।" ४६

—भर्तृहरि

भावार्थः—विश्व में समय आने पर सभी वृद्ध और शक्तिहीन

हुआ ही करते हैं, परन्तु तृष्णा दिन प्रतिदिन तरुण ही होती जाती है।

"स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।" ४७

—भर्तृहरि

भावार्थः—*निश्चय-पूर्वक उसे ही दरिद्र-धनहीन-समझना चाहिये, जिसकी तृष्णा कभी भी शांत होने वाली नहीं हो।*

"आशा येषाम् दासी तेषाम् दासायते लोकः।" ४८

भावार्थः—*जिन्होंने आशा को अपनी दासी बना ली है, उनके लिये सारा संसार ही दास रूप बन जाता है। सारांश यह है कि जो आशा-तृष्णा से रहित हो गये हैं, विश्व उन्हें ही महान् मानता है।*

"परस्पृहा महादुःखम्।" ४९

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—*दूसरे के प्रति अपनी आशा की पूर्ति किये जाने की धारणा रखना, यही महा दुःख है।*

"तृष्णावधिम् को गतः?" ५०

भावार्थः—*तृष्णा का अन्त कब और कहाँ हुआ है? तृष्णा के अनुसार पदार्थों की प्राप्ति किसको और कब हुई है?*

"निस्पृहत्वं महासुखम्।" ५१

(ज्ञान-सार)

भावार्थः—आशा-तृष्णा का त्याग ही सर्वोत्तम और महान् सुख है।

"नास्ति तृष्णा समो व्याधिः।" ५२

भावार्थः—तृष्णा-लालसा के बराबर कोई दूसरा रोग नहीं है।

"तृष्णाऽन्धा नैव पश्यंति हितं वा यदि वाऽहितम्।" ५३

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—तृष्णा-लोभ में अन्धे हुए पुरुष अपनी आत्मा का हिताहित भी नहीं देख सकते हैं।

"आशैव जीर्णमदिरा।" ५४

(योगशास्त्र)

भावार्थः—जैसे मदिरा-शराब ज्यों-ज्यों पुराना पड़ता है, त्यों-त्यों अधिकाधिक नशा लाने वाला बनता है, वैसे ही यह आशा-तृष्णा भी ज्यों-ज्यों चित्त में अधिकाधिक घर करती जाती है, वैसे ही अधिकाधिक घबराहट से परिपूर्ण अशांति पैदा करती रहती है।

"व्यामुह्यति मनः क्षिप्रं धनाशाव्यालविप्लुतम्।" ५५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—धन-सम्पत्ति सम्बन्धी तृष्णा रूप सर्पिणी द्वारा काट लेने पर मन जल्दी से जल्दी याने तत्काल ही विमोहित हो जाता है, भान भूल जाता है। अपने मूल स्वरूप को ही खो बैठता है।

(४७)

मद्य-मांस-निंदा

"मधुपाने मतिभ्रंशो नराणाम् जायते खलु ।" १

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—*मदिरापान करने से निश्चय ही मनुष्यों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाया करती है ।*

"मदिरापानमात्रेण बुद्धिर्नश्यति मूलतः ।" २

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*शराब पीने से सम्पूर्ण बुद्धि का नाश हो जाता है।*

"मद्यमत्तो न जानाति स्वजनान्यजनानि च ।" ३

भावार्थः—*मदिरा में बेभान हुआ पुरुष अपने आदमियों को और पराये आदमियों को नहीं पहिचानता है । सभी के साथ असभ्यता का व्यवहार करने लगता है ।*

"सन्निपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत् ।" ४

भावार्थः—*शराब सन्निपात रोग के सभी लक्षणों को बतला देता है ।*

"मद्यपाः किं न जल्पन्ति ?" ५

भावार्थः—शराब पीने वाले क्या नहीं बका करते हैं ?

"अभक्ष्याणि न भक्ष्याणि कंदमूलानि भारत।" ६

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—हे भारत ! कन्द मूल अभक्ष्य हैं, अतएव इन्हें नहीं खाना चाहिये।

"नरकाध्वनि पाथेयं कोऽश्नयात् पिशितं सुधीः ? ७

भावार्थः—ऐसा कौन बुद्धिमान् है ? जो कि नरक के मार्ग में सहायक-पदार्थ रूप मांस को खाना चाहेगा ?

"मांसास्वादिषु देहिषु प्रणयिता व्यर्था लतेवाग्निषु।" ८

(कस्तूरी-प्रकरण)

भावार्थः—मांस भक्षण करने वाले प्राणियों से मित्रता करना अग्नि में बेल-लता रोपने के समान व्यर्थ है।

"न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।" ९

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—जीव-हिंसा किसी भी दशा में स्वर्ग देने वाली नहीं हो सकती है, अतएव मांस-भक्षण का परित्याग कर देना चाहिये।

"हत्वा जन्तून् भवेन्मांसं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।" १०

(इतिहास समुच्चय)

भावार्थः—जीव-हिंसा करने पर ही मांस की उत्पत्ति हुआ करती है, अतएव मांस-भक्षण का परित्याग ही कर देना चाहिये।

"प्रसमीक्ष्य विवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्।" ११

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—जीव-हिंसा में ही मांस की उत्पत्ति रही हुई है, ऐसा विचार करके जीवन-पर्यंत के लिये मांस भक्षण जैसे जघन्य कार्य से दूर ही रहना चाहिये।

"मांसभुग् मरणं प्राप्य व्यथां सहते दुर्गतेः।" १२

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—मांसाहारी मर करके नारकीय यातना भोगता है। दुर्गति के भयंकर कष्टों को सहता है।

'श्रीश्रेणिकेनापि पलाशनाच्च प्राप्ता हि पीड़ा नरकस्य तीव्रा।' १३

(हिंगुल प्रकरण)

भावार्थः—श्रेणिक राजा ने भी मिथ्यात्व-दशा में मांस-भक्षण किया, जिसके परिणाम स्वरूप नरक के तीव्र दुःखों को भोगना पड़ रहा है।

"अमांसादा नीरोगाश्च बलवन्तः सुखान्विताः।" १४

(इतिहास-समुच्चय)

भावार्थः—जो मांस भक्षण नहीं करते हैं, वे रोगरहित, बलवान् और सुखी होते हैं।

"मांसं महादुःखमनेकवारं ददाति जग्धं मनसापि पुंसां।" १५

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—मांस खाने का केवल मन से विचार करने मात्र से ही मनुष्यों को—प्राणियों को—अनेक वार महान् दुखों को भोगना पड़ता है। ऐसी दशा में मांस खाने वालों की तो कैसी दुर्गति होती होगी?

पाप-स्थानक-जीवन-दुर्गुण

(कलह)

"संक्लेशपरिणामेन जीवो दुखस्य भाजनम् ।" १

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—कषाय वाली विचार-धारा से ही प्राणी को घोर दुःख का भागी बनना पड़ता है।

"कलहान्तानि हर्म्याणि ।" २

भावार्थः—लड़ाई-झगड़े का अंतिम परिणाम घर का सर्वनाश हो जाना ही है।

"नश्यन्ति ज्ञातयः प्रायः कलहादितरेतरम् ।" ३

(विवेक विलास)

भावार्थः—परस्पर में लड़ाई-झगड़ा करने से जातियां भी नष्ट भ्रष्ट हो जाया करती हैं।

"उभयोर्दुखकृत् क्लेशो यथोष्णरेणुका क्षितौ ।" ४

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—जैसे पृथ्वी पर रही हुई गरम बालू-रेत खुद भी तपती रहती है और दूसरों को भी कष्ट पहुंचाती है, वैसे ही लड़ाई-झगडा करने वाला भी दुःखी होता है और अन्य प्राणियों को भी दुखी करता है।

"क्लेशलेशोऽत्र तद्वच्च वृद्धितस्तनुदाहकः।" ५

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—लडाई-झगडा करने की वृत्ति प्रारंभ में अल्प होने पर भी चिनगारी की तरह वृद्धि पाकर शरीर को जलाने वाली ही होती है। कलह से निश्चित रूप से अपयश और पाप ही मिलता है।

"अन्यायोऽपयशः सूते तद्वत् क्लेशश्च किल्विषम्।" ६

(हिंगुल प्रकरण)

भावार्थः—जैसे अन्याय करने से अपयश की प्राप्ति होती है, वैसे ही लड़ाई-झगड़ा करने से पाप की प्राप्ति होती है।
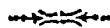
मिथ्यात्व

"मिथ्यात्वं परमं तमः।" ७

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—मिथ्यात्व ही, विपरीत श्रद्धा ही, घोर अन्धकार है।

"मिथ्यात्वं परम् बीजं संसारस्य दुरात्मनः। ८

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—पाप रूप वाले इस संसार का निकृष्ट बीज केवल मिथ्यात्व ही है।

'तनोतु योगं धृतचित्तविस्तारं तथापि मिथ्यात्वयुतो न मुच्यते।'९

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—योग-क्रियाएँ चित्त में धैर्य-गुण का विस्तार कर सकती हैं, किन्तु वे मिथ्यात्व नामक दुर्गुण का विनाश नहीं कर सकती हैं।

"मिथ्यात्वशल्यमुन्मूल्य स्वात्मानं निर्मलीकुरु।" १०

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—मिथ्यात्व रूप शल्य को जड़-मूल से उखाड़ कर अपनी आत्मा को पवित्र बनाना चाहिये।

"येन केनोद्यमेनैव मिथ्यात्वशल्यमुद्धरेत्।" ११

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—हर प्रकार का पराक्रम करके और जैसे भी हो सके उस तरह से मिथ्यात्व रूप शल्य से अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिये।

"मिथ्यात्व-त्यागतः शुद्धं सम्यक्त्वं जायतेऽङ्गिनाम्।" १२

(अध्यात्मसार)

भावार्थः—मिथ्यात्व का सर्वथा ही परित्याग कर देने से शुद्ध सम्यक्त्व रूप सुन्दर रत्न की प्राप्ति प्राणियों को होती है।

"नरस्य मिथ्यात्वयुतं न जीवितम् ।" १३

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—मानव-जीवन में मिथ्यात्व को स्थान देना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता है ।

"अतीवरुष्टो न च शत्रुरुद्धतो

यमुग्रमिथ्यात्वरिपुः शरीरिणाम् ।" १४

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—अत्यन्त रुष्ट शत्रु भी इतना अनर्थ नहीं करता है, जितना कि उग्र मिथ्यात्व रूप शत्रु जीवों का अनर्थ करता है, अथवा कर सकता है ।
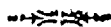
माया—मृषावाद

"कृतघ्नश्च महाभारो भारो विश्वासघातकः ।" १५

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—विश्वास घाती तो भार रूप है ही, परन्तु कृतघ्न पुरुष तो महाभार रूप ही होता है ।

"मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् मायामृषा च सोच्यते ।" १६

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—मन में कुछ और है तथा वचन द्वारा कुछ और ही बोल रहे हैं, इस प्रकार से परस्पर में विपरीत एवं असत् प्रवृत्ति को ही "माया-मृषा" दोष कहते हैं ।

"खड्गधारां मधुलिप्तां विद्धि मायामृषां ततः ।" १७

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—शहद से लिपटी हुई तलवार की धार उस शहद को चाटने वाले की जीभ को ही काट देती है, वैसे ही माया मृषावाद को भी जानो ।

"अलम् मायाप्रपंचेन लोकद्वयविरोधिना ।" १८

- शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—इस लोक में और परलोक में भी अनिष्ट संयोगों को प्राप्त कराने वाले माया प्रपंच से विश्रांति लो ।

"भुवनं वंचयमाना वंचयन्ते स्वमेव हि ।" १९

(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—संसार को ठगते हुए अज्ञानी प्राणी अपने आपको ही ठगा करते हैं। अर्थात् स्वयम् ही अपनी आत्मा को घोर हानि पहुँचाते हैं ।

"फलं यथेन्द्रवारुण्याः कटु मायामृषावचः ।" २०

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थ—इन्द्र वारुणी नामक लता के फल देखने में तो सुन्दर होते हैं, परन्तु परिणाम से प्राण-घातक और कडुए होते हैं, वैसे ही माया-मृषा वाद के फल को भी समझ लेना चाहिये ।

चिन्ता

"चिन्ता जरा मनुष्याणाम् ।" २१

भावार्थः—*चिन्ता सचमुच में मनुष्यों के लिये बुढापा ही है ।*

"चिन्तासमं नास्ति शरीर-शोषणम् ।" २२

भावार्थः—*चिन्ता के समान शरीर को सुखा देने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है ।*

"उत्तमा ह्यात्मचिंता च ।" २३

(उपदेश प्रासाद)

भावार्थः—*आत्मा का चिन्तन-मनन ही सर्वोत्तम चिन्ता है ।*

"मोहचिंता च मध्यमा ।" २४

(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—*राग-भावना संबंधी चिंता मध्यम श्रेणी की चिंता है ।*

"को वा ज्वरः प्राणभृतां हि ? चिंता ।" २५

भावार्थः—*प्राणियों के लिये ज्वर-रहित दशा में भी ज्वर समान कौन रहता है ? उत्तर—आर्त्त-रौद्र ध्यान संबंधी चिन्ता ।*

"वृथा कथं खिद्यसि बालबुद्धे !
कुरु स्वकार्यं त्यज सर्वमन्यत् ।" २६

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—हे छोटी बुद्धि वाले ! व्यर्थ ही क्यों चिंता कर रहा है ? पराक्रम कर और अन्य सभी झंझटों को छोड़ दे ।

"भविष्यं नैव चिंतयेत् ।" २७

भावार्थः—भविष्य की मनगढ़न्त कल्पनाओं में मत उलझो ।

"चिन्ताभल्लिशतैर्विभिद्य हृदयं ग्राह्यो विवेको मणिः ।" २८

(संवेग द्रुम कंदली)

भावार्थः—विभिन्न कल्पना रूप सैकड़ों भालों द्वारा हृदय को भेद करके अर्थात् चिन्तन-मनन द्वारा हृदय में प्रविष्ट होकर के विवेक रूप रत्न को ग्रहण करना चाहिये ।

प्रमाद

"आलस्यं हि मनुष्याणाम् शरीरस्थो महारिपुः ।" २६

भावार्थः—शरीर में रहा हुआ आलस्य ही मनुष्यों का सबसे बड़ा शत्रु है ।

"जीवन्मृतो कस्तु ? निरुद्यमो यः ।" ३०

भावार्थः—जीवित भी मरा हुआ कौन है ? उत्तर—जो आलसी है । जो उद्यम नहीं करता है ।

"प्रमादो नरकायनम् ।" ३१

(विक्रम चरित्र)

भावार्थः—आलस्य ही नरक का घर है।

"धिग्जीवितं चोद्यमवर्जितस्य।" ३२

भावार्थः—आलसी के जीवन को धिक्कार है।

"धिग्जीवितं व्यर्थमनोरथस्य।" ३३

भावार्थः—किसी भी प्रकार का परिश्रम नहीं करने वाले किन्तु केवल विचार ही विचार करने वाले पुरुष के जीवन को धिक्कार है।

"न युज्यते तद्विदुषः प्रमादोऽत्र मनागपि।" ३४

(त्रिषष्ठि पर्व)

भावार्थः—जीवित-अवस्था में विवेकशील समझदार के लिये जरा भी प्रमाद करना उचित नहीं है।

"इतः कोन्वस्ति मूढात्मा ? यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति।" ३५

(विवेक-चूड़ामणि)

भावार्थः—यहाँ पर निश्चय ही कौन महामूर्ख है ? उत्तर—जो अपने हितकारी काम में भी प्रमाद करता है।

"आलस्योपहता विद्या।" ३६

भावार्थः—आलस्य से ही विद्या नष्ट हो जाया करती है।

"दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।" ३७

भावार्थः—भाग्य से ही वस्तु की प्राप्ति हुआ करती है, ऐसा केवल कायर पुरुष—मूर्ख मनुष्य ही—बोला करते हैं।

मोह

"मोहं च परमं व्याधिम् ।" ३८

भावार्थ—मोह ही—आसक्ति अवस्था ही—आत्मा के लिये कठिन से कठिन और दुस्साध्य रोग है ।

"नास्ति मोहसमो रिपुः ।" ३९

भावार्थः—मोह के समान दूसरा कोई बड़ा शत्रु नहीं है ।

"अश्नुते स हि कल्याणं व्यसने यो न मुह्यति ।" ४०

भावार्थ—वह प्राणी परम कल्याण का भागी है, जो कि किसी भी प्रकार के व्यसन में नहीं फंसता है ।

"ममत्वभावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययम् ।" ४१

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो मोह माया से परे हैं, अथवा जो ममत्व भावना से मुक्त है, वही शाश्वत्-नित्य-अक्षय स्थान को प्राप्त करता है ।

"सोऽयं मोहो हन्त दुरन्तः ।" ४२

(सूक्त-मुक्तावली)

भावार्थः—अहो ! अत्यंत आश्चर्य के साथ खेद है कि मोह कितना पाप से परिपूर्ण है ।

"नो जानामि तथापि कः पुनरसौ मोहस्य हेतुर्मम ।" ४३

(सूक्त-मुक्तावली)

भावार्थः—यह मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि बार बार किस कारण से मुझे मोह प्राप्त होता रहता है ?

"पित्वा मोहमयीम् प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ।" ४४

भावार्थः—अहो ! अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि मोह एवं प्रमाद रूप शराब को पी करके सारा संसार ही उन्मत्त हो गया है । खेद है कि विश्व की प्रवृति भोगों की ओर ही है ।

"अनिष्टमूलानि शोकानि ।" ४५

भावार्थः—शोक करना, आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान करना, इनसे अनिष्ट परिस्थितियाँ ही उत्पन्न हुआ करती हैं ।

'सोऽयं-मोहमहाग्रहस्य महिमा मार्गादतीतो गिराम् ।' ४६

भावार्थः—यह वही मोह रूप महान् ग्रह है, जिसकी महिमा का वर्णन वाणी द्वारा अगम्य है । अर्थात् मोह की जितनी भी निंदा की जाय, उतनी ही थोडी है । यह महा दुष्ट ग्रह अति विचित्र है ।

'बलादसौ मोहरिपुर्जनानां ज्ञानं विवेकं च निराकरोति ।'४७

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—यह मोह रूप शत्रु मनुष्यों के ज्ञान को और विवेक को पूरी तरह से नष्ट कर देता है । मोह के बराबर आत्मा का प्रबलतम शत्रु दूसरा कोई नहीं है ।

(४६)

पाप-अनिष्ट वृत्ति

"पापप्रभावान्नरकं प्रयाति ।" १

भावार्थः—प्राणी पाप कार्य करने पर ही नरक में जाता है ।

"पापी पापेन पच्यते ।" २

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—पापी अपने पाप से ही व्यथित होता रहता है ।

"छाद्यमान मपि प्रायः कुकर्म स्फुटति स्वयम् ।" ३

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—कुकर्म को कितना भी छिपाया जाय, तो भी वह अपने आप प्रकट हो जाया करता है ।

"अधार्म्यं नरदूषणम् ।" ४

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—अधार्मिकता याने दुष्प्रवृत्ति ही मनुष्य का दूषण है । पाप-प्रवृत्ति ही मानव-जीवन के लिये कलंक है ।

"कृत्वा पापं न गूहेत, गूहमानं विवर्धते।" ५

(शंख स्मृति)

भावार्थः—पाप करके उसको मत छिपाओ, क्योंकि छिपाया हुआ पाप बढता ही रहता है।

"सहसा हि कृतं पापं कथं मा भूद्विपत्तये ?" ६

भावार्थः—विना विचारे किया हुआ पाप विपत्ति के लिये कैसे कारणभूत नही होता है ? अर्थात् विचार पूर्वक किया हुआ पाप अथवा बिना विचारे किया हुआ पाप विपत्ति को अवश्यमेव पैदा करता ही है।

"जीवन्तोऽपि मृतास्ते वै ये नराः पापकारिणः।" ७

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो मनुष्य पाप-प्रवृत्ति में ही लगे रहते हैं, वे जीवित होते हुए भी मरे हुए ही हैं। ऐसे व्यक्तियों का तो मरना ही श्रयस्कर है।

"सज्जनो दुर्जनः स्यात् पापाद्विपरीतं फलं त्विह।" ८

(द्विगुल-प्रकरण)

भावार्थः—पाप का फल तो सदा ही उल्टा है। पाप करने से सज्जन पुरुष भी दुर्जन बन जाया करता है।

"भ्रातरो दुःखदातारः पापाद्भवन्ति सर्वदा।" ९

(द्विगुल प्रकरण)

भावार्थः—पाप का इतना कटु फल होता है कि सहोदर भाई भी सदा के लिये दुःख के देने वाले हो जाया करते हैं।

"कुकर्मनिहतात्मानः पापाः सर्वत्र शंकिताः।" १०

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—दुराचार सेवन से नष्ट हो गई है आत्मशक्ति जिनकी ऐसे पापी पुरुष सदा ही शंकाशील रहते हैं, अर्थात् उन्हें दुःख और भय घेरे ही रहते हैं।

"खंडीकृतोऽपि पापात्मा पापान्नैव निवर्तते।" ११

(सूक्त-रत्नावलि)

भावार्थः—नानाविध फटकार देने पर भी पापी पाप से विरक्त नहीं होता है। निरन्तर पाप-प्रवृत्ति करने से पापी ढीठ और लज्जाहीन हो जाता है।

"सावद्यतो नरकमेव भविष्यति ते।" १२

(अध्यात्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—हे आत्मा! तेरी पाप-प्रवृत्ति से तो तुझे नरक की ही प्राप्ति होगी।

"अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम्।" १३

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—प्राणियों को दुःख का जो संयोग हुआ करता है, उसका मूल कारण पूर्व कृत पाप-कर्म ही है।

पैशुन्य-चुगली

"सर्वत्र प्रविधेहि तत् प्रिय सखे ! पैशुन्य-शून्यं मनः ।" १४

(कस्तूरी-प्रकरण)

भावार्थः—*हे प्रिय मित्र ! सभी स्थानों पर वही पूजा का पात्र होता है, जिसका मन निंदा और चुगली से शून्य होता है ।*

"वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचिः ।" १५

भावार्थः—*प्राणों का परित्याग कर देना श्रेष्ठ है, परन्तु निंदा-चुगली वाले वाक्यों में रस लेना कदापि हितकर नहीं है ।*

"पैशुन्यं केवलं चित्ते वसेद्यस्याऽयशो भुवि ।" १६

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—*जिसके चित्त में सदा ही चुगली की प्रवृत्ति जमी हुई है; उसकी पृथ्वी पर अपकीर्त्ति ही होती है ।*

"स्फूर्जत्कीर्त्तिभरो नरं पिशुनतात्यागादुपागच्छति ।" १७

(कस्तूरी-प्रकरण)

भावार्थः—*निंदा एवं चुगली का सर्वथा ही परित्याग कर देने से मनुष्य को स्थायी तथा विस्तृत यश-कीर्ति की प्राप्ति होती है ।*

निंदा

"सर्वेषु वर्णेषु निन्दकश्चाण्डालः ।" १८

भावार्थः—किसी भी वर्ण का हो, निंदा करने वाला सदा चांडाल ही है।

"कर्मचण्डालो निन्दकः।" १६

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—उत्तम कुल में जन्म लेने पर भी निंदा करने वाला अपनी नीच प्रवृत्ति के कारण से चांडाल ही है।

"सर्वचांडाल निन्दकः।" २०

(महाभारत पर्व १२ वाँ)

भावार्थः—निंदा करने वाला सबसे हीन कोटि का चांडाल होता है।

'जीवन्तु मे शत्रुगणाश्च सर्वे येषां प्रतापेन विचक्षणोऽहम्।' २१

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—मेरे निन्दक-शत्रु सभी जीवित रहें, जिनके प्रताप से मैं सदा सतर्क और दूरदर्शी बन कर रहता हूँ।

"अपवादं न कुर्वीत तस्य तीर्थफलं गृहे।" २२

(वेद व्यास स्मृति)

भावार्थः—जो किसी की भी निंदा नहीं करता है, उसके लिये घर पर रहते हुए भी तीर्थ-यात्रा के बराबर फल की प्राप्ति हो जाती है।

"लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति।" २३

(श्राद्ध प्रतिक्रमण)

भावार्थः—लोभी, धीवर और निंदक-चुगली खोर तीनों ही संसार में अन्य प्राणियों के साथ विना कारण के ही शत्रुता करने वाले होते हैं।

"न विना परिवादेन रमते दुर्जनो जनः।" २४

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—दुष्ट पुरुष निंदा किये विना आनन्द का अनुभव नहीं किया करता है।

"सदा मूकत्वमासेव्यं वाच्यमानेऽन्यमर्माणि।" २५

(विवेक विलास)

भावार्थः—अन्य पुरुषों के मर्म रूप बातों को कहने में सदा ही मौन धारण किये हुए रहना चाहिये।

"परपरिभव-परिवादात्मोत्कर्षाच्च बध्यते कर्मः।" २६

(प्रशम रति)

भावार्थः—दूसरों का अपमान करने से, निंदा करने से और अपनी प्रशंसा करने से नीच कर्मों का चयन होता है।

"मूर्खरसना परापवादगूथं समुद्धरेत्।" २७

(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—मूर्ख मनुष्य की जीभ दूसरों की निंदा करने रूप मल को ही धारण करती है।

"संति लोचनलक्षाणि परदोषविलोकने।" २८

(महाभारत विराट पर्व)

भावार्थः—दूसरों के अवगुण देखने में ही लाखों पुरुषों की आँखें लगी रहती हैं।

"द्रष्टुं स्वदोषान् लोकानाम् नैकमप्यस्ति लोचनम्।" २६
(महाभारत विराट पर्व)

भावार्थः—अपने अवगुण देखने के लिये जनता के पास एक भी आँख नहीं है। अर्थात् अपने दोष कोई भी नहीं देखना चाहता है।

"परं परापवादं च जं जप्यते न तद् वरम्।" ३०
(हिंगुल प्रकरण)

भावार्थः—याद रक्खो—दूसरों की निंदा करना कदापि हितकर नहीं है।

"परापवादशस्यम् चरंतीम् गाम् निवारय।" ३१
(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—दूसरों की निंदा रूप घास को चरने वाली इस जीभ रूप गाय को अपने वश में रक्खो।

(५०)

क्रोध-क्लेश की जड़

"कषायमुक्तः परमः स योगी ।" १

(अध्यात्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—जो कषाय रहित है, वही सर्व श्रेष्ठ योगी है ।

"क्रोधस्येत्थमरे ! रिपोः क्षणमपि स्थातुं कथं दीयते ?" २

(संवेगद्रुम कंदली)

भावार्थः—अरे ! क्रोध रूप शत्रु को क्षण मात्र के लिये भी कैसे स्थान दिया जा सकता है ?

"क्रोधः संसारबंधनम् ।" ३

भावार्थः—क्रोध ही संसार में बंधे रहने का मूल कारण है ।

"क्रोधः शमसुखार्गला ।" ४

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—क्रोध ही शांति और सुख की प्राप्ति में रुकावट करने वाला है ।

"धर्मनाशो भवेत् कोपात् ।" ५

(मानसो)

भावार्थः—क्रोध करने से धर्म का नाश होता है ।

"धर्मक्षयकरः क्रोधः ।" ६

भावार्थः—क्रोध ही धर्म का नाश करने वाला है ।

क्रोधो मूलमनर्थानाम् ।" ७

भावार्थः—क्रोध ही अनर्थों की जड़ है ।

"क्रोधाद् भवति संमोहः ।" ८

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—क्रोध से मोह की उत्पत्ति होती है ।

"मुनीनाम् कोपश्चाण्डालः ।" ९

(महाभारत पर्व १२ वाँ)

भावार्थः—मुनियों का क्रोध चाडाल है । अर्थात् जो मुनि क्रोध करता है, वह चाडाल है ।

"नास्ति क्रोधसमो वह्निः ।" १०

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—क्रोध के बराबर दूसरी अग्नि नहीं है ।

"रोपसदृशो न हि शत्रुरस्ति" ११

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—रोष याने क्रोध के समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है।

"सन्निपातज्वरेणैव क्रोधेन व्याकुलो नरः।" १२

भावार्थः—जैसे सन्निपात ज्वर में मनुष्य बड़बड़ाया करता है, और बेचैन रहता है, उसी प्रकार से क्रोध करने पर क्रोधी मनुष्य भी व्याकुल रहता है।

"वैरानुषंगजनकः क्रोधः।" १३

(प्रशम रति)

भावार्थः—क्रोध शत्रुता की परंपरा को ही उत्पन्न किया करता है।

"क्रोधेन वर्धते कर्म।" १४

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—क्रोध चिकने कर्मों को ही बढ़ाता है।

"नित्यं क्रोधात् तपो रक्षेत्।" १५

(शांति-पर्व)

भावार्थः—तपस्वी सदा ही अपने तप की क्रोध से रक्षा करता रहे।

"यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः।" १६

भावार्थः—क्रोध यश का और तप का महान् घातक है।

"स क्षान्तिक्षुरिकाधरेण हृदय! क्रोधो विजेयस्त्वया ।" १७
(संवेग द्रुम कंदली)

भावार्थः—*हे हृदय! क्षमा रूप छुरी धारण करके तू उस क्रोध रूप शत्रु को जीत ले।*

"क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणाम् ।" १८
(माघ-कवि)

भावार्थः—*मनुष्यों का सर्वोपरि शत्रु क्रोध ही है।*

"देहं दहति कोपाऽग्निः ।" १९
(तत्त्वामृत)

भावार्थ—*क्रोध रूप अग्नि सदैव शरीर को जलाती ही रहती है।*

"(वशीकुरु) क्रुद्धमंजलिकर्मणा ।" २०

भावार्थः—*हाथ जोड कर नम्रता पूर्वक क्रोधी को वश में करो।*

"क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम् ।" २१

भावार्थः—*भाग्य द्वारा क्रोध करने पर याने भाग्य विपरीत हो जाने पर मित्र भी शत्रु हो जाया करता है।*

"जितक्रोधेन सर्वं हि जगदेतद्विजीयते ।" २२

भावार्थः—*एक क्रोध के जीत लेने से ही सारा विश्व जीत लिया जाता है। जिसने क्रोध को जीत लिया है, उसने क्रोध को जीत लिया है, उसने सारे संसार को जीत लिया है।*

"क्रोधः पुनः क्षयते क्षणेनापि पूर्वकोट्यार्जितं तपः ।" २३

भावार्थः—क्रोध करोड पूर्व जितने समय में संचित तप को भी क्षण मात्र में ही नाश कर देता है।

"अपकारिणि चेत् कोपः कोपे कोपः कथं न ते ?" २४
(पाराशर-संहिता)

भावार्थः—अपकार करने वाले पर यदि क्रोध उत्पन्न होता है, तो बतलाओ कि तुम्हारा अपकार करने वाले क्रोध पर ही तुम्हें क्रोध क्यों नहीं उत्पन्न होता है ?

"भस्मीभवति रोषेण पुंसां धर्मात्मकं वपुः ।" २५
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—क्रोध करने से पुरुषों का धार्मिक-प्रवृत्ति रूप शरीर नष्ट हो जाया करता है। अर्थात् क्रोध से धर्म नष्ट होता है।

"किं न पश्यसि दोषमसीपाम् तापमत्र नरकं च परत्र ।" २६
(अध्यात्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—क्या तू कषायों के इन दोषों को नहीं देखता है ? कषाय यहाँ पर भी दुःख देते हैं और मरने पर आत्मा को नरक में ले जाते हैं।

"कषायविषयाक्रांतो वितनोत्यशुभं पुनः ।" २७
(योग शास्त्र)

भावार्थः—कषाय में और विषयों में फंसा हुआ प्राणी वार वार अशुभ कर्मों का ही संचय करता रहता है।

"कषायविजये शूरास्ते शूरा गदिता बुधैः।" २८
(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो कषायों को जीतने में वीर हैं; वे ही पंडितों द्वारा 'वास्तविक वीर' कहे गये हैं।

"कषायवशगो जीवः कर्म बध्नाति दारुणम्।" २६
(तत्त्वामृत)

भावार्थः—कषाय में अनुरक्त प्राणी भयंकर कर्मों का बंधन किया करता है।

"यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किं नु कोपेन।" ३०
(कमल-संयम)

भावार्थः—यदि घटना विशेष सत्य ही है, तो उसके प्रति क्रोध करने से क्या लाभ है ? और यदि वह झूठ रूप ही है, तो फिर उसके प्रति क्रोध करने से क्या तात्पर्य है ?

"क्षान्त्या हन्त विलक्षताम् निजरिपुः क्रोधो हठान्नीयताम्।" ३१
(संवेगद्रुम कन्दली)

भावार्थः—क्षमा द्वारा अपने क्रोध शत्रु के स्वरूप को पहिचानो और पूरी शक्ति के साथ उसका विनाश कर दो।

स्वपरस्यापकाराय क्रोधः शत्रुः शरीरिणाम्।" ३२
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—प्राणियों का वास्तविक शत्रु क्रोध ही है, जो कि अपना और दूसरे का अपकार करने के लिये ही उत्पन्न हुआ करता है। क्रोध एकान्त रूप से अहित करने वाला ही है।

मान जीवन-नाशक दुर्गुण

"लुप्यते मानतः पुंसां विवेकामललोचनम् ।" १

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—अहंकार करने से मनुष्य का विवेक रूप निर्मल नेत्र नष्ट हो जाया करता हैं ।

"अहंकारो हि लोकानाम् नाशाय न तु वृद्धये ।" २

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—अहंकार से केवल जनता के हितों का विनाश ही होता है; न कि उन्नति ।

"मानेन सर्वजन-निन्दित-वेशरूपः ।" ३

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—अहंकार से सभी मनुष्यों द्वारा निंदा का पात्र ही बनना पड़ता है । अर्थात् अहंकारी की चारों ओर से निंदा ही होती है ।

"इन्द्रोऽपि लघुताम् याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ।" ४

भावार्थः—अपने गुणों का बयान अपने ही मुख से करने पर इन्द्र जैसा महापुरुष भी तुच्छता को प्राप्त हो जाया करता है।

"अगाधजलसंचारी न गर्वम् याति रोहितः।" ५

भावार्थः—गहरे जल के अंदर विचरण करने वाली रोहित नामक मछली अपनी सुखद स्थिति का जरा भी गर्व नही किया करती है।

"विषभारसहस्रेण न गर्वम् याति वासुकिः।" ६

(हितोपदेश)

भावार्थः—वासुकी नामक सर्पराज महान् विष का धारक होता है; फिर भी वह अपनी शक्ति का अहंकार नहीं किया करता है।

"पीत्वा कर्दम-पानीयं भेको वटवटायते।" ७

(भामिनी-विलास)

भावार्थ.—कीचड़ से मलिन हुआ पानी पीकर मेंढक प्रसन्नता से मस्त होकर टर्र टर्र करना प्रारंभ कर देता है। विवेकहीन और मूर्खों की अहंकार के कारण से ऐसी ही दशा हुआ करती है।

"अंगुष्ठोदकमात्रेण शफरी फर्फरायते।" ८

भावार्थः—अंगूठा डूबे इतने से पानी में मछली फड़फड़ाने लगती है। अर्थात् सामान्य अवस्था में भी साधारण पुरुष फूल कर कुप्पा बन जाया करते हैं।

"अभिमानकृतं कर्म नैतत् फलवदुच्यते।" ९

(महाभारत पर्व १२ वाँ)

भावार्थः—अहंकार पूर्वक किया हुआ काम कभी भी अच्छा फल देनें वाला नहीं हुआ करता है।

"अजानतो हठात्कुर्वन् मानं प्राज्ञो विनश्यति।" १०

भावार्थः—अनजान में भी अहंकार करने वाला बुद्धिमान् पुरुष भी अकस्मात् ही नष्ट हो जाया करता है। फिर सामन्य पुरुष की तो बात ही क्या है।

"उत्तानपिट्टिभः शेते नभःपतनशंकया।" ११

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—टिट्टिभ नामक पक्षी आकाश के गिर जाने की शंका से अपनी रक्षा के लिये टांगें ऊंची करके सोया करता हैं; वैसे ही अभिमानी पुरुष भी अपनी प्रवृत्तियाँ किया करता हैं।

"तां श्वभ्रभूमिमुपयाति नरोऽभिमानी।" १२

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—अभिमान करने वाला प्राणी उस नरक को प्राप्त होता हैं; जिसमें अपार दुःख है।

"वादमिच्छन्ति गर्विताः।" १३

भावार्थः—केवल घमंडी पुरुष ही वाद-विवाद और तर्क-जाल की इच्छा किया करते हैं। जब कि सामान्य पुरुष तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से चर्चा-वार्त्ता किया करते हैं।

"न मृत्यु निंहतो जीव ! गर्वम् कुर्वन् न लज्जसे ?" १४

(पार्श्व-नाथ-चरित्र)

भावार्थः—अरे आत्मन् ! मृत्यु का विनाश नहीं हुआ है; ऐसी स्थिति में पर लोक का विचार नहीं करके अहंकार करते हुए तुझे लज्जा अनुभव क्यों नहीं होती है ?

"मा कुरु धन-जन-यौवन-गर्वम् ।" १५

—शंकराचार्य

भावार्थः—धन-संपत्ति का, परिवार का, और यौवन का अभिमान मत करो ! क्यों कि ये सब पुण्य के प्रताप से ही मिले हैं और पुण्य के समाप्त होते ही ये भी समाप्त हो जाने वाले हैं ।

"(मानं) मुक्त्वा मार्दवमादरेण महता चेतः समभ्यस्यताम् !" १६

(संवेगद्रुम कंदली)

भावार्थः—अरे चित्त ! अभिमान को छोड़ करके महान् आदर के साथ तू नम्रता का अभ्यास कर । सरलता की आराधना कर ।

"अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् ।" १७

भावार्थः—जैसे जल से आधा भरा हुआ घड़ा निश्चय ही आवाज किया करता है; वैसे ही ज्ञान और चारित्र की दृष्टि से अध कचरा प्राणी भी अहंकार किया करता है ।

"मानात् स नीचकुलमेति भवाननेकान् ।" १८

(सुभाषित रत्न-सदोह)

भावार्थः—मान (अहंकार) करने से प्राणी अनेक भवों तक नीच-कुलों में जन्म-मरण किया करता है । अहंकार अधो-गति का दातार है ।

माया-दुर्गति की नायिका
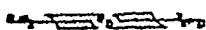
"माया दुर्गति-कारणम् ।" १

(विवेक विलास)

भावार्थ —प्राणी के दुर्गति में जाने का मूल कारण माया ही है । कपट से ही नीच गति की प्राप्ति हुआ करती है ।

"शीलशालिवने वह्निर्मायेयमवगम्यताम् ।" २

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः— शील-ब्रह्मचर्य रूप चाँवल के खेत को जलाने वाली अग्नि यह माया ही है । माया से शील-रत्न नष्ट-भ्रष्ट हो जाया करता है ।

"दौर्भाग्यजननी माया ।" ३

(विवेक विलास)

भावार्थः—पुण्य-हीनता अथवा खोटे भाग्य की माता माया ही है । माया से ही दुर्भाग्य की प्राप्ति हुआ करती है ।

"नृणाम् स्त्रीत्वप्रदा माया।" ४

(विवेक-विलास)

भावार्थ::—स्त्री-वेद की प्राप्ति माया से ही हुआ करती है।

"माया करंडी नरकस्य हंडी तपोविखंडी सुकृतस्य भंडी।" ५

(शुक बोध)

भावार्थः—माया नरक का भाजन है; तपस्या को नष्ट करने वाली टोकरी भी यह माया ही है; और श्रेष्ठ कार्यों को धूल में मिलाने वाली भी यही माया है।

"जयेत् जगद्-द्रोहकरीम् मायाम् विषधरीमिव।" ६

(योग-शास्त्र)

भावार्थः— संसार भर में क्लेश कराने वाली; साक्षात् सर्पिणी के समान इस माया राक्षसिणी पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

"दंभी भवति विवेकी।" ७

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—कपट करने वाला बाह्य रूप से अपने आपको विवेकवान् बतलाता है। कपटी दुनियाँ में भला बनने का ढोंग रचा करता है।

"मायाशिखी प्रचुरदोषकरः क्षणेन।" ८

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—माया ऐसी अग्नि है; जो कि क्षण भर में ही

अनेकानेक पापों को उत्पन्न कर देती है। माया को अपराधों की जननी ही समझो।

"मायावशेन मनुजो जन-निन्दनीयः।" ९

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—कपट का व्यवहार करने से मनुष्य जन-साधारण के लिये निन्दा का पात्र बनता है। कपटी के प्रति कोई भी विश्वास नहीं करता है।

"दुस्त्यजं दंभ-सेवनम्।" १०

भावार्थः—मायाचार का त्याग करना अति कठिन होता है।

(५३)

राग-द्वेष-संसार का मूल स्थान

"दृष्टिरागो महामोहः ।" १

(योग सार)

भावार्थः—अंध-विश्वास मोह का महान् विकट रूप है।

"नास्ति रागसमं दुःखं ।" २

(महाभारत पर्व १२ वाँ)

भावार्थः—राग अर्थात् आसक्ति अथवा रति-भावना रूप मोह के बराबर दूसरा दु:ख नहीं है।

"द्वेषाद्दुःखपरम्परा ।" ३

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—द्वेष नामक कषाय से दु:खों की शृंखला बराबर चालू ही रहती है।

"संध्यारागसमः स्नेहः ।" ४

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—इन्द्रियों संबंधी ममत्व-भावना अथवा भोग संबंधी प्रिय भावना संध्या कालीन लालिमा के समान क्षण स्थायिनी होती है।

"आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति।" ५

भावार्थः—आपत्तियों के आते ही शत्रुओं की शत्रुताएँ भी जागृत हो जाती हैं।

"भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति।" ६

भावार्थः—प्राणियों पर वैर-भाव रखने वाले का मन शांति अनुभव नहीं किया करता है।

"वादे वादे वर्धते वैर वह्निः।" ७

भावार्थः—वाद-विवाद का संघर्ष करते करते ही अंध-श्रद्धा के वश से परस्पर में कटुता रूप वैराग्नि प्रज्वलित हो जाया करती है।

"स्नेह-क्षयात् केवलमेति शान्तिम्।" ८

(उपदेश-प्रासाद)

भावार्थः—राग-भावना, आसक्ति-भावना के नष्ट होने पर ही विशुद्ध-शांति की प्राप्ति हो सकती है।

"स्नेह-मूलानि दुःखानि।" ९

(उपदेश-माला)

भावार्थः—स्नेह अथवा आसक्ति ही दुःखों की जड़ है।

"वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्।" १०

(हितोपदेश)

भावार्थः—गृहस्थाश्रम का परित्याग करके वन में रहने पर भी राग-आसक्ति से ग्रसित प्राणियों के कषाय-दोष विकसित होते ही रहते हैं।

"रागद्वेषक्लिन्नस्य कर्मबंधो भवत्येवम् ।" ११
(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—राग-द्वेष से परिपूर्ण प्राणी के कर्मों का बंधन रात और दिन होता ही रहता है।

"स्नेहः खलु पापशंकी ।" १२

भावार्थः—राग अर्थात् आसक्ति ही निश्चय में पाप को आमंत्रण दिया करती है।

"आदौ रागस्ततो द्वेषः, तस्मात् क्लेशपरम्परा ।" १३
(हिंगुल प्रकरण)

भावार्थः—प्रारंभ में राग याने आसक्ति उत्पन्न हुआ करती है और उसके बाद ही द्वेष भी उत्पन्न होने लगता है, इस तरह से कषाय की परम्परा चालू ही रहती है।

"रागान्धो हि जनः सर्वो न पश्यति हिताहितम् ।" १४
(यति धर्म समुच्चय)

भावार्थः—राग में अन्धे हुए सभी मनुष्य अपनी आत्मा के हिताहित स्वरूप को नहीं देख सकते हैं।

"भिन्नं पश्य चात्मानं रागत्यागात् सुखी भव।" १५
(प्रबंध चिंतामणि)

भावार्थः—अपनी आत्मा को पौद्गलिक पदार्थों से सर्वथा ही भिन्न ही समझो और राग एवं आसक्ति का परित्याग करके परम सुख की प्राप्ति करो।

"प्रियत्वं यत्र स्यादितरदपि तद्ग्राहकवशात्।" १६

भावार्थः—किसी भी वस्तु पर राग का होना अथवा द्वेष का होना केवल देखने वाले के ही अधीन है।

"न मुच्यते कथमपि प्रेम्णा बद्धो निरर्गलः।" १७
(हिंगुल-प्रकरण)

भावार्थः—राग नामक दोष से बंधा हुआ यह प्राणी किसी भी प्रकार का वाह्य बंधन नहीं होने पर भी कैसे छूट सकता है? अर्थात् किसी भी तरह से नहीं छूट सकता है।

"दृष्टिरागस्तु पापीयान् दुरुच्छेदः सतामपि।" १८
(वीतराग स्तोत्र)

भावार्थः—अन्ध विश्वास अपने आप में पूर्ण रूप से पाप रूप ही है। विचार शील पुरुषों के लिये भी इसका त्याग कर सकना अति कठिन है।

"न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित्।" १६
(मनु-स्मृति)

भावार्थः—इस अनित्य याने नष्ट होने वाली देह के द्वारा किसी के साथ वैर-शत्रुता मत करो।

"पिशाचा इव रागाद्यारछलयन्ति मुहुर्मुहुः।" २०

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—राग-द्वेष आदि ये कषाय दैत्यों के समान बार बार आत्मा को छला करते हैं-धोखा दिया करते हैं।

"श्वन्! त्वं तथापि सर्वत्र जातिद्वेषात् प्रभत्स्र्यसे।" २१

भावार्थः—अरे कुत्ते! तू गुणी होने पर भी अपनी जात से द्वेष करने के कारण से सभी स्थानों पर तू तिरस्कृत ही किया जाता है। अपमान और अनादर ही प्राप्त करता है।

भावार्थः—इस अनित्य याने नष्ट होने वाली देह के द्वारा किसी के साथ वैर-शत्रुता मत करो।

"पिशाचा इव रागाद्यारछलयन्ति मुहुर्मुहुः।" २०

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—राग-द्वेष आदि ये कषाय दैत्यों के समान बार बार आत्मा को छला करते हैं-धोखा दिया करते हैं।

"श्वन्! त्वं तथापि सर्वत्र जातिद्वेपात् प्रभत्स्र्यसे।" २१

भावार्थः—अरे कुत्ते! तू गुणी होने पर भी अपनी जात से द्वेष करने के कारण से सभी स्थानों पर तू तिरस्कृत ही किया जाता है। अपमान और अनादर ही प्राप्त करता है।

भावार्थः—इस अनित्य याने नष्ट होने वाली देह के द्वारा किसी के साथ वैर-शत्रुता मत करो।

"पिशाचा इव रागाद्यारछलयन्ति मुहुर्मुहुः।" २०
(योग-शास्त्र)

भावार्थः—राग-द्वेष आदि ये कषाय दैत्यों के समान बार बार आत्मा को छला करते हैं-धोखा दिया करते हैं।

"श्वन्! त्वं तथापि सर्वत्र जातिद्वेषात् प्रभर्त्स्यसे।" २१

भावार्थः—अरे कुत्ते! तू गुणी होने पर भी अपनी जात से द्वेष करने के कारण से सभी स्थानों पर तू तिरस्कृत ही किया जाता है। अपमान और अनादर ही प्राप्त करता है।

(५४)

इन्द्रियों का विषय-दुःखों का मूल आधार

"आपदाम् प्रथितः पंथा इन्द्रियाणामसंयमः ।" १

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—इन्द्रियों का असंयम ही याने विषयों का सेवन ही आपत्तियों के आने का मार्ग कहा गया है।

"इन्द्रियार्थेषु निःसंगं तस्य सिद्धं समीहितम् ।" २

--शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—जो विचार-शील प्राणी इन्द्रियों के विषयों में संलग्न नहीं है, उसी की मनो-कामना सिद्ध हुआ करती है।

"तीर्थमिन्द्रिय-निग्रहः ।" ३

(इतिहास-समुच्चय)

भावार्थः—इन्द्रियों की वृत्ति को विषयों की ओर से हटाना ही संसार समुद्र से पार उतरने का घाट है।

"वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।" ४

(भगवत्-गीता)

भावार्थः—*जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, उसी की बुद्धि स्थिर रह सकती है।*

"अजितात्तः कषायाग्निं विनेतुं न प्रभु र्भवेत।" ५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं की है, वह कषाय रूपी अग्नि को नष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता है।*

"बलवान् इन्द्रिय-ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।" ६

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—*इन्द्रिय-समूह बड़ा बलवान् है, और यही कारण है कि विद्वान् भी इन्द्रियों के विषयों में भुलावे में आकर इनकी ओर आकर्षित हो जाया करता है। अतएव विषयों से प्रति क्षण सावधान रहना चाहिये।*

"तदिन्द्रियजयं कुर्यान्मनः शुद्ध्या महामतिः।" ७

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—*विचार-शील पुरुष शुद्ध मन के साथ इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करें।*

"ये निर्जयंति भुवने बलिनस्त एव।" ८

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थ —अत्यंत कठिनता से जीती जा सकें, ऐसी बलवती इन्द्रियों को जो जीत लेते हैं, वे ही इस पृथ्वी पर वास्तव में बल शाली हैं।

"गृहेऽपि पंचेन्द्रिय-निग्रहं तपः।" ९

(हितोपदेश)

भावार्थः—गृहस्थ धर्म में रहते हुए भी यदि पांचों इन्द्रियों को वश में कर लिया जाय, तो ऐसा करना भी उत्कृष्ट तप ही है।

"जीयन्ताम् दुर्जया देहे रिपवश्चक्षुरादयः।" १०

(व्यास देव)

भावार्थः— शरीर में नेत्र आदि दुर्जेय शत्रु हैं, इन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

"तदिन्द्रियजयं कर्त्तुं स्फोरय स्फारपौरुषम्।" ११

(ज्ञान सार)

भावार्थ.—इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए विशाल पराक्रम प्रारंभ कर।

"इन्द्रियाण्येव तत्सर्वम् यत् स्वर्गनरकावुभौ।" १२

(योग शास्त्र)

भावार्थः—स्वर्ग और नरक दो स्थान हैं, इनमें जो सुख-दु ख है, वे सब इन्द्रियों से ही हैं।

"दुःखानुषंगात् तदपि दुःख एव निमज्जति।" १३

भावार्थः—इन्द्रियों से अनुभव होने वाला काल्पनिक सुख भी दुःख मिश्रित होने से अंत में दुःख रूप में ही परिणत हुआ करता है।

"इन्द्रिय-प्रभवं सौख्यं सुखाभासं न तत्सुखम् ।" १४

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—विषय-सेवन से इन्द्रियों को अनुभव होने वाला सुख वास्तव में सुख नहीं है, परन्तु सुखाभास है, जिसका कि परिणाम अंत में अनेक जन्म-मरण ही हैं।

"हा ! हा !! तथापि विषयान्न जहाति चेतः ।" १५

भावार्थः—अत्यंत खेद का विषय है कि अनंत दुःखों को पैदा करने वाले होने पर भी इन विषयों को यह चित्त नहीं छोड़ता है।

"रसमूलानि व्याधयः ।" १६

(उपदेश माला)

भावार्थः—इन्द्रिय संबंधी रस-सेवन ही रोगोत्पत्ति का मूल है।

"श्रवणपुटरत्नं हरिकथा ।" १७

भावार्थः—ईश्वर-संबंधी चर्चा-वार्ता का सुनना ही दोनों कानों के लिये रत्न-मणि के समान है।

"इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत् कामतः ।" १८

(मनु स्मृति)

भावार्थः—वासना के वश-वर्ती होकर पांचों इन्द्रियों के भोगों में मत फंसो।

(५५)

परिग्रह-लोभ कषाय का उत्पादक

"पाशो हि को ? यो ममताभिधानः ।" १

भावार्थः—आत्मा को फंसाने वाली जाल क्या है ?

उत्तर—ममत्व भावना ही जाल है ।

"अध्यात्मविदो मूर्च्छाम् परिग्रहं वर्णयन्ति निश्चयतः ।" २

(प्रशम रति)

भावार्थः—मूर्च्छा भावना ही-याने आसक्ति भावना ही निश्चय में परिग्रह है, ऐसा आत्म ज्ञानी ऋषि-मुनि महापुरुष कहा करते हैं ।

"संग एव मतः सूत्रे निःशेषाऽनर्थमंदिरम् ।" ३

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थ.—धर्म ग्रंथों में ममता ही को समस्त अनर्थों का मूल-स्थान माना है ।

"संसारमूलमारम्भास्तेषाम् हेतुः परिग्रहः ।" ४

(योग-शास्त्र द्वितीय प्रकाश)

भावार्थः—आरंभ-समारंभ ही संसार के मूल हैं। और उन आरंभ-समारंभों का कारण परिग्रह ही है।

"एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम्।" ५
(विष्णु-स्मृति)

भावार्थः—समस्त परिग्रह का त्याग करके निरंतर अनासक्त होता हुआ अकेला ही विचरण करता रहे।

"दुःखमेव सदा तेषाम् ये रता धनसंचये।" ६
(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जो धन को एकत्र करने में तल्लीन हैं, वे सदा दुःख के ही भागी हैं।

"प्राज्ञस्याऽपि परिग्रहो ग्रह इव क्लेशाय नाशाय च।" ७

भावार्थः—विद्वान व्यक्ति के लिये भी परिग्रह अनिष्ट ग्रहों की तरह क्लेशकारी और विनाशकारी ही है।

"मूर्च्छया रहितानाम् तु जगदेवापरिग्रहः।" ८
(ज्ञान-सार)

भावार्थः—ममता हीन, विरक्त और अलिप्त पुरुषों के लिये तो तीनों लोक का ऐश्वर्य भी अपरिग्रह ही है।

"अवेहि विद्वन्! ममतैव मूलं,
शुचां सुखानाम् समतैव चेति।" ९
(अध्यात्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—हे पंडित! ममता को ही शोक का मूल स्थान समझो और समता को ही सुखों की जड जानो।

"सर्वे चयान्ता निचयाः, पतनांता समुच्छ्रया" १०

(कात्यायन-स्मृति)

भावार्थः—सभी प्रकार की वस्तुओं का अंत में विनाश है और भौतिक उन्नति का अंतिम परिणाम पतन ही है।

"स्त्रैणानीह तृणान्यथा समदृशा पश्यन् भवाकिंचनः।"११

(संवेग द्रुम कदली)

भावार्थः—इस संसार में स्त्रियों को और घास के तिनकों को समान दृष्टि से देखते हुए निष्परिग्रही बनो।

"सर्वभावेषु मूर्च्छायास्त्यागः स्यादपरिग्रहः।" १२

(त्रिषष्ठि पर्व)

भावार्थः—सभी पदार्थों से आसक्ति भाव को हटा लेना ही अपरिग्रह व्रत है।

"बहिर्निर्ग्रन्थता वृथा।" १३

(ज्ञान सार)

भावार्थः—आन्तरिक आसक्ति होते हुए बाह्य त्याग निरर्थक ही है।

"परिग्रहग्रहः कोऽयं विडंबितजगत्त्रयः।" १४

(परिग्रह अष्टक)

भावार्थः—तीनों लोक में घोर कष्ट पहुंचाने वाला यह परिग्रह याने ममता नामक ग्रह कितना विचित्र है कि कभी समाप्त ही नहीं होता है।

"कलेः केलिवेश्म परिग्रहः।" १५

(सिंदूर प्रकरण)

भावार्थः—यह परिग्रह दुष्ट पुरुष के लिये क्रीड़ा-स्थल याने खेल-कूद का मैदान हुआ करता है।

"किम् न क्लेशकरः परिग्रहनदीपूरः प्रवृद्धिंगतः।" १६

भावार्थः—नदी के बाढ़ की तरह बढी हुई संग्रह वृत्ति कौनसा क्लेश नहीं उत्पन्न किया करती है? अर्थात् सभी प्रकार के क्लेशों को और संकटों को यह आसक्ति आमंत्रित किया ही करती है।

(५६)

नारी-विविध गुणावगुणों की खान

"शुचि नारी पतिव्रता ।" १

(चाणक्य नीति)

भावार्थः—पतिव्रता स्त्री सदैव पवित्र ही हुआ करती है ।

"अल्पभुङ् मितवक्त्री च देवता सा न मानुषी । २

भावार्थ.—जो महिला-रत्न थोड़ा भोजन करने वाली और परिमित तथा आवश्यकतानुसार ही बोलने वाली होती है, उसे सामान्य मनुष्य रूप ही मत समझो, किन्तु उसको उच्च आदर्श वाली देवी ही मानो ।

"नित्यं मधुरवक्त्री च सा रमा न रमा रमा ।" ३

भावार्थः—जो स्त्री निरन्तर मिठास मय वाणी में ही वार्तालाप किया करती है, वही साक्षात् लक्ष्मी रूप है । केवल धन संपत्ति रूप लक्ष्मी को ही लक्ष्मी मत समझो ।

"स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सा नारी धर्मभागिनी ।" ४

भावार्थः—*पति की इच्छा ही जिसकी इच्छा है, वही नारी धर्मात्मा है। अर्थात् जो महिला पति की इच्छानुसार वश वर्तिनी है, वहीं श्रेष्ठ महिला है।*

"धर्मकामार्थकार्येसु भार्या पुंसः सहायिनी।" ५

(इतिहास समुच्चय)

भावार्थः—*धर्म, काम और अर्थ संबंधी कार्यों में स्त्रियाँ पुरुष की सहायता करन वाली हुआ करती हैं।*

"तुष्टे भर्तरि-नारीणाम् संतुष्टाः सर्वदेवताः।" ६

(मित्र लाभ)

भावार्थः—*जिन स्त्रियों के पति अपनी अपनी पत्नी पर पूर्ण रूप से संतुष्ट हैं, तो समझ लेना चाहिये कि विश्व के सभी देवता उन स्त्रियों पर संतुष्ट हैं।*

"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवताः।" ७

भावार्थः—*जहाँ पर स्त्रियाँ पूजनीय दृष्टि से देखी जाती हैं, वहाँ पर देवता भी आनंद पूर्वक क्रीड़ा करते रहते हैं।*

"पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान् समश्नुते ?" ८

(कात्यायन-स्मृति)

भावार्थः—*पतिव्रता स्त्री पति की सेवा द्वारा ही देवलोक के कौन से स्थान को नहीं प्राप्त कर सकती है ? अर्थात् सब कुछ प्राप्त कर सकती है।*

"तस्मात् सर्वम् परित्यज्य पतिमेकं भजेत् सती।" ९

भावार्थः—यही कारण है कि सती स्त्री सभी प्रकार के व्रत-नियमों के पालन करने के स्थान पर केवल एक पति धर्म का ही सम्यक्-प्रकार से अनुपालन किया करती है।

"नारी स्वर्गम् प्राप्नोति पतिपूजनात्।" १०

(शंख स्मृति)

भावार्थः—नारी पति की सेवा भक्ति द्वारा ही स्वर्ग को प्राप्त कर लेती है।

"अविनीता रिपु भार्या।" ११

भावार्थः—जो पत्नी अविनीत होती है, याने आज्ञा का पालन नहीं किया करती है, उसे शत्रु ही समझना चाहिए।

इहामुत्र च नारीणाम् परमा हि गति पतिः।" १२

भावार्थः—इस लोक में और परलोक में नारी के लिये श्रेष्ठ आश्रय स्थान पति ही होता है।

कुगेहिनीम् प्राप्य गृहे कुतः सुखम्?" १३

भावार्थः—क्लेश कारिणी भार्या की प्राप्ति होने पर घर में सुख और आनंद कैसे प्राप्त हो सकता है।

पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्।" १४

(चाणक्य नीति)

भावार्थः—स्त्रियों के लिये आदर्श गुरु पति ही है।

"न पतिव्यतिरेकेण सुस्त्रीणाम् अपरा गतिः।" १५

भावार्थः—स्त्रियों के लिये पति के सिवाय दूसरा कोई भी श्रेष्ठ आश्रय स्थान नहीं हो सकता है।

"सर्वं सहत्वं माधुर्यमार्जवं सुस्त्रियां गुणाः।" १६
(धर्म कल्प द्रुम)

भावार्थः—जो स्त्री सात्विक प्रकृति की हुआ करती है, उसमें सहिष्णुता, मधुरता, और सरलता जैसे सुन्दर गुण हुआ करते हैं।

"सीतया रावण इव त्याज्यो नार्या नरः परः।" १७

भावार्थः—सभी स्त्रियों को पर-पुरुष का उसी प्रकार से परित्याग करना चाहिये, जैसा कि सीता ने रावण का किया था।

"नता नारी धन्या भवति खलु मान्या त्रिभुवने।" १८

भावार्थः—विनय-शील महिला प्रशंसा-पात्र होती है, और वह तीनों लोक में आदरणीय और श्रेष्ठ होती है।

"स्त्री-बुद्धिः प्रलयावहा।" १९

भावार्थः—स्त्री की बुद्धि में अनेक प्रकार की विचित्रताएँ हुआ करती हैं, तदनुसार इनकी बुद्धि के प्रताप से कभी २ प्रलय भी याने सर्वनाश भी उपस्थित हो सकता है।

"स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति।" २०

भावार्थः—यह आश्चर्य-जनक ही है कि स्त्री का चित्त अनेक विचित्रताओं से परिपूर्ण ही होता है।

"केषाम् नेषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय।" २१

भावार्थः—कहो—यह कविता रूप स्त्री किनके लिये कौतुक उत्पन्न करने वाली नहीं हुआ करती है?

"स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कंचन।" २२

भावार्थः—आदर्श महिलाएं अपने २ घर की साक्षात् लक्ष्मी ही हैं, इससे अधिक और क्या विशेषता बतलाई जाय?

"अनन्यचित्ता सुमुखी सा नारी धर्मचारिणी।" २३

भावार्थः—जो स्त्री केवल पति से ही अनुराग रखती है, और उसके साथ अनन्य चित्त वाली होती है, एवं जो सदा प्रसन्न मुख रहती है, उसे ही धर्मात्मा समझना चाहिये।

"स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्।" २४

भावार्थः—जिस दिन से स्त्री पुरुष के समान अपना प्रभाव प्रदर्शित करना प्रारंभ कर देती है, उसी दिन से वह घर नष्ट हो गया है, ऐसा ही समझो।

"स्त्रीणाम् चरित्राणि शवोपमानि।" २५

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—स्त्रियों के जीवन व्यवहार कभी २ इतने विषम पाये

जाते है कि विद्वानों ने उनकी उपमा मृत शरीर के साथ प्रदान की है।

"किं किं न करोति निरर्गलतां गता स्त्री ?" २६

भावार्थः—स्वच्छंदता को प्राप्त हुई स्त्री क्या क्या अनर्थ नहीं किया करती है ?

"स्त्री भ्रमंती विनश्यति।" २७

भावार्थ—भटकती हुई स्त्री विनाश को प्राप्त हुआ करती है।

"घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्।" २८

भावार्थः—काम-शास्त्र की दृष्टि से स्त्रियां घी के घडे के समान कही गई हैं और पुरुष जलते हुए अंगारे के समान बतलाया गया है, अतः दोनों का एक साथ एक स्थान पर रहना हानि प्रद ही है।

"न ही नार्यो विना ईर्ष्यया।" २६

भावार्थः—नारियाँ ईर्ष्या रहित नहीं हुआ करती हैं।

"नार्यः समाश्रितजनं हि कलंकयन्ति।" ३०

भावार्थः—प्राय. करके ऐसा हुआ करता है कि अयोग्य स्त्रियां जिस पुरुष का आश्रय लिया करती है, उस पर किसी न किसी प्रकार का आरोप जनता द्वारा लगा दिया जाता है।

"या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी।" ३१

भावार्थः—जो रूप और गुणों से संपन्न है तथा पति-परायण है, वास्तव में वही रमणी रत्न है।

"कुलजाया सा जाया केवल जाया तु केवलं माया।" ३२

भावार्थ.—जो कुलीन घर में उत्पन्न हुई हो, और श्रेष्ठ गुणों से युक्त हो, वही "जाया याने पत्नी" के योग्य है। अन्यथा उसे केवल माया याने जंजाल ही समझो।

"भर्तुः प्रीतिकरी या तु भार्या सा चेतरा जरा।" ३३
(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—जो पत्नी पति के लिये आनंद दायक है, उसे ही "भार्या" कहा जा सकता है अन्यथा उसे बुढ़ापा लाने वाली और शरीर को क्षीण करने वाली ही समझो।

"मधु तिष्ठति वाचि योषिताम् हृदये हलाहलं महद्विषम्" ३४

भावार्थः—स्त्रियों के वचनों में तो मधुरता होती है, परन्तु उनके हृदय में तीक्ष्ण और तत्काल असर करने वाला विष भरा हुआ होता है।

"स्त्री यंत्रं केन लोके विषममृतमयं
धर्मनाशाय सृष्टम्।" ३५

भावार्थः—इस संसार में बाह्य दृष्टि से तो अमृतमय; किन्तु आन्तरिक दृष्टि से विष स्वरूप; ऐसे इस स्त्री रूप यंत्र को धर्म का विनाश करने के लिये किसने बनाया है?

"स्त्रियो हि मूलं कलहस्य पुंसः।" ३६

कर्म--अपने ही हिताहित कार्य
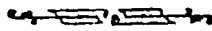
"यादृशं क्रियते कर्म तादृशं भुज्यते फलम् ।" १

(पद्म पुराण)

भावार्थः—जो प्राणी जैसा कर्म करता है, उसको वैसा ही फल भोगना पड़ता है।

"योऽर्थोऽसंभावनीयस्तमपि घटयते क्रूरकर्मा विधाता ।" २

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—जो घटना अघटनीय है, निर्दय कर्मरूप विधाता उसको भी घटित कर देता है।

"कर्मानुगो याति स एव जीवः ।" ३

(उपदेश-प्रसाद)

भावार्थः—जीव जिस समय में परलोक को जाता है, उस समय में उसके साथ में वे पाप-पुण्यरूप कर्म जाया करते हैं, जिनका संग्रह उस जीव ने किया है।

"विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि ।" ४

(शुक-बोध)

भावार्थः—विधि रूप भाग्य की प्रवृत्तियाँ अति विचित्र हुआ करती हैं ।

"प्रारब्धकर्म बलवन् मुनयो वदन्ति ।" ५

भावार्थः—मुनि गण कहा करते हैं कि पूर्व कृत कर्म ही बलशाली हुआ करते हैं ।

"गहना कर्मणो गतिः ।" ६

भावार्थः—कर्म की गति याने फल-परिणाम अति ही गहन याने अगम्य हुआ करता है ।

"यथा वृक्षस्तथा फलम् ।" ७

भावार्थः—जैसा वृक्ष होता है, वैसा ही फल भी हुआ करता है । यही सिद्धान्त शुभाशुभ कर्मों के विषय में भी समझना चाहिये ।

"अपि खलु विषमः पुराकृतानाम्
भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः ।" ८

भावार्थः—अरे ! यह निश्चित बात है कि प्राणियों के पहले किये हुए कर्मों का ही यह अति कटु फल है, जिसको ये प्राणी वर्त्त-मान में भोग रहे हैं ।

"यदिह क्रियते कर्म तत् परत्रोपभुज्यते ।" ९

(कमल-संयम)

भावार्थः—जैसा भी कर्म यहाँ पर किया जाता है, उसी का वैसा ही फल परलोक में भोगना पड़ता है।

"यो यद् वपति वीजं हि लभते सोऽपि तत्फलम् ।" १०

भावार्थः—जो जैसा वीज बोता है, वह वैसा ही उस का फल भी प्राप्त करता है।

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।" ११

(विक्रम चरित्र)

भावार्थः—इस आत्मा ने जैसे भी शुभ अथवा अशुभ कर्म किये हैं, उन्हीं के अनुसार इस आत्मा को शुभ अथवा अशुभ फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

"आत्मना यत् कृतं कर्म भोक्तव्यं तदनेकधा ।" १२

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—आत्माने जैसी जैसी प्रवृत्तियाँ की हैं, और तदनुसार जैसे जैसे कर्मों का वन्धन किया है, उनके फल को अनेक प्रकार से भोगना ही पड़ता है।

"शरीरं केवलं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्विषम् ।" १३

(भगवद् गीता)

भावार्थः—कषाय के कारण से ही जीव के साथ कर्मों का वन्धन और उनकी स्थिति हुआ करती है, अतएव यदि कषाय रहित होकर केवल शरीर द्वारा ही प्रवृत्ति की जाय, तो ऐसी स्थिति में आत्मा पाप रूप अवस्था का भागी नहीं होता है।

"संसारी कर्म-संबंधात् नटवत् परिभ्राम्यति ।" १४

भावार्थः—*यह सांसारिक प्राणी अपने कर्मों के संबंध से ही नट के समान इस संसार की विभिन्न जीवयोनियों में परिभ्रमण करता ही रहता है ।*

"बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।" १५

(इतिहास-समुच्चय)

भावार्थः—*जैसा कर्मों का परिणाम होने वाला होता है, उसी के अनुसार बुद्धि भी उत्पन्न हुआ करती है ।*

"आतमानसवेदनीय मचिराद्दुश्चेष्टितानाम् फलम् ।"१६

(संवेग द्रुम कंदली)

भावार्थः—*अरे भाई ! अपने द्वारा की गई खराब प्रवृत्तियों का कटु फल शीघ्र ही मन द्वारा कष्ट अनुभव करते हुए भोगना ही पडेगा ।*

"शरीरी परिवर्तेत् कर्मणा वंचितो बलात् ।" १७

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*कर्म-शक्ति द्वारा ठगाया हुआ प्राणी बल पूर्वक उन्नति के शिखर से अवनति के गर्त मे गिरा दिया जाता है ।*

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।" १८

भावार्थः—*जैसे भी अच्छे अथवा बुरे काम किये हैं, उन सभी का उनके अनुरूप ही सुख अथवा दुःख अवश्य ही भोगना पड़ेगा अथवा भोगना ही पड़ता है ।*

"यत् कृतं तु पुनः पश्चात् सर्वमात्मनि तद्भवेत् ।" १६

(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—जो कुछ भी किया गया है, उसका संपूर्ण परिणाम आगे पीछे इसी आत्मा को भोगना पड़ेगा ।

"अमत्यविरतं जीव एकाकी विधिवंचितः ।" २०

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—कर्म रूप ठगों से ठगाया हुआ यह आत्मा व्रत-नियमों के पालन नहीं करने पर निरंतर अकेला ही भटकता रहता है ।

"कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ।" २१

(विक्रम चरित्र)

भावार्थः—अरबों युगों के बीत जाने पर भी किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं है । अर्थात् कृत कर्म फल रहित अवस्था में क्षीण नहीं हुआ करते हैं ।

"नारोढुम् क्षमसे दृढं निगडितो जीवः स्वकैः कर्मभिः ।" २२

(संवेग द्रुमकंदली)

भावार्थः—स्वकृत कर्मों द्वारा मजबूत बंधा हुआ हे जीव ! तू कर्म फल भोगे बिना अथवा कर्मों को क्षीण किये बिना उपर उठने में समर्थ नहीं हो सकता है ।

"कर्मनिबद्धो जीवः परिभ्रमन् यातनां भुक्ते ।" २३

(सुबोध पद्माकर)

भावार्थः—कर्म पाश में फंसा हुआ यह जीव जन्म मरण करता हुआ दुःखों को ही भोगता रहता है।

"स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभं।"२४

भावार्थः—खुद ही इस आत्मा ने पूर्व काल में जैसे भी कर्म किये हैं, उनका वैसा ही शुभ अथवा अशुभ फल यह आत्मा यहाँ पर प्राप्त करती है, और उन्हें भोगती है।

"दैवे दुर्जनतां गते तृणमपि प्रायेण वज्रायते।" २५

भावार्थः—जिस समय में भाग्य रूप कर्मों द्वारा अनिष्टता उत्पन्न करने पर दुर्जनता का व्यवहार प्रारंभ कर दिया जाता है, उस समय में एक सामान्य घास का तिनका भी पीड़ा पहुँचाने में वज्र का काम करने लग जाता है।

"स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः।" २६

भावार्थः—यह सपूर्ण जीव-लोक अपने-अपने किये हुए कर्म रूप धागे से ही बधा हुआ है।

"शुभाशुभानि कर्माणि स्वयं कुर्वन्ति देहिनः।" २७

(आध्यात्मिक रामायण)

भावार्थः—शुभ कर्मों के अथवा अशुभ कर्मों के कर्त्ता खुद सांसारिक प्राणी ही हुआ करते हैं।

"स्वकर्मवशवर्तिनस्त्रिभुवने।" २८

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—सभी सांसारिक प्राणी तीनों ही लोक में अपने अपने कर्मों के वश में रहे हुए हैं।

"कर्मणो हि प्रधानत्वं किं कुर्वन्ति शुभा ग्रहाः ?" २९

(आध्यात्मिक रामायण)

भावार्थः—सुख अथवा दुःख के संयोग में केवल कर्मों की ही प्रधानता रही हुई है, शुभ ग्रह अथवा अशुभ ग्रह क्या कर सकते हैं ?

"अयमात्मैव चिद्रूपः शरीरी कर्मयोगतः।" ३०

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—यह आत्मा मूल रूप से शुद्ध चैतन्य स्वरूप ही है, ज्ञान स्वरूप ही है, केवल कर्मों के योग से ही इसको शरीर धारण करने पड़ते हैं।

"यथा च कर्मणाम् छेदस्तथाऽसन्नं परं पदं।" ३१

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—ज्यों ज्यों कर्मों का छेदन होता है, त्यों त्यों मोक्ष समीप आता जाता है।

"सत्येको नरक क्रोडे क्लिश्यते निजकर्मभिः।" ३२

(योग शास्त्र)

भावार्थः—यह सांसारिक प्राणी अपने ही कर्मों के कारण से अकेला ही नरक-स्थान में घोर पीड़ाएं अनुभव करता रहता है।

"अत्राणो नीयते जन्तुः कर्मभिर्यमसद्मनि ।" ३३

(योग शास्त्र)

भावार्थः—यमराज के निवास-स्थान पर कर्मों के द्वारा यह जीव अनाथ रूप से एवं अरक्षित रूप से ले जाया जाता है ।

"सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ।" ३४

(भर्तृहरि)

भावार्थः—जिस कर्म के प्रताप से सूर्य प्रतिदिन आकाश में भटकता रहता है, उसी कर्म को नमस्कार हो ।

"ध्यानाग्निदग्धकर्मा तु सिद्धात्मा स्यान्निरंजनः ।" ३५

(योग शास्त्र)

भावार्थः—जो आत्मा धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान रूप अग्नि के द्वारा अपने कर्मों को जला डालता है, अर्थात् क्षय कर देता है, ऐसा पवित्र आत्मा सभी प्रकार के दोषों से रहित होकर सिद्ध हो जाता है, मुक्त हो जाता है ।

"क्षीणकर्ममलो जीवस्तथा याति शिवालयम् ।" ३६

भावार्थः—जिस समय में यह आत्मा कर्मों के बंधन से सर्वथा ही मुक्त हो जाता है, और पुनः बंधने के कारण शेष नहीं रहते हैं तो ऐसी अवस्था में यह आत्मा शुद्ध, बुद्ध, और अनिरुद्ध होकर सर्व श्रेष्ठ स्थान रूप मोक्ष को पहुंच जाती है ।

"कर्मक्षयात् तथा जन्तुः शरीरान्नाशमृच्छति ।" ३७

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—कर्म के पृथक् होने पर यह जीव भी शरीर से पृथक् हो जाया करता है। कर्म-नाश के साथ शरीर-नाश का संबंध जुड़ा हुआ है।

"कर्म-बीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः।" ३८

(आचार्य उमा स्वाति)

भावार्थः—जैसे जला हुआ बीज अंकुर उत्पन्न नहीं कर सकता है, उसी तरह से कर्म रूप बीज के सर्वथा जल जाने पर याने समूल रूप से क्षीण हो जाने पर जन्म मरण रूप भव-अंकुर भी पुनः उत्पन्न नहीं हो सकता है।

भाग्य-अपने ही किये हुए कार्मों का फल

"कर्मदोषात् दरिद्रता ।" १

भावार्थः—दीन अवस्था अपने ही पापों का कटु परिणाम है।

"विधिरहो बलवान् इति मे मतिः ।" २

(शुक्र बोध)

भावार्थः—अरे ! भाग्य ही बलवान् हुआ करता है, ऐसी मेरी मान्यता है।

"दैवमुद्यमायत्तम् ।" ३

भावार्थः—भाग्य से ही परिश्रम करने की प्रेरणा प्राप्त हुआ करती है।

"सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।" ४

भावार्थः—विविध रीति से सुरक्षा करने पर भी यदि भाग्य द्वारा उसका विनाश होना है तो वह अवश्यमेव विनष्ट होता ही है।

"भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम् ।" ५

भावार्थः—भाग्य ही सब स्थानों पर फल दिया करता है, विद्या और पुरुषार्थ भाग्य के आगे शक्ति-हीन हैं।

"भवितव्यस्य द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।" ६

भावार्थः—होनहार घटना के लिये सभी स्थानों पर सभी प्रकार के साधन उपस्थित हो जाया करते हैं।

"वक्रे विधौ वद कथं व्यवसायसिद्धिः ?" ७

भावार्थः—भाग्य के वक्र हो जाने पर याने प्रतिकूल हो जाने पर बतलाओ कि कार्य में सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है ?

"जायते यस्य यः साध्यः स तेनैव निरुध्यते ।" ८

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—अच्छी अवस्था में जो जिसका साधक होता है, विपरीत अवस्था में वही उसका बाधक हो जाया करता है।

"अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः ?" ९

भावार्थः—भाग्य द्वारा लिखित शुभ अथवा अशुभ परिणाम को कौन मिटा सकता है ?

"भवितव्यं भवत्येव कर्मणामिदृशी गतिः ।" १०

भावार्थः—जो होने वाला है, वह अवश्यमेव होगा ही, भाग्य की ऐसी ही गति-रीति है।

"नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः।" ११

भावार्थः—जो होनहार नहीं है, वह नहीं होता है, और जो होनहार है, उसका अभाव नहीं हो सकता है।

"विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।" १२

भावार्थः—अनिष्ट-काल आने पर बुद्धि भी उल्टी हो जाया करती है।

"पुण्यं विना न हि भवंति समीहितार्थाः।" १३

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—पुण्य के अभाव में मनो-वांछित पदार्थ नहीं मिला करते हैं।

"विधौ विमुखे किम् करिष्यति पौरुषम् ?" १४

—माधव-वया

भावार्थः—भाग्य के विपरीत होने पर पुरुषार्थ क्या करेगा ?

"रिक्ता भवंति भरिता भरिताश्च रिक्ताः।" १५

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—भाग्य के फेर से निर्धन धनी हो जाते हैं, और धनी भी निर्धन हो जाया करते हैं।

"ततः परं भाग्यवशा हि कन्या।" १६

(धर्म कल्पद्रुम)

भावार्थः—विवाह के पश्चात् लड़की का सुख दुख भाग्य के अनुसार हुआ करता है।

"पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्।" १७

भावार्थः—वसन्त-ऋतु के आते ही सभी वृक्षों पर नये २ पत्तों का आना आरंभ हो जाता है, परन्तु करीर नामक वृक्ष पर नये पत्ते नही आते हैं, तो इसमें वसन्त-ऋतु का क्या दोष है?

"धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्।" १८

भावार्थः—चारों ओर घनघोर वर्षा होने पर भी यदि चातक-पक्षी के मुख में पानी की धारा नहीं पड़ती है, तो इसमें मेघ का क्या दोष है?

'नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किम् दूषणम्?' १९

भावार्थ.—सूर्य की किरणों से चारों दिशाओं में उज्ज्वल प्रकाश हो जाने पर भी यदि उल्लू पक्षी को नहीं दिखाई पडे तो इसमें सूर्य का क्या दोष है?

"वसिष्ठदत्तलग्नोऽपि रामः प्रव्रजितो वने।" २०

भावार्थः—वसिष्ठ ऋषि जैसे महापुरुष द्वारा राज्य-तिलक का शुभ मुहूर्त्त निकालने पर भी उसी मुहूर्त्त-काल में रामचन्द्रजी को वन में जाना पड़ा, यह भाग्य की ही विशेषता हुई।

(५६)

दुर्भाग्य-पाप का कटु परिणाम
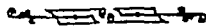
"हे दारिद्य ! नमस्तुभ्यं, सिद्धोऽहं त्वत् प्रसादतः ।" १

भावार्थः—हे दरिद्रता देवी ! तुम्हें मेरा नमस्कार है, क्योंकि तुम्हारी कृपा से मैं सिद्ध हो गया हूँ । अर्थात् मै तो सबको देखता हूँ, परन्तु तुम्हारी कृपा से मुझे कोई नहीं देखता है ।

"कल्पवृक्षोऽप्यभव्यानाम् प्रायो याति पलाशताम् ।" २

भावार्थः—अभव्य प्राणियों के लिये कल्पवृक्ष भी ढाक का वृक्ष—(पलाश का वृक्ष) बन जाया करता है ।

"दारिद्र्यमेकं गुणकोटिहारि ।" ३

भावार्थ.—अकेला दरिद्रता नामक दुर्गुण ही करोड़ों गुणों को नष्ट कर देता है ।

"भाग्यहीना यत्र यान्ति तत्र यान्त्येव चापदः ।" ४

भावार्थः—पुण्यहीन जहाँ जहाँ जाते हैं, वहाँ वहाँ आपत्तियाँ उनके लिये तैयार रहती हैं ।

"स्वजनोऽपि दरिद्राणाम् तत्क्षणात् दुर्जनायते ।" ५

भावार्थः—दरिद्र व्यक्तियों के लिये स्व-बन्धु भी तत्काल विरोधी बन जाया करते हैं ।

"हेतुप्रमाणयुक्तं वाक्यं न श्रूयते दरिद्रस्य ।" ६

भावार्थः—दरिद्र पुरुष के वाक्य युक्ति युक्त और प्रमाण सहित होने पर भी उन पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जाता है ।

"दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं न हि ।" ७

भावार्थः—मानव समाज को कष्ट पहुँचाने वाली इस दरिद्रता को किसी ने भी नहीं जलाया, यह एक आश्चर्य ही है ।

"प्रतिकूले विधौ किं वा सुधापि हि विषायते ।" ८

भावार्थः—भाग्य के विपरीत होने पर और तो क्या ? अमृत भी विष का काम करने लग जाता है ।

(६०)

भिखारी-समाज का हीन प्राणी
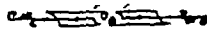
"तृणं लघु तृणात्तूलं, तूलादपि हि याचकः ।" १

(वृद्ध-चाणक्य नीति)

भावार्थः—घास का तिनका तुच्छ होता है, और तिनके से भी रुई हल्की होती है, परन्तु याचक याने भिखारी तो इन दोनों से भी हल्का और गया बीता होता है ।

"कुप्येत् को नातियाचितः ।" २

भावार्थः—बार बार मांगने पर कौन दानी क्रोधित नही होता है ।

"दीयतां दीयतां किंचित् अदातुः फलमीदृशम् ।" ३

भावार्थः—भिखारी भीख नही मांगता है, परन्तु ऐसी शिक्षा देता है कि 'दान दो, दान दो' नही तो दान रहित अवस्था में मेरे समान भिखारी बनना पड़ेगा ।

"मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचके ।" ४

भावार्थः—मृत्यु के समय में जो जो लक्षण होते हैं, वे ही लक्षण भिखारी में भी देखे जाते हैं। वास्तव में भीख मांगना कितना निंदनीय है?

"भिक्षुका नैव भिक्षंते, बोधयन्ति गृहे गृहे।" ५

भावार्थः—भिखारी भीख नहीं मांगते हैं परन्तु घर-घर में फिर कर उपदेश देते हैं। तात्पर्य यह है कि दान के महत्त्व को समझो।

"गुणास्तावत् यशस्तावत् यावत् याचेत् नो नरः।" ६

भावार्थः—गुण भी वहीं तक गुण हैं, और यश भी वहीं तक यश है, जब तक कि गुणी अथवा यशस्वी कोई याचना नहीं करे। याचना करते ही गुण और यश नष्ट हो जाया करते हैं।

"भिक्षुको भिक्षुकं दृष्ट्वा श्वानवत् गुर्गुरायते।" ७

भावार्थः—भिखारी भिखारी को देख करके कुत्ते के समान गुरगुराने लगता है। हल्की प्रकृति के व्यक्ति परस्पर में ईर्षा द्वेष रखते हैं।

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वर्ण व्यवस्था की प्रधान जातियाँ
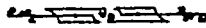
"शीलगुणैर्द्विजाः ।" १

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—शील आदि गुणों के होने पर ही ब्राह्मणत्व कहा जा सकता है ।

"सर्वभूतदयायुक्ता ब्राह्मणा सर्वजातिषु ।" २

(मत्स्य-पुराण)

भावार्थः—सभी जाति के प्राणियों के प्राणों की रक्षा करने वाला ही ब्राह्मण हो सकता है ।

"वृत्तस्थं ब्राह्मणं प्राहुर्नेतरान् वेदजीवकान् ।" ३

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—सच्चरित्र क्रियापात्र को ही ब्राह्मण कहा गया है, न कि वेदों के आधार से आजीविका करने वाले को ।

"व्रतं ब्राह्मण-लक्षणम् ।" ४

भावार्थः—आचार ही ब्राह्मण का लक्षण है ।

"यदि वेदैर्भवेत् विप्रो राक्षसोऽपि द्विजः खलु ।" ५
(वृहदाह्निक पूर्व भाग)

भावार्थः—यदि वेदों के पठन करने मात्र से ही कोई ब्राह्मण हो जाता हो तो राक्षस भी ब्राह्मण हो जाना चाहिये ।

"निर्मलं सकलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ।" ६

भावार्थः—जिसके हृदय में परम पवित्र ब्रह्म रूप समस्त ज्ञान है, वही ब्राह्मण है ।

"स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः ।" ७
(आह्निक सूक्तावलि)

भावार्थः—जो निरंतर कर्त्तव्य परायण हैं, और इन्द्रियों पर विजय पाने वाले हैं, वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं ।

"कामक्रोधौ वशे यस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।" ८
(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—काम और क्रोध जिसके वश में हैं, उसी को देवतागण ब्राह्मण मानते हैं ।

"स्वयं धर्मेण चरति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।" ९
(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—जो ज्ञान पूर्वक धर्म का आचरण किया करता है, उसी को देवतागण ब्राह्मण मानते हैं।

"कामक्रोधनिवृत्तस्तु ब्राह्मणः स युधिष्ठिर !" १०

(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—हे युधिष्ठिर ! जो पुरुष काम और क्रोध से रहित हो गया है, उसी को ब्राह्मण समझो।

"नित्यं व्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मणः उच्यते।" ११

(भागवत स्कन्ध)

भावार्थः—जो सदा व्रत पालक और सत्य भाषण करने वाला है, वही वास्तव में ब्राह्मण कहा जाता है।

"न हंति सर्वभूतानि प्रथमं ब्राह्मणलक्षणम्।" १२

(बृहदाह्निक)

भावार्थः—पूर्ण रीति से अहिंसा की परिपालना करना यही ब्राह्मण का सर्व प्रथम लक्षण है।

"अदत्तं नैव गृह्णाति द्वितीयं ब्राह्मणलक्षणम्।" १३

(भागवत-स्कन्ध)

भावार्थः—चोरी नहीं करना, बिना दिया हुआ नहीं लेना, यह ब्राह्मण का दूसरा लक्षण है।

"मैथुनं हि सदा त्यक्तं चतुर्थं ब्राह्मणलक्षणम्।" १४

(महाभारत उत्तरार्ध)

भावार्थः—*मैथुन नहीं सेवन करना, यही ब्राह्मण का चौथा लक्षण है।*

"युक्तश्चरति निः संगः पंचमं ब्राह्मणलक्षणम् ।" १५

(भागवत संकंध)

भावार्थः—*निस्संग होकर याने अनासक्त होकर सदाचार का आचरण करना, यही ब्राह्मण का पाँचवाँ लक्षण है।*

"मैत्री कर्म समस्तेषु ब्राह्मणमस्य उत्तमं धनम् ।" १६

(विष्णु पुराण)

भावार्थः—*समस्त प्राणियों पर मैत्री-भावना रखना, यही ब्राह्मणों का उत्तम धन है।*

"श्वपचा अपि धर्मस्थाः संस्कृताः स्युः द्विजोत्तमाः ।" १७

(महाभारत उत्तरार्ध)

भावार्थः—*धर्म में स्थिर, संस्कार युक्त चांडाल भी श्रेष्ठ ब्राह्मण कहे जा सकते हैं।*

"धर्माभिसंस्कारैः सर्वे स्युः मानवाः द्विजाः ।" १८

(गृह्य सूत्रम्)

भावार्थः—*धार्मिक संस्कारों द्वारा सभी मनुष्य ब्राह्मण बन सकते हैं।*

"विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेतद् ब्राह्मणलक्षणम् ।" १९

(वशिष्ठ स्मृति)

भावार्थः—विद्या, विज्ञान और आस्तिकता इनसे संपन्न होना ब्राह्मण का ही लक्षण है।

"ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्राह्मणकर्मस्वभावजम् ।" २०

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता, ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कार्य हैं।

प्रतिग्रहे संकुचिताऽग्रहस्ताः ते ब्राह्मणाः तारयितुम् समर्थाः । २१

(व्यास स्मृति)

भावार्थः—दान लेते समय जो अपने हाथ को आगे बढ़ाने में संकुचित होते हैं, ऐसे ही ब्राह्मण संसार-सागर से पार उतारने में समर्थ हो सकते हैं।

"शूद्रोऽपि शीलसंपन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।" २२

(मनु स्मृति)

भावार्थः—शूद्र भी यदि गुणवान् और श्रेष्ठ चारित्र से संपन्न है, तो वह ब्राह्मण ही है।

"जात्याऽपि ब्राह्मणो नैव संस्कृतस्तु द्विजो भवेत् ।" २३

(मनु स्मृति)

भावार्थः—जाति मात्र से ही कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता है, परन्तु सुसंस्कारों से ही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हुआ करती है।

क्षत्रिय

"पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथ्वीपतिः ।" २४

(कविता कौमुदी)

भावार्थः—मेघ के समान राजा प्राणियों के लिये आधार स्वरूप है ।

"अन्यायैः परिभूतानाम् सर्वेषाम् पार्थिवो गतिः ।" २५

(शंख स्मृति)

भावार्थः—अन्यायों से पीड़ित सभी प्राणियों के लिये राजा ही शरण रूप है । राज्य व्यवस्था ही निर्बलों के लिये आश्रय-स्थान है ।

"दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।" २६

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—दान वृत्ति और शासन शक्ति क्षत्रिय के स्वाभाविक काम हैं ।

"क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानाम् परिपालनम् ।" २७

(विष्णु-स्मृति)

भावार्थः—प्रजा की सब प्रकार से रक्षा करना ही क्षत्रिय का श्रेष्ठ धर्म है ।

"शस्त्रास्त्रधारणं सेवा कर्माणि क्षत्रियस्य तु ।" २८

(पाराशर संहिता)

भावार्थः—क्षत्रिय का काम तो शस्त्र और अस्त्र धारण करके संसार की सेवा करना है।

"अन्यायं कुरुते यदा क्षितिपतिः कस्तं निरोद्धुं क्षमः ?" २९

भावार्थः—जब राजा ही अन्याय करने लग जाय, तो उसको रोकने में कौन समर्थ है ?

"राजा हरति सर्वस्वं तत्र का परिवेदना ?" ३०

भावार्थः—जब राजा ही सर्वस्व अपहरण कर ले, तो उस स्थिति में उत्पन्न होने वाली घोर पीड़ा का क्या कहना ? वह तो अवर्णनीय होती है।

"स्वामी भक्तो जितायासः सेव्यः सेनापतिः श्रिये।" ३१

(विवेक विलास)

भावार्थः—स्वामी भक्त और रण कुशल व्यक्ति को राज्यहित के लिये सेना नायक नियुक्त करना चाहिये।

"मृत्यु र्हसत्यवनिपं रणरंगभीरुम्।" ३२

भावार्थः—संग्राम में कट मरने के डर से डरने वाले राजा पर मृत्यु खिल खिला कर हंसती है।

"व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः।" ३३

भावार्थः—जो राजा समयानुसार क्रोध करना और प्रसन्न होना जानता है, वही जनता द्वारा आदरणीय होता है।

"पश्येत् दारान् वृथा कारान् स भवेत् राजवल्लभः ।" ३४

भावार्थः—*जो पुरुष स्त्रियों को निरर्थक रूप से देखता है, याने उन पर काम-दृष्टि नहीं डालता है, वही राजप्रिय होता है।*

"यथा राजा तथा प्रजा ।" ३५

भावार्थः—*जैसी राज्य-प्रणालि होती है, वैसी ही प्रजा की भी गति विधि हुआ करती है।*

"वैरिमुक्तं च यत् राज्यं सफलं तस्य जीवितम् ।" ३६

भावार्थः—*जो राज्य-व्यवस्था दुश्मनों के भय से परिमुक्त है, वही शासन सफल कहा जा सकता है।*

(६२)

धन-पाप पुराय का आधार
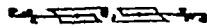
"सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् ।" १

भावार्थः—धन की विपुलता का नाम लक्ष्मी नहीं है, परन्तु जिस धन से परोपकार की साधना हो, वही धन "लक्ष्मी" पद पाने के योग्य है।

"वक्ता श्रोता च यत्रास्ति रमन्ते तत्र संपदः ।" २

भावार्थः—जहाँ पर योग्य बातों के वक्ता भी हों और श्रोता भी हों, वहीं पर धन-वैभव रूप संपत्ति क्रीड़ा करती रहती है।

"साहसे श्रीः प्रतिवसति ।" ३

भावार्थः—जहाँ साहस है, जहाँ कठिनाइयों को झेलने की हिम्मत है, वहीं पर लक्ष्मी अपना निवास किया करती है।

"अकुलीनः कुलीनो वा स श्रियो भाजनं नरः ।" ४

भावार्थः—कुलवान् हो या कुलहीन, जिसके पास धन है, संसार उसी को मनुष्य गिनता है।

"धनं सर्वप्रयोजनम् ।" ५

भावार्थः—संसार के सभी व्यवहारों का आधार धन ही है।

'मातुर्लक्ष्मि ! तव प्रसादवशतो दोषा अपि स्यु गुणाः ।' ६

भावार्थः—हे माता लक्ष्मी ! तुम्हारी कृपा से दोष भी गुण हो जाया करते हैं।

"अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ।" ७

भावार्थः—इस संसार में धन ही मनुष्य का वास्तविक भाई है।

"अर्थो ह्यनर्थो बहुधा मतोऽयम् ।" ८

(हृदय प्रदीप)

भावार्थः—यह धन निश्चय ही अनेक प्रकार के अनर्थ और उपद्रवों को उत्पन्न करने वाला माना गया है।

"सम्पदः स्वप्नसंकाशाः ।" ९

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—संपत्ति और वैभव स्वप्न के पदार्थों की तरह क्षणिक हैं, याने देखते ही देखते नष्ट हो जाने वाले हैं।

"अर्थाः पादरजोपमाः ।" १०

भावार्थः—जैसे चलते समय धूल के रजकण पैरों में लग जाया करते हैं और क्षण भर में ही पुनः अलग हो जाया करते हैं,

वैसे ही धन-संपत्ति भी आया करती है और जाया करती है।

"किं वा धनं नार्थिजनाय यत् स्यात् ।" ११

भावार्थः—उस धन को धन-शब्द से कैसे बोला जाय? जो कि प्रार्थना करने वाले याचक को नहीं प्राप्त हो सके।

"द्रव्येण सर्वे वशाः ।" १२

भावार्थः—धन की महिमा ही ऐसी है कि इसके प्रताप से सभी वशवर्त्ती और अनुयायी हो जाया करते हैं।

"यत्रास्ति लक्ष्मीः विनयो न तत्र ।" १३

भावार्थः—लक्ष्मी में और सद्गुणों में शायद पारस्परिक शत्रुता है, यही कारण हैं कि जहाँ लक्ष्मी है, वहाँ विनय नहीं है।

"सम्पदो विपदा कटाक्षिताः ।" १४

(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—सदुपयोग नहीं करने की दशा में संपत्ति का अंतिम परिणाम निश्चय ही विपतियां हैं।

"जनानुरागप्रभवा हि संपदः ।" १५

भावार्थः—संपत्ति शाली के प्रति धन-वैभव जन साधारण का प्रेम और आकर्षण उत्पन्न कर दिया करता है।

"लक्ष्मीरनुसरति नयगुणसमृद्धिम् ।" १६

"अभोगस्य हतं धनम् ।" २६

भावार्थः—धन-शाली होने पर भी जिसने अपने धन का उपभोग नहीं किया है, उसका धन निर्धन की स्थिति के समान विनष्ट रूप ही है अथवा अभाव रूप ही है।

"न क्लेशेन विना द्रव्यम् ।" २७

(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—नाना कष्ट और संकट उठाये बिना द्रव्य की प्राप्ति नहीं हुआ करती है।

"असंतोषः श्रियो मूलम् ।" २८

भावार्थः—लक्ष्मी से ही लोभ-कषाय बढता है।

"अन्यायेन तु यो जीवेत् सर्वकर्मबहिष्कृतः ।" २९

(पाराशर स्मृति)

भावार्थः—अन्याय से कमाये हुए धन से जो अपना जीवन-व्यवहार चलाता है, वह सभी प्रकार के सदाचारों से रहित है।

" ते सर्वे धन वृद्धानाम् द्वारि तिष्ठंति किंकराः ।" ३०

भावार्थः—वयोवृद्ध, गुणवृद्ध, तपोवृद्ध और विद्यावृद्ध सभी धनवृद्धों के दरवाजे पर दास के समान उपस्थित रहते हैं।

"उदारसत्वं वृणुते स्वयं हि श्रीरिवांगना ।" ३१

भावार्थः—स्त्री जैसे योग्य पुरुष को अपना पति बनाया करती

है, वैसे ही लक्ष्मी भी शक्ति-शाली और उदार पुरुष की सेवा में उपस्थित हो जाया करती है।

"अंतरं नैव पश्यामि निर्धनस्य मृतस्य च।" ३२

भावार्थः—धन हीन की समाज में प्रतिष्ठा नहीं हुआ करती है, इसी लिये कवि कहता है कि मैं निर्धन में और मरे हुए में कोई खास अन्तर नहीं देखता हूँ।

"शशिना तुल्यवंशोऽपि निर्धनः-परिहीयते।" ३३

भावार्थः—जिसका वंश चन्द्रमा के समान निर्मल और निर्दोष हो, किन्तु ऐसा होने पर भी जो निर्धन हो गया हो, तो वह वंश प्रतिष्ठाहीन होकर तिरस्कार प्राप्त करने लग जाता है।

"कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः?" ३४

भावार्थः—इस संसार में ऐसा कौनसा पुरुष है? जो धन-संपत्ति को प्राप्त करके अहंकारी नहीं बना हो?

स्नान-बाह्य शुद्धि

"अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति ।" १

(वशिष्ठ-स्मृति)

भावार्थः—जल द्वारा केवल शरीर के अंगोपांग ही स्वच्छ होते हैं, न कि आत्मा ।

"गृहे चैवोत्तमं स्नानं जलं चैव तु शोधितम् ।" २

(भागवत स्कंध)

भावार्थः—छान करके शुद्ध किये हुए मर्यादित जल द्वारा घर पर ही मर्यादा पूर्वक स्नान करना, यही उचित स्नान है ।

"नैव स्नायात् अनुव्रज्य बन्धून् कृत्वा च मंगलम् ।" ३

(विवेक विलास)

भावार्थः—बन्धु-जनों को विदा देकर और मंगल-कार्य करके कभी स्नान नहीं करना चाहिये ।

"तरुच्छन्ने सशैवाले न स्नानं युज्यते जले ।" ४

(विवेक विलास)

भावार्थः—*जो पानी वृक्ष से ढका हो अथवा शैवाल नामक घास विशेष से युक्त हो, उस पानी में स्नान करना उचित नहीं है।*

"न गंभीरजलाशये (स्नायात्)।" ५

(महाभारत विराट पर्व)

भावार्थः—*गहरे तालाब में घुस कर स्नान नहीं करना चाहिये।*

"कूपे ह्रदेऽधमं स्नानं नद्यामेव च मध्यमम्" ६

(भागवत उत्तरार्ध स्कंध)

भावार्थः—*कुए में और तालाब में स्नान करना अधम स्नान है। नदी में नहाना मध्यम स्नान कहा गया है।*

"वाप्यां च वर्जयेत् स्नानं तटाके नैव कारयेत्।" ७

(भागवत उत्तरार्ध स्कंध)

भावार्थः—*बावड़ी में स्नान करना त्याग दो और जलाशय में कभी भी स्नान मत करो।*

"न प्रशस्तं निशि-स्नानम्।" ८

(महाभारत विराट पर्व)

भावार्थः—*रात्रि में स्नान करना श्रयस्कारी याने शुभकारी नहीं होता है।*

"न शुद्ध्यन्ति दुराचाराः स्नातास्तीर्थ-शतैरपि।" ९

(स्कन्द पुराण काशी खंड)

भावार्थः—सैकड़ों तीर्थ-स्थानों पर स्नान करने से भी दुश्चारित्र से उत्पन्न पाप बिना फल भोगे शुद्ध नहीं हो सकता है।

"दुष्टमन्तर्गतं चित्तं-स्नानान्न शुद्ध्यति।" १०

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—कषाय से दूषित चित्त तीर्थ-स्थानों पर स्नान करने से भी पवित्र नहीं हुआ करता है।

"आत्मानं स्नापयेत् नित्यं ज्ञाननीरेण चारुणा।" ११

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—ज्ञान रूप सुन्दर और निर्दोष जल से ही सदा अपनी आत्मा को स्नान करावे।

"न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा"। १२

भावार्थः—अन्तर आत्मा बाह्य पानी से पवित्र नहीं हुआ करता है। केवल जल का प्रयोग करने मात्र से ही कषायों की क्षीणता नहीं हुआ करती है।

"मुच्यते पुरुषः पापात् यथा स्नातः क्षमादिषु।" १३

(पाराशर संहित)

भावार्थः—क्षमा आदि सात्विक और निर्मल क्रियाओं में स्नान करने से याने इनका आचरण करने से ही पुरुष पापों से मुक्त हो जाता है। ऐसी मुक्ति बाह्य तीर्थों में स्नान करने से नहीं प्राप्त हो सकती है।

"स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।" १४

(भागवत स्कन्ध)

भावार्थः—इन्द्रिय दमन रूप स्नान जिसने किया है, उसी का स्नान सच्चा स्नान है। क्योंकि ऐसे स्नान के द्वारा ही शरीर की और आत्मा की शुद्धि हो सकती है।

"शौचं तत्तदहो कुरुष्व कुरुते तेषाम् यदुच्छेदनम्।" १५

(संवेग द्रुमकंदली)

भावार्थः—हे आत्मन्! जिन जिन शौच-क्रियाओं से तुम्हारे कषायों की क्षीणता होती हो, उन उन निर्दोष शौच-क्रियाओं में प्रवृत्ति करो।

"जलादिशौचं यत्रेदं मूढविस्मापनं हि तत्।" १६

(आचार्य उमा स्वाति)

भावार्थः—इस संसार में जलादि द्वारा जो पवित्रता मानी जा रही है, वह तो मूर्खों का चित्तरंजन मात्र है।

"क्षणिकाः सर्वसंस्काराः।" १७

(विवेक-विलास)

भावार्थः—समस्त बाह्य संस्कार अल्पकालीन ही हुआ करते हैं।

"सर्वेषामिव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।" १८

(मनु-स्मृति)

भावार्थ.—*समस्त शुद्धियों में अर्थ की शुद्धि श्रेष्ठ कही गई है।*

पापध्यानकषायाणाम् निग्रहेण शुचि र्भवेत् ।" १६

(पद्म-पुराण)

भावार्थः—*आर्त्त-रौद्र आदि दुष्ट ध्यानों का और क्रोध आदि चारों कषायों का निग्रह करके पवित्र होना चाहिये यही सर्वोत्तम पवित्र स्नान है।*

प्रश्न समूह-ज्ञान की पहेलियां
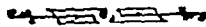
"को मूकः ? यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति ।" १

भावार्थः—गूंगा कौन है ? जो समय पर उचित्त रीति से प्रिय बोलना नहीं जानता है ।

"किम् सौख्यम् ? अरोगिता जगति जंतोः ।" २

भावार्थः—सुख क्या है ? उत्तर-प्राणियों का स्वस्थ रहना ही रोग रहित रहना ही सर्वोत्तम सुख है ।

'अहर्निशं किं परिचिंतनीयम् ? संसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्वे ।' ३

भावार्थः—रात दिन किसकी विचारणा करते रहना चाहिये ? प्रथम तो संसार के अनित्यता रूप मिथ्यात्व की और द्वितीय कल्याण कारी आत्म तत्त्व की ही विचारणा करते रहना चाहिये ।

"अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ?" ४

भावार्थः—पत्थर जैसे कठोर पदार्थ द्वारा रुदन करने पर भी क्या वज्र के समान निर्दय हृदय पिघल सकता है ?

"का विद्या कवितां विना ?" ५

भावार्थः—कविता के अभाव में विद्या का महत्त्व क्या है ?

"किम् जीवितम् साधुविरोधीवद्वै ? ६

भावार्थः—जो सज्जन पुरुषों के प्रति वैर-भावना रखता है, उसका जीवन क्या अर्थ रखता है ? अर्थात् निरर्थक है ।

"अधोऽधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते ?" ७

भावार्थः—नीचे नीचे की ओर ही दृष्टि पात करते रहने से किस की महिमा वृद्धिगत नहीं हुआ करती है ? अर्थात् गुणों का अन्वेषण करते रहने से और नम्रता धारण करने से उन्नति का मार्ग खुल जाता है ।

"किमकार्यम् कदर्याणाम् ?" ८

भावार्थः—निर्दय और नृशंस के लिये अकार्य कौनसा हुआ करता है ?

"नग्न क्षपणके देशे रजकः किं करिष्यति ?" ९

भावार्थः—जिसके देश में नग्न व्यक्ति रहते हों, वहाँ पर धोबी क्या करेगा ?

"चन्द्रस्वरूपं निजचक्षुषैव ज्ञातव्य-
मन्यैरवगम्यते किम् ।" १०

भावार्थः—अपनी ही आँख से चन्द्र का स्वरूप भली भाँति

जाना जा सकता है, दूसरों की आँखों से यह कैसे जाना जा सकता है ? अर्थात् स्वानुभूति ही ज्ञान का ठोस स्वरूप है ।

"श्रीकृष्णस्य कृपालवो यदि भवेत् कः कं निहन्तुं क्षमः ।" ११

भावार्थः—*यदि भगवान् की कृपा है तो कौन किसको पीड़ा पहुंचाने में समर्थ हो सकता है ?*

"बलवानपि निस्तेजः कस्य नाभिभवास्पदम् ?" १२

भावार्थः—*जो बलवान् होते हुए भी यदि तेज से हीन है, तो ऐसा व्यक्ति किसके द्वारा पराजित होने योग्य नहीं है ? अर्थात् तेज के सामने बल हीन कोटि का है ।*

"यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा बांधवैः ।" १३

(शुक बोध)

भावार्थः—*यदि यज्ञ में होमा हुआ जीव स्वर्ग में जाता है, तो तू अपने माता, पिता, पुत्र और बन्धु-बान्धवों को यज्ञ में क्यों नहीं होम देता है ?*

"कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ।" १४

(बृहद् नारदीय पुराण)

भावार्थः—*निर्बल के प्रति कौन मित्रता की भावना रखता है ?*

"संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ?" १५

भावार्थः—*मकान में आग लगने पर उस समय में कुआ*

खोदना क्या बुद्धिमत्ता पूर्ण प्रयत्न है ? अर्थात् दीर्घ दृष्टि से कार्य करते रहना चाहिये।

"कः परः प्रियवादिनाम् ?" १६

भावार्थः—मधुर बोली बोलने वालों के लिये अपना कौन है ? और पराया कौन है ?

"किमिष्टमन्नं खर—सूकराणाम् ?" १७

भावार्थः—क्या गधे को और ग्राम सूअर को अन्न प्रिय लगता है ? अर्थात् नीच वृत्ति वाले नीचता की ओर ही प्रवृत्ति किया करते हैं।

"चौरे गते वा किमु सावधानम् ?" १८

भावार्थः—चोर के चले जाने पर बाद में सावधानी रखना किस काम की ?

"जठरं को न बिभर्ति केवलम् ?" १९

भावार्थः—पेट भरने वाले तो सभी होते हैं, परन्तु सत्कार्य करने वाले विरले ही होते हैं।

"जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः।" २०

भावार्थः—अधिकांश पुरुषों द्वारा मान्य सिद्धान्त संसार में किसके लिए पूजनीय नहीं होते हैं ? अर्थात् सभी के लिए मान्य होते हैं।

"निर्वाणदीपे किमु तैलदानम् ?" २१

भावार्थः—दीपक के बुझ जाने पर तेल पूरना किस काम का है ? अर्थात् संकट के समय में बुद्धिमत्ता बतलाना ही सार्थक है।

"पयोगते किं खलु सेतुबन्धः ?" २२

भावार्थः—पानी की बाढ से उत्पन्न हानि के पश्चात् बांध बांधने का क्या अर्थ है ?

"पुरुषा अपि बाणा अपि गुण च्युताः कस्य न भयाय ?" २३

भावार्थः—गुणों से पतित पुरुष और धनुष से छूटे हुए बाण किस को भयप्रद नहीं हुआ करते हैं ? अर्थात् इन दोनों से सभी को हानि पहुंचा ही करती है। यहाँ पर गुण शब्द से सद्गुण और धनुष की डोरी दोनों का संबंध है।

"अंकमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं पौरुषम् ?" २४

भावार्थः—गोद में सोये हुए को मारने में कौनसा पुरुषार्थ है ? अर्थात् विश्वासघात करने के काम को पुरुषार्थ का नाम कैसे दिया जा सकता है ?

"अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ?" २५

भावार्थः—लोहा सरीखा अति कठोर पदार्थ भी तपाने पर कोमलता धारण कर लेता है, तो फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? अर्थात् मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रयत्न करने पर दुर्जन भी सज्जन बनाया जा सकता है।

"अधर्मविषवृत्तस्य पच्यते स्वादु किं फलम् ?" २६

भावार्थः—अधर्म रूप विष वृक्ष के कड़ुए फल पकाए जाने पर भी क्या मीठे हो सकते हैं ? अर्थात् प्रकृति जात स्वभाव में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

"किमलभ्यं भवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ?" २७

भावार्थः—परम पिता परमात्मा के प्रसन्न होने पर इस संसार में कौनसी ऐसी वस्तु रह जाती है, जो कि नहीं प्राप्त की जा सके ? अर्थात् मोक्ष सरीखा दुर्लभ पथ भी प्राप्त किया जा सकता है।

"भ्रष्टस्य का वा गतिः ?" २८

भावार्थः—पतित के लिए सिवाय दुर्गति के और दूसरी गति कौनसी हो सकती है ? अर्थात् पतित के लिये विनाश का ही मार्ग खुल जाया करता है।

भोजन-जीवन का आवश्यक अंग

"धन-क्षये वर्धति जाठराऽग्निः।" १

भावार्थः—निर्धन अवस्था प्राप्त होने पर भूख भी बढ़ जाया करती है।

"आहाराज्जायते व्याधिः।" २

(संवर्त्त स्मृति)

भावार्थः—अधिक आहार करने से रोग उत्पन्न हुआ करते हैं।

"बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते।" ३

भावार्थः—कडी भूख लगने पर भी भूखों के द्वारा व्याकरण-शास्त्र नहीं खाया जाता है। अर्थात् विविध ज्ञान का अस्तित्व भूख को नहीं मिटा सकता है।

"भक्षितेनापि किं तेन तृप्तिः येन न जायते।" ४

भावार्थः—उन खाद्य पदार्थों को खाने से क्या लाभ है ? जिनके खाने से तृप्ति नहीं हो।

"बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्।" ५

भावार्थः—भूखे प्राणी को कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

"सा माम् पीड़यति सर्वदोपजननी प्राणप्रहारी क्षुधा।" ६

(मार्कण्डेय पुराण)

भावार्थ—सभी प्रकार के दोषों को उत्पन्न करने वाली और प्राणों तक पर चोट करने वाली यह भूख मुझे पीड़ा पहुंचाती है।

"किं किं यन्न करोति निन्दितमपिप्राणी क्षुधापीड़ितः ?" ७

भावार्थः—भूख से सताया हुआ प्राणी कौन कौन से घृणित काम नहीं करता है ? अर्थात् सब कुछ करने के लिये तैयार हो जाता है।

"बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ?" ८

(काव्य रत्नि मङ्गल)

भावार्थः—भूखा आदमी कौनसा पाप नहीं करता है।

"यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा।" ६

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—सदा ही जैसा अन्न खाया जाता है, वैसी ही संतान उत्पन्न हुआ करती है।

"अपवित्रोऽतिगार्द्ध्यश्च न भुंजीत् विचक्षणः।" १०

(विवेक विलास)

भावार्थः—प्रतिभा संपन्न पुरुष अपवित्र अवस्था में और अति लोलुपता से भोजन नहीं करे।

"कदाचिदपि नाश्नीयात् ऊर्ध्वीकृत्य च तर्जनीम्।" ११

(विवेक विलास)

भावार्थः—तर्जनी अंगुली को ऊची करके कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए।

वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।" १२

(कात्यायन)

भावार्थः—श्वासोच्छ्वास के आनेजाने के लिये पेटकी अन्नकी थैली का चौथा भाग खाली रक्खे। अर्थात् भूख से कुछ कम ही खावे।

"हितं मितं सदाऽश्नीयात् यत् सुखेनैव जीर्यते।" १३

(अत्रि स्मृति)

भावार्थः—सदैव हितकारी और परिमित भोजन ही करे। जिससे कि वह सुख पूर्वक पच जाय।

"अन्नसमं रत्नं न भूतं न भविष्यति।" १४

(वैद्य रस राज समुच्चय)

भावार्थः—अन्न एक विशेष कोटि का रत्न है, जिसकी तुलना अपेक्षा विशेष से किसी अन्य के साथ न तो की जा सकी है, और न की जा सकेगी।

"मधुरमपि बहु खादितमजीर्णं भवति।" १५

भावार्थ.—बहुत अधिक मात्रा में खाया हुआ मीठा पदार्थ भी अजीर्ण अवस्था पैदा कर दिया करता है।

"पूर्णे सर्वे जठरपिठरे प्राणिनाम् संभवन्ति ।" १६
(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—खाने-पीने की पूर्ण व्यवस्था होने पर ही प्राणियों को अन्य कार्य सूझा करते हैं ।

"अजीर्णप्रभवा रोगाः ।" १७

भावार्थः—प्राय. विविध रोग अजीर्ण से ही उत्पन्न हुआ करते हैं ।

"वर्जनीया महाराजन् ! निशीथे भोजनक्रिया ।" १८
(महाभारत शांति पर्व)

भावार्थः—हे महाराज ! रात्रि में भोजन करना मना किया हुआ है ।

"(रात्रौ) अन्नं मांससमं प्रोक्तम् ।" १६
(मार्कण्डेय ऋषि)

भावार्थः—रात्रि-भोजन मांसाहार के समान कहा गया है ।

"स्नानं कृत्वा जलैः शीतैः भोक्तुम् उष्णम् न युज्यते ।" २०
(विवेक-विलास)

भावार्थः—ठंडे पानी से स्नान करके उसके पश्चात् उष्ण भोजन करना उचित नहीं है । अर्थात् आहार-विहार का सदैव ध्यान रखना चाहिये ।

(६५)

मृत्यु-जीवन की अवश्यंभावी घटना
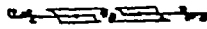
"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ।" १

(भगवद् गीता)

भावार्थः—*जो जन्मा है, वह अवश्य ही मरेगा।*

"जन्मिनाम् प्रकृति मृत्युः ।" २

(महावीर चरित्र)

भावार्थः—*जो जन्म लेते हैं, वे निश्चय ही मरते हैं।*

"क्रीडन्नप्येप कालः कवलयति बलात् किन्तु दूराद्विकृष्य ।" ३

(संवेग-द्रुम-कंदली)

भावार्थः—*अरे ! देखो और विचार करो, यह मृत्यु अकस्मात ही एवं दूर से ही प्राणियों के प्राणों को बलपूर्वक खींच करके निगल जाती है।*

"मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम् ।" ४

(कालिदास)

भावार्थः—*मरना प्राणियों का स्वभाव है। अर्थात् मृत्यु एक स्वाभाविक घटना है।*

'यस्मिन् दण्डधरः स्मरिष्यति सखे! कोऽप्यस्ति सोऽपि क्षणः।' ५

(संवेग द्रुम कंदली)

भावार्थः—*अरे प्रिय मित्र! वह क्षण कितना विचित्र होगा, जब कि यमराज तुम्हें स्मरण करेगा।*

"दृष्टः श्रुतो वाऽस्ति यमाज्ञावंचको बली।" ६

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*क्या कभी किसी ने ऐसा बल-शाली प्राणी भी देखा है अथवा सुना है, जो कि यमराज की आज्ञा को भी विफल कर सके?*

"कालो न यातो वयमेव याताः।" ७

(भर्तृहरि)

भावार्थः—*समय समाप्त नहीं हुआ है, किन्तु हम ही अर्थात् प्राणी मात्र ही समाप्त हो गये हैं, याने मृत्यु के समीप चले गये हैं।*

"कः कालस्य न गोचरान्तर्गतः?" ८

भावार्थः—*काल की दृष्टि में कौन नहीं गया है? अर्थात् मृत्यु से कौन अछूता रह गया है?*

"सर्वः कालवशेन नश्यति।" ९

भावार्थः—सभी समय आने पर मृत्यु के वश-वर्त्ती हो जाया करते हैं।

"साम्येन ग्रसतेऽन्तकः।" १०

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—समान भाव से मृत्यु सभी को निगलती रहती है।

"कालो हि दुरतिक्रमः।" ११

भावार्थः—निश्चय ही काल अजेय है। अर्थात् संसार-अवस्था में मृत्यु अवश्यंभावी है।

"यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे तावत् कालभयं कुतः।" १२

भावार्थः—जब तक शरीर में (स्थिरता कारण) वीर्यबिन्दु अवशेष हैं, तब तक काल का भय कहाँ?

"कालः करालाननः।" १३

—पद्मानन्द

भावार्थः—काल अर्थात् मृत्यु भयंकर मुख वाली है।

"भय-सीमा मृत्युः।" १४

भावार्थः—भय की अंतिम सीमा मृत्यु है।

"हरति निमेषात् कालः सर्वम्।" १५

भावार्थः—क्षण भर में ही मृत्यु सर्वनाश उपस्थित कर सकती है।

"मरणान्तं हि जीवितम् ।" १६

भावार्थः—अन्ततोगत्वा जीवन मृत्यु के रूप में ही परिणत होने वाला है ।

"को दीर्घरोगो ? भव एव साधो !" १७

भावार्थः—हे साधु ! रोगों की परम्परा क्या है ? जन्म मरण ही रोगों की परम्परा है ।

"यावज्जननं तावन्मरणम् ।" १८

—शंकराचार्य

भावार्थः—जब तक जन्म लेने का सिलसिला चालू है, तब तक मृत्यु का सिलसिला भी चालू ही रहेगा ।

"यमस्तु हरति प्राणान्, वैद्यः प्राणान् धनानि च ।" १९

भावार्थः—यमराज तो सिर्फ प्राणों का ही हरण किया करता है, किन्तु वैद्य-हकीम-डाक्टर तो प्राण और धन दोनों का ही हरण किया करते हैं ।

"कालस्य कुटिला गतिः ।" २०

भावार्थः—समय का चक्र बड़ा ही विषम है ।

"संमीलने नयनयोर्न हि किंचिदस्ति ।" २१

भावार्थः—धन, वैभव एवं सुख-सामग्री का अस्तित्व तभी

तक है, जब तक कि दोनों आँखें बंद न हो जायें। अर्थात् मृत्यु आते सब कुछ नष्ट हो जाने वाला है।

"इन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्येते यन्मृत्यो यान्ति गोचरम्।" २२
(योग-शास्त्र)

भावार्थः—इन्द्र, उपेन्द्र आदि सभी के मृत्यु द्वारा प्राणान्त हुआ करते हैं।

"नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः।" २३

भावार्थः—मृत्यु सदैव पास में ही खड़ी है, ऐसा समझ कर धार्मिक प्रवृत्ति करते रहना चाहिये।

"न हि मृत्युः प्रतीक्षते कृतं चास्य न वाकृतम्।" २४
(श्राद्ध विधि)

भावार्थः—इसने अपना कार्य कर लिया है, अथवा नहीं कर लिया है, ऐसी प्रतीक्षा मृत्यु नहीं किया करती है।

"कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि।" २५

भावार्थः—सदैव नाश की ओर ही प्रवृत्त होने वाला है हाथ जिसका, ऐसा यह काल (मृत्यु) प्राणियों को दूर से ही पकड़ लेता है।

"व्यर्थीभवन्ति सर्वाणि, विपक्षे देहिनाम् यमे।" २६
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—यमराज के रुष्ट होते ही प्राणियों की समस्त कामनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं।

"दुरदृष्टवृष्टिविरसो देहो गेहं पतत्येव।" २७

(सुबोध पद्माकर)

भावार्थः—खोटे, भाग्य रूप वर्षा का कटुफल रूप विकृत जल शरीर रूप घर को नष्ट ही कर देता है।

"वैद्यराज ! नमस्तुभ्यं यमराजसहोदर !" २८

भावार्थः—हे वैद्यराज ! तुम्हें नमस्कार है, क्योंकि तुम यमराज के छोटे भाई हो।

"क्षितितले किं जन्म कीर्त्तिम् विना ?" २९

भावार्थः—पृथ्वी पर यश हीन जन्म किस काम का ? यदि यश नहीं है तो ऐसे जीवन को धिक्कार है।

"स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।" ३०

(भर्तृहरि)

भावार्थः—जिसके उत्पन्न होने से वंश उन्नति प्राप्त करे, उसी का उत्पन्न होना सार्थक है, अन्यथा जन्म-मरण तो प्रकृति की स्वाभाविक घटना है ही।

"परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।" ३१

भावार्थः- इस परिवर्तन शील संसार में कौन नहीं मरता है

(६६)

दुष्ट-परपीड़क
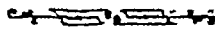
"कार्यभ्रंशो हि मूर्खता ।" १

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—कर्त्तव्य से विमुख होना ही मूर्खता है ।

"वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः ।" २

भावार्थः—परिपक्व आयु वाला हो जाने पर भी दुर्जन दुर्जन ही रहता है । दुष्ट अपनी दुष्टता का परित्याग नहीं किया करता है ।

"न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म निदुषाम् ।" ३

भावार्थः—हे ईश्वर ! विद्वानों के लिये विपत्ति के भवन रूप दुष्ट पुरुषों की रचना तू कभी मत करना । दुष्ट पुरुष अकारण ही सज्जन पुरुषों के प्रति दोष लगाया करते हैं ।

"क्षिपति सकलं कल्याणानां कुलं खल-संगमः ।" ४

—क्षेमेन्द्र कवि

भावार्थः—दुष्ट पुरुषों की संगति संपूर्ण सुख-राशि का नाश कर देती है ।

"दोषग्राही गुणत्यागी पल्लोलीव हि दुर्जनः ।" ५

भावार्थः—दोषों को ग्रहण करना और गुणों का त्याग करना यही वृत्ति दुर्जन की होती है। अतएव दुर्जन जोंक कीड़े के समान है।

"निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः ।" ६

भावार्थः—दुष्ट पुरुष स्वभाव से ही पापमय मन वाले और मलिन हृदय वाले होते हैं।

"निपातनीया हि सतामसाधवः ।" ७

भावार्थः—दुष्ट पुरुष सज्जन पुरुषों को भी अवनति की ओर ही ले जाने वाले होते हैं।

"नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः ।" ८

भावार्थः—नीच अर्थात् कुटिल और पातकी को आश्रय देना बडे आदमियों के लिये भी अपमान का कारण हुआ करता है।

"नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव ।" ९

भावार्थः—नीच पुरुष किसी भी काम को करने के लिए कहते रहते हैं, परन्तु कुछ भी नहीं करते हैं। जबकि सज्जन पुरुष काम के विषय में कुछ भी नहीं बोलते हैं, परन्तु उसको संतोषजनक रीति से करके बतला देते हैं।

"न हि तादृग् ध्वनिः स्वर्णे यादृक् कांस्ये प्रजायते ।" १०

भावार्थः—कांसी के वर्तन को जरा भी छू लेने पर कितने जोर का झन झनकार शब्द होता है, जब कि सोने जैसी बहुमूल्य धातु में परम शांति रहती है। इतना ही अन्तर दुर्जन और सज्जन में भी समझना चाहिये।

"मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ?" ११

(भर्तृहरि)

भावार्थः—यदि सर्प एक जाज्वल्यमान मणि से शोभायमान हो, तो भी क्या प्राण-घातकता जैसी भयकरता उसमें नहीं है ? अवश्य है। वैसे ही संपत्तिशाली दुष्ट की दुष्टता को भी समझ लेना चाहिये।

"दुष्टात्मा नैव भिद्यते।" १२

(सुभाषित संचय)

भावार्थः—दुष्ट पुरुष के हृदय का विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। अर्थात् उसके हृदय की सभी परिस्थितियों को नहीं जाना जा सकता है।

"न शुद्ध्यति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः।" १३

(दक्ष-स्मृति)

भावार्थः—जिनकी विचार-धारा पवित्र नहीं है, ऐसे दुष्ट पुरुष शुद्ध नहीं हो सकते हैं।

"मात्सर्येण दुरात्मकोऽपि सुजनं दृष्ट्वा परं हासते।" १४

भावार्थः—सज्जन पुरुष को देख करके दुष्ट पुरुष उसके गुणों से ईर्ष्या करता हुआ उसकी हसी मजाक किया करता है।

"सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति।" १५

(हितोपदेश)

भावार्थः—मच्छर की सभी प्रवृत्तियाँ दुष्ट पुरुष के जीवन-चरित्र के अनुसार ही हुआ करती हैं।

"अशीलस्य हतं कुलम्।" १६

भावार्थः—दुराचारी का कुल कलंकित होकर नष्ट हो जाता है।

"खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।" १७

भावार्थः—दुर्जन पुरुष दूसरों में रहे हुए सरसों के दाने के समान सूक्ष्म दोष रूप छिद्र को भी अपनी दुष्ट दृष्टि से देख लेता है।

"उष्णो दहति चांगारः शीतः कृष्णायते करम्।" १८

(हितोपदेश)

भावार्थः—जलता हुआ कोयला हाथ को जला देता है, और ठंडा होने पर हाथ को काला कर देता है। यही दशा दुर्जन की भी है। यदि दुर्जन का साथ हो जाय तो क्लेश और कलह पैदा करता है, एवं बिछुड़ने पर अकारण ही कलंक लगा देता है।

"स्तोतव्यस्त्वं बधिर! न गिरां यः खलानां शृणोति।" १९

भावार्थः—हे सुनने की शक्ति से रहित पुरुष! तुम प्रशंसा

करने के योग्य हो, क्यों कि तुम निर्लज्ज दुष्ट पुरुषों के पाप पूर्ण वचनों को नहीं सुनते हो।

"लब्ध्वापि संपदो दीनो हीनत्वं नैव मुंचति।" २०

भावार्थ—तृष्णा से पीड़ित और सद्गुणों से हीन दीन पुरुष असाधारण सपत्ति प्राप्त करके भी अपनी तुच्छ और नीच प्रवृत्तियों को नहीं छोड़ा करता है।

"विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि।" २१

भावार्थः—दया हीन दुष्ट पुरुषों से गुण-शील सज्जन पुरुषों को भी अकारण ही कलंक लगाये जाने का भय सदा ही बना रहता है।

"अनार्यजुष्टेन पथा प्रवृत्तानाम् शिवं कुतः?" २२

भावार्थः—अनार्य पुरुषों के जैसी ही कुत्सित प्रवृत्ति करने वालों के लिये वास्तविक सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

"बन्धुः को नाम दुष्टानाम्?" २३

भावार्थः—दुष्टों के लिये बंधु-बाधव का क्या अर्थ हुआ करता है? अर्थात् दुष्ट तो सभी के प्रति दुष्टता का ही वर्ताव किया करता है।

दुर्जनस्य विभवं दिने दिने वर्धमानमतिवर्धते मदः। २४

भावार्थः—दुर्जन के पास प्रत्येक दिन बढता हुआ धन-वैभव उसके अहंकार को ही निरंतर बढ़ाता रहता है।

"सर्वांग-दुर्जनो विषम् ।" २५

भावार्थः—*दुष्ट पुरुष के रग-रग में विष होता है।*

"अहो ! सुसदृशी चेष्टा तुलायष्टेः खलस्य च ।" २६

(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—*अरे ! परम आश्चर्य की बात है कि दुष्ट की वृत्ति और तराजू की लकड़ी की वृत्ति सर्वथा समान है। दोनों ही अन्याय का बिना विचार किये ही अधिकता की ओर ही झुक जाया करते हैं।*

"मन्ये, दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धाताऽपि भग्नोद्यमः ।" २७

भावार्थः—*अन्य का तो कहना ही क्या है ? स्वयं विधाता भी ब्रह्मा भी-दुष्ट पुरुष की चित्त वृत्ति को परिवर्तन करने में असफल ही रहे हैं, ऐसी मेरी मान्यता है।*

"अपंथानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुंचति ।" २८

(सुभाषित सचय)

भावार्थः—*कुपथगामी को तो सगा भाई भी तिलांजलि दे देता है। तात्पर्य यह है कि अनिष्ट-प्रवृत्ति करने वाले का साथ कौन दिया करता है ?*

"निष्णातोऽपि च वेदान्ते वैराग्यं नैति दुर्जनः । २९

भावार्थः—*दुष्ट पुरुष वेदान्त-दर्शन का याने अद्वैतवाद जैसे सिद्धान्त का धुरन्धर विद्वान् होने पर भी वैराग्य का अनुरागी नहीं होता है।*

"दुर्जनस्यार्जितं वित्तं भुज्यते राजतस्करैः ।" ३०

भावार्थः—दुर्जन का संचित धन या तो राजा छीन लेता है, अथवा चोर चुरा ले जाते हैं। दुष्टता का ऐसा परिणाम होना स्वाभाविक ही है।

"तत् को नाम गुणो भवेत् सगुणिनाम् यो दुर्जनैः नांतिकः।" ३१

भावार्थः—गुणियों का वह कौनसा गुण है, जो कि दुर्जनों में नहीं है? अर्थात् सज्जन में और दुर्जन में समान शक्तियाँ होने पर भी एक तो पर-हित में उनका उपयोग करता है, जब कि दूसरा पर-पीड़न में उनका उपयोग किया करता है।

"सद् बोधात्द्रविन दुष्ट-हृदयं, बोधस्य किं दूषणम् ?" ३२

भावार्थः—यदि नैतिक और धार्मिक उपदेशों से भी दुष्ट का हृदय नहीं पिघलता है, अथवा नहीं सुधरता है, तो ऐसी स्थिति में उन सत् - शिक्षाओं का क्या दोष है?

"प्रासादशिखरारूढः काकः किम् गरुडायते ?" ३३

भावार्थः—उच्च राज्य महल की चोटी पर चढ़ कर बैठा हुआ कौआ क्या गरुड़ बन जाया करता है? नहीं, वैसे ही दुष्ट पुरुष के संपत्ति शाली हो जाने पर क्या वह साधु पुरुष कहा जा सकता है? कदापि नहीं।

(६७)

संबंध-एक कृत्रिम व्यवस्था

"एवं संसार संबंधो मायामोहसमन्वितः ।" १

(पद्म-पुराण)

भावार्थ—यह सपूर्ण सांसारिक सबंध माया के मोह से, तृष्णा और विषय-भोग की आसक्ति से एवं अज्ञानता से संबंधित है ।

"क्षिप्त्वा त्वत् कायमेनं हुतभुजि सुजनाः

किं स्मरिष्यन्त्यपि त्वाम् ?" २

(संवेग द्रुम कंदली)

भावार्थः—मृत्यु हो जाने पर तुम्हारे इस शरीर को अग्नि में जलाने के बाद क्या ये बधु-बांधव तुम्हें स्मरण भी करेंगे ?

"संयोगा विप्रयोगान्ताः मरणान्तं हि जीवितम् ।" ३

(कात्यायन स्मृति)

भावार्थः—संयोग के अंत में वियोग है; और जन्म भी मृत्यु से सम्बन्धित है ।

"संयोगाः स्वप्नसन्निभाः ।" ४

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—स्वप्न में दिखलाई पड़ने वाले पदार्थ जैसे शून्य रूप और क्षणिक होते हैं, वैसे ही सभी पदार्थों के संयोग को भी समझना चाहिये।

"वस्तुजातमिदं मूढ़ ! प्रतिक्षणविनश्वरम् ।" ५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—हे मोह-ग्रस्त अज्ञानी ! विश्व के सभी पदार्थ प्रत्येक क्षण विनाश की ओर ही कदम बढ़ाते रहते हैं।

"अस्थिराः पुत्रदाराश्च ।" ६

भावार्थः—पुत्र और पत्नी सभी शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाले हैं।

"संगमा विगमदोषदूषिताः ।" ७

(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—संयोग वियोग के दोष से विकृत है।

"सुजनसुतशरीरादीनि विद्युच्चलानि ।" ८

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—बंधु-बांधव, पुत्र, शरीर, इन्द्रिय-भोग, आदि सभी भौतिक पदार्थ बिजली के प्रकाश के समान क्षणिक हैं। तथा देखते ही देखते तत्काल नष्ट हो जाने वाले हैं।

"मा शोकं कुरुतामनित्ये सर्वस्मिन् प्राणधर्मणि ।" ९

(कात्यायन-स्मृति)

भावार्थः—*समस्त प्राणियों के अनित्य होने से तू किसी के भी वियोग का शोक मत कर।*

"नायाता नैव यास्यंति केनाऽपि सह योषितः ।" १०

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*स्त्रियाँ आज दिन तक न तो किसी के साथ गई हैं और न भविष्य में ही किसी के साथ जावेंगी।*

"चिन्तयति तातनिधनं पुत्रो द्रव्याधीशताहेतोः ।" ११

—पद्मानन्द

भावार्थः—*इस स्वार्थ से परिपूर्ण संसार की विचित्रता देखो "धन आदि का स्वामी बनने के लिये पुत्र पिता की मृत्यु चाहता है।"*

"चलेष्टजनसंगेऽस्मिन् भवे सौख्यं न किंचन ।" १२

भावार्थः—*जहाँ प्रिय जनों का संयोग भी क्षणिक है, याने नाशशील है, ऐसे इस संसार में सुख जैसी कोई वस्तु नहीं है।*

"यत् परित्यज्य गन्तव्यं तत् स्वकीयं कथं भवेत् ?" १३

भावार्थः—*जिसको छोड़ करके जाना पड़े, तो भला बतलाइयेगा कि—"वह अपना कैसे हो सकता है ?"*

"तत्रैक्यं बन्धुभिः सार्धं वहिरंगै कुतो भवेत् ?" १४

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—निश्चय में आत्मा और शरीर भिन्न २ ही हैं, ऐसी स्थिति में सर्वथा भिन्न और बाहिर रहे हुए—अलग रहे हुए—बंधु-बांधवों के साथ अभिन्नता याने एकरूपता कैसे हो सकती है ?

"गगननगरकल्पं संगमं वल्लभानाम् ।" १५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—आकाश में बादलों द्वारा निर्मित नगर जैसी दिखलाई पड़ने वाली स्थिति जैसे क्षणिक होती है, वैसे ही मोह से और आसक्ति से प्रिय मालूम पड़ने वाले पदार्थों का भी संयोग क्षणिक तथा नाशवान् ही होता है ।

सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत् कस्य को वल्लभः ?" १६

—माघ कवि

भावार्थः—समस्त प्राणी अपने २ स्वार्थ को लेकर ही एक दूसरे के साथ प्रेम किया करते हैं, अतः कौन किसको प्रिय है ? अर्थात् पारस्परिक प्रेम एक कृत्रिम व्यवस्था है, और जिसका आधार केवल स्वार्थ ही है ।

"परोऽपि हितवान् बन्धुः ।" १७

भावार्थः—पर जन होने पर भी जो वास्तव में हितैषी है, उसे अपना बन्धु ही समझना चाहिये । बन्धु-भावना पारस्परिक हित दृष्टि पर ही आधारित है ।
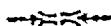
(६८)

संसार-विचित्र पहेली

"संसारो दुःखानामेकमास्पदम् ।" १

भावार्थः—संसार ही दुःखों का एक स्थान है। संसार में दुःख ही दुःख है, सुख तो केवल काल्पनिक है।

"प्रदीप्तांगारकल्पोऽयं संसारः सर्वदेहिनाम् ।" २

(त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र)

भावार्थः—सभी प्राणियों के लिये यह संसार धधकते हुए अंगारे के समान है।

"अर्थार्थी जीव-लोकोऽयम् ।" ३

भावार्थः—यह चराचर संसार अपने अपने स्वार्थ से अनुबंधित है।

"चित्राः संसारवृत्तयः ।" ४

भावार्थः—संसार की परिस्थितियाँ-वृत्तियाँ बड़ी ही विचित्र हुआ करती हैं।

"न समा वासरा: सर्वे नैकरूपमिदं जगत् ।" ५

(पांडव चरित्र)

भावार्थः—इस संसार में न तो सभी दिन समान ही हुआ करते हैं और न सभी अवस्थाएँ एक रूप वाली ही हुआ करती हैं।

"लोको मित्रं केन दृष्टं श्रुतम् वा ।" ६

भावार्थः—क्या किसी ने देखा है अथवा सुना है कि यह संसार किसी का सच्चा मित्र रहा हो ? तात्पर्य यह है कि यहाँ पर सभी व्यवहार केवल स्वार्थ के आधार पर चला करते हैं।

"संसारे रे मनुष्या: वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् ?" ७

भावार्थः—अरे मनुष्यो ! बोलो—क्या इस संसार में अल्प मात्र भी कहीं पर कुछ सुख है ?

"तां संसारमहाटवीं प्रतिवसन् को नाम जन्तुः सुखी ?" ८

—पद्मानन्द

भावार्थः—संसार रूप इस महान् और भयंकर जंगल मे रहता हुआ कौन प्राणी सुखी है ? अर्थात् कोई नहीं है।

"न जाने संसार: किममृतमयः किं विपमयः ?" ९

भावार्थः—समझ में नहीं आता है कि क्या यह संसार अमृत स्वरूप है अथवा विप स्वरूप है।

"सर्वम् जीवमयं जगत् ।" १०

(अत्रि-स्मृति)

भावार्थः—संपूर्ण जगत् जीवों से परिपूर्ण है संसार का कोई भी स्थान अथवा स्थान का अंश जीवों से रहित नहीं है।

"बन्धनानि खलु संति बहूनि।" ११

भावार्थः—वास्तव में इस संसार में अनेक प्रकार के बंधन रहे हुए हैं। नाना प्रकार की झझटें इस संसार में जीवों के साथ जुड़ी हुई हैं।

"स्मर नित्यमनित्यताम्।" १२

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—सदैव भौतिक-पदार्थों की अनित्यता का स्मरण करते रहो, जिससे आसक्ति नामक पाप से बचे रह सकोगे।

"क्षणिकमिति समस्तं विद्धि संसारवृत्तम्।" १३

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—इस बात को ध्रुव-सत्य याने निश्चय पूर्वक समझो कि विश्व में उपलब्ध सभी पदार्थ नाश-शील हैं, नष्ट हो जाने वाले हैं।

"संसार नाट्ये नटवत् संसारी हन्त चेष्टते।" १४

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—अत्यंत खेद की बात है कि संसार रूप रंग-भूमि पर प्रत्येक प्राणी नट के समान अपनी चेष्टाएँ करता रहता है। यह जीवन नाटक है और प्राणी नट हैं। और इसकी सभी नाट्य-लीलाएँ मोह ग्रसित हैं।

"किमत्र हेयं ? कनकं च कान्ता।" १५

भावार्थः—यहाँ पर किसका त्याग किया जाय ? धन का और स्त्री का।

"लोकः खल्वाधारः सर्वेषाम् धर्मचारिणाम् ।" १६

भावार्थः—समस्त धर्म-शील और विवेक शील पुरुषों का वाह्य आधार लौकिक-व्यवहार है। जन-साधारण की दृष्टि से व्यवहार का समुचित रीति से पालन किया जाना अति आवश्यक है।

"को लोकमाराधयितुम् समर्थः ?" १७

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—एक साथ संपूर्ण संसार को प्रसन्न करने में कौन समर्थ है ? सभी श्रेणियों के पुरुषों को और विविन विचार-धारा वालों को एक साथ कैसे प्रसन्न किया जा सकता है ?

शरीर–पाप–पुण्य का साधन
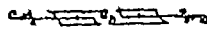
"धर्मार्थकाममोक्षाणाम् मूलमुक्तं कलेवरम् ।" १

भावार्थः—धर्म का, धन का, विविध इच्छाओं का और मोक्ष का साधन यह शरीर ही है।

"परोपकारार्थमिदं शरीरम् ।" २

भावार्थः—दूसरों की भलाई करना, यही इस शरीर का सुन्दर उपयोग है।

"न शरीरं पुनः पुनः ।" ३

भावार्थः—शरीर की प्राप्ति बार बार नहीं हुआ करती हैं। अतः इसका अधिक से अधिक सुन्दर उपयोग कर लो।

"इदं शरीरं बहुरोगमंदिरम् ।" ४

(धर्म-कल्पद्रुम)

भावार्थः—यह शरीर अनेकानेक रोगों से परिपूर्ण है, अतः खान पान का और आचार व्यवहार का सदैव ध्यान रक्खो।

"अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः !" ५

(व्यास-स्मृति)

भावार्थः—यह शरीर निश्चय ही नष्ट हो जाने वाला है और प्राप्त धन-सामग्री भी किसी भी क्षण नष्ट हो जाने वाली है, अतः इन साधनों का सदैव परहित में उपयोग करते रहो ।

"शरीरं शीर्यते नाशा ।" ६

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—शरीर तो जीर्ण-शीर्ण होता रहता है, परन्तु मानसिक आसक्ति और भोगों की आशा दिन प्रतिदिन तरुणता को प्राप्त होती रहती है ।

"वपुर्विद्धि रुजाक्रान्तम् ।" ७

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—शरीर विविध रोगों से ग्रसित है, अतः आहार-विहार का प्रत्येक क्षण ध्यान रक्खो ।

"शरीरं व्याधिपीडितम् ।" ८

(श्राद्ध प्रतिक्रमण वृत्ति)

भावार्थः—यह शरीर रोगों से आक्रान्त है, अतः इन्द्रियों को अपने वश में रक्खो ।

"शरीरं तृणबिन्दुवत् ।" ९

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—घास पर स्थित जल-बिन्दु के समान यह शरीर अचानक ही नष्ट हो जाने वाला है, अतः इसका जितना भी अच्छे से अच्छा उपयोग किया जा सकता है, उतना समय रहते कर लो, इसी में बुद्धिमानी है।

"क्षणक्षयं पराधीनम् अशश्वन्नर-कलेवरं।" १०

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—यह मानव-शरीर प्रतिक्षण नष्ट-शील स्वभाव वाला, पराधीन और अनित्य-धर्म वाला है। अतः समय रहते पवित्र-भावनाओं की आराधना कर लो।

"रोगभोगिगणैर्जग्धं शरीरं को वदेत् शुचि ?" ११

(योग शास्त्र)

भावार्थः—रोगों द्वारा और भोगियों द्वारा भोगे हुए शरीर को पवित्र कौन कहेगा ? ऐसा शरीर तो साक्षात् पाप का पुंज ही है।

"मात्रासमं नास्ति शरीर-पोषणम्।" १२

भावार्थः—आहार-विहार की क्रियाओं में नियमितता के साथ परिमितता पूर्वक व्यवहार करने के बराबर इस शरीर का संपोषण करने वाली दूसरी कोई भी औषधि नहीं हो सकती है।

"जीवे वारितरंगचंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ?" १३

भावार्थः—जल में उत्पन्न होने वाली चंचल तरंग के समान इस नष्ट-शील मानव-शरीर में स्थायी और निराबाध सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

"क्षण-विध्वंसिनः कायाः का चिंता मरणे रणे ?" १४

भावार्थः—*यह शरीर किसी भी क्षण में अचानक ही नष्ट हो जाने वाला है, तो फिर ऐसी स्थिति में मृत्यु से क्यों डरना चाहिये ? अर्थात् केवल पापी ही मृत्यु से डरा करता है, न कि पुण्यवान् ।*

"अनेकदोषदुष्टोऽपि कायः कस्य न वल्लभः ?" १५

भावार्थः—*अनेक अवगुणों की खान होने पर भी यह शरीर किसको प्रिय नहीं है ?*

"जाता विषं चेत् विषया हि सम्यग्
ज्ञानात्ततः किम् कुणपस्य पुष्ट्या ?" १६
(हृदय प्रदीप)

भावार्थः—*शुद्ध ज्ञान से यदि इन्द्रियों के विषय सचमुच में विष के समान मालूम हो गये हों तो फिर इस शरीर को पौष्टिक-पदार्थों से पुष्ट करने का तात्पर्य ही क्या है ? अर्थात् स्वादिष्ट और उत्तेजक पदार्थों के प्रति साधक को ममता-भावना नहीं रखनी चाहिये ।*

"देहादिन्द्रियविषया विषयनिमित्ते च सुखदुःखे ।" १७
(प्रशम रति)

भावार्थः—*विकृत-वातावरण में रहने से और उत्तेजक-भोजन करने से शरीर में इन्द्रिय विषयों की जागृति होती है, और विषय-सेवन से ही क्षणिक सुख की तथा स्थायी दुःखों की परम्परा चालू होती है ।*

"विग्रहा गदभुजंगमालयाः ।" १८

(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—शरीर रोग रूप सर्प का निवास स्थान है। अतः प्रति क्षण सावधान रहो।

"हितान्नपानौषधिवर्धितं वपुः कृतघ्नमन्ते न समं मयैष्यति ।"१६

—ब्रह्मानन्द

भावार्थः—हित कारक अन्न, पान और औषधि द्वारा परि-पुष्ट किया हुआ यह शरीर अपकारी ही सिद्ध होगा, क्योंकि मृत्यु प्राप्त होने पर यह मेरी आत्मा के साथ तो आने वाला नहीं है। ऐसी स्थिति में इसके प्रति ममता क्यों रक्खी जाय ?

"तत्सर्वम् घृणां दत्ते दुर्गन्ध्याऽमेध्यमंदिरे ।" २०

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—दुर्गन्धमय और अशुचि के भंडार रूप इस शरीर में जो कुछ है, वह समस्त बाह्य रूप में प्रकट होते ही घृणा ही उत्पन्न करता है। अतः बुद्धिमानी इसी में है कि इसके द्वारा पर-हित की साधना की जाय।

"आत्मन् ! कोऽयंविमोहस्तव तदपि वपुः
पाल्यते यत्त्वयेत्थम् ?" २१

(संवेग द्रुम कंदली)

भावार्थः—शरीर विविध अपवित्र पदार्थों से परिपूर्ण है, तो भी हे-आत्मन् ! तू इस शरीर का नाना तरह से शृंगार करके पालन-

पोषण करता हुआ कषायों की सेवना कर रहा है, तो क्या यह तेरा विमोह नहीं है?

"जराजर्ज़रिते काये कीदृशी महतां रतिः?" २२
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—वृद्धावस्था से जीर्ण-शीर्ण शरीर के प्रति यह कैसी महती ममता है? क्या कुछ ध्यान है कि इस आसक्ति का क्या कटु परिणाम होने वाला है?

"को वाऽस्ति घोरो नरकः? स्वदेहः।" २३

भावार्थः—दृश्यमान घोर नरक कौन सा है?

उत्तरः—यह अपना शरीर ही घोर नरक है।

"शिरानद्धं च दुर्गन्धं क्व शरीरं प्रशस्यते?" २४
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—नसों द्वारा वेष्टित और दुर्गंधमय शरीर कैसे प्रशंसनीय हो सकता है?

"शुक्रादिबीजसंभूतं घृणास्पदमिदं वपुः। २५
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—रज और वीर्य जैसे ग्लानि उत्पादक पदार्थों से निर्मित यह शरीर घृणा के ही योग्य है।

"अशुभप्रचयनिष्पन्नं शरीरमिदमंगिनाम्।" २६
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—जीव-धारियों का यह शरीर अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं के समूह से बना हुआ है, अतः समय आने पर पुनः शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाला है।

"प्रस्थाने तु पदान्तरेऽपि भवता सार्द्धं न तद्यास्यति।" २७

(संवेग द्रुम कंदली)

भावार्थः—अरे आत्मन्! जब तू पर लोक में जावेगा, उस समय में यह शरीर और अन्य भौतिक पदार्थ तेरे साथ नहीं आवेंगे। अतः इनके द्वारा जितनी भी पर-हित-साधना कर सके, उतनी समय रहते कर ले अन्यथा पछताना पड़ेगा।

"मानुष्ये कदलीस्तंभे निःसारे सारमार्गणम्।" २८

(कात्यायन-स्मृति)

भावार्थः—केले के स्तम्भ समान निस्सार इस मानव-शरीर में पर-हित साधना रूप सार-पदार्थ को ही ढूंढना चाहिये। तात्पर्य यही है कि समय रहते कुछ हितकारी कार्य कर जाओ, अन्यथा मृत्यु तो आने वाली है ही। अर्थात् जीवन में पुरुषार्थ करते रहो, तथा धार्मिक प्रवृत्तियों में संलग्न रहो।

रूप-सौन्दर्य-प्रकृति का वरदान

"विद्वान् विभाति पुरुषेषु विचक्षणेषु ।" १

(रामायण)

भावार्थः—*विद्वान् पुरुष प्रतिभा-संपन्न पुरुषों में ही शोभा पाता है।*

"विभाति कायः करुणापराणाम् परोपकारेण, न चंदनेन ।"२

—भर्तृहरि

भावार्थः—*दयालु पुरुषों का शरीर पर-उपकार करने से ही शोभा पाता है, न कि चन्दन के विलेपन से।*

"श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुंडलेन ।" ३

—भर्तृहरि

भावार्थः—*कानों की शोभा शास्त्रों के श्रवण करने से है, न कि कुंडल-पहिनने से।*

श्रोत्रस्य भूषणम् शास्त्रम् ।" ४

भावार्थः—*शास्त्रों का सुनना ही कानों के लिये श्रेष्ठ आभूषण है।*

"विद्वान् न भाति पुरुषेषु निरक्षरेषु ।" ५

—विल्हण-कवि

भावार्थः—*सुशिक्षित पुरुष मूर्ख मनुष्यों में शोभा नहीं पाता है ।*

"हंसो विभाति नलिनीदलपुंजमध्ये ।" ६

(रामायण)

भावार्थः—*हंस कमलिनी के समूह में ही शोभा पाता है ।*

"लोकत्रयं तेजसा (भाति) ।" ७

—कालिदास

भावार्थः—*सूर्य से ही तीनों लोक देदीप्यमान होते हैं ।*

"न्यायेन मेदिनीनाथः (राजते) ।" ८

—पद्मानन्द

भावार्थः—*विशुद्ध न्याय से ही नृपति शोभा पाता है ।*

"स्त्रीणाम् रूपं पतिव्रतम् ।" ९

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—*पतिव्रत रूप सती धर्म का परिपालन ही स्त्रियों का सौन्दर्य है ।*

"क्षमा रूपं तपस्विनाम् ।" १०

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—*तपस्वियों का सौन्दर्य क्षमा धारण करने में ही है ।*

"विद्या रूपं कुरूपाणाम् ।" ११

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—कुरूप वाले पुरुषों का सौन्दर्य विद्यावान् बनने में ही है ।

"गुणो भूषयते रूपम् ।" १२

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—गुण होने पर ही सौन्दर्य सुशोभित हुआ करता है । गुण-हीन रूप केवल भार समान है ।

"स्त्री विनश्यति रूपेण ।" १३

भावार्थः—सौन्दर्य से स्त्री के भ्रष्ट होने की आशंका रहती है ।

"अगुणस्य हतं रूपम् ।" १४

भावार्थः—उस रूप-सौन्दर्य को धिक्कार है, जिस में कुछ भी गुण न हो ।

"यथा रूपं तथा वित्तम् ।" १५

भावार्थः—जैसा रूप हो, वैसा ही धन मिल जाय तो सोने में सुगंध ही समझना चाहिये ।

"संध्यारागस्वरूपमपि रूपम् ।" १६

भावार्थः—रूप सौन्दर्य उतना ही अस्थायी है, जितनी कि संध्या-कालीन लालिमा ।

"अत्यन्तं रूपाढ्या सा परपुरुषैर्वशी क्रियते ।" १७

—पद्मानन्द

भावार्थः—अति रूपवती स्त्री पर पुरुषों द्वारा वश में की जाती है। अर्थात् स्त्री का अति सौन्दर्य-शील होना एक अनिष्टकर वस्तु ही है।

(७१)

यौवन-वृद्धत्व-जीवन की स्वाभाविक घटना
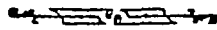
"यौवनं जलरेखेव ।" १

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—जैसे जल में रेखा खींचने पर वह तत्काल ही मिट जाती है, वैसे ही इस यौवन को भी अस्थिर ही समझो ।

"यौवनं कुसुमोपमम् ।" २

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—यौवन फूल के समान है, जो कि कुछ ही क्षणों में कुम्हला जाने वाला है ।

"यौवनं त्रिचतुराणि दिनानि ।" ३

(उपदेशमाला)

भावार्थः—यौवन इतना अस्थिर है कि इसकी आयु तीन-चार दिन जितनी ही समझो । अर्थात् यौवन के व्यतीत होने में कुछ समय नही लगा करता है ।

"यौवनं नगनदास्पदोपमम् ।" ४

(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—*यौवन पहाड़ से गिरने वाली नदी के समान शीघ्र ही समाप्त हो जाने वाला है ।*

"युवैव धर्मशीलः स्यात् ।" ५

भावार्थः—*युवा-अवस्था से ही धर्मानुरागी बनना चाहिये ।*

'तेजो यस्य विराजते स बलवान्, स्थूलेषु कः प्रत्ययः ?' ६

भावार्थः—*जिसकी तेजस्विता देदीप्यमान् प्रतीत होती है, वही शक्तिशाली माना जाता है । केवल शरीर की स्थूलता के प्रति कौन सन्मान अथवा विश्वास किया करता है ?*

"जराक्रान्तं च यौवनम् ।" ७

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—*यौवन का अवश्यं भावी परिणाम बुढापा ही है ।*

"सत्त्वं प्रधानं न तु मांसराशिः ।" ८

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—*शरीर में शक्ति की ही प्रधानता है, न कि स्थूल मांस की अधिकता की-(प्रधानता है)*

"यौवनं जरया ग्रस्तम् ।" ९

(श्राद्ध प्रतिक्रमण वृत्ति)

भावार्थः—*यौवन को बुढ़ापे ने घेर रक्खा है ।*

"अस्थिरे धन-यौवने ।" १०

भावार्थः—धन और यौवन अस्थिर हैं, ये शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाले हैं ।

किंचित् कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च ।" ११

(जैन पंच तंत्र)

भावार्थः—यौवन और धन का उपभोग अत्यंत स्वल्प काल के लिये ही है । बिजली की चमक के समान ये शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाले हैं ।

'जलदपटलतुल्यं यौवनं वा धनं वा ।" १२

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—यौवन अथवा धन दोनों ही बादल की छाया के समान देखते ही देखते नष्ट हो जाने वाले हैं ।

"वात्याव्यतिकरोत्क्षिप्ततूलतुल्यं च यौवनम् ।" १३

(योग-शास्त्र)

भावार्थः—आंधी के झटके से इधर उधर धक्का खाती हुई अस्थिर रूई के समान यह यौवन शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाने वाला है ।

"ध्वजपटचपलं बलम् ।" १४

भावार्थः—बल भी हवा में उड़ती हुई पताका के समान अस्थिर है—चंचल है ।

"घनमालानुकारिणी कुलानि च बलानि च ।" १५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—कुल और बल घनघोर घटा की छटा के समान अस्थिर हैं।

"न सा सभा यत्र न संति वृद्धाः।" १६

भावार्थः—वह सभा कैसी? जिसमें कि वयोवृद्ध अथवा ज्ञान-वृद्ध पुरुष न हों।

"वृद्धस्य वचनं ग्राह्यम्।" १७

भावार्थः—वयो-वृद्ध, ज्ञान-वृद्ध, एवं अनुभव-वृद्ध पुरुषों के वचन ग्रहण करने के योग्य होते हैं।

"वृद्धा न ते, ये न वदन्ति धर्मम्।" १८

भावार्थः—उन्हें वृद्ध नहीं कहना चाहिये, जो कि धर्म-चर्चाएँ नहीं किया करते हैं।

"जरा रूपं हरति।" १६

भावार्थः—बुढापा सौंदर्य का अपहरण कर लिया करता है।

"विद्याविनयवृद्ध्यर्थं वृद्धसेवैव शस्यते।" २०

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—विद्या और विनय की वृद्धि के लिये वृद्ध पुरुषों की सेवा ही प्रशस्त है।

"अनध्वा वाजिनाम् जरा।" २१

भावार्थः—घोड़ों के लिये नहीं घुमाना-फिराना ही वृद्धत्व है, क्यों कि इससे उनकी शक्ति का ह्रास होता है।

"हरति सुरभिं गन्धं देहाज्जरा मदिरा यथा।" २२

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—जैसे मदिरा-पान करने से मुँह की सुगंध जाती रहती है, वैसे ही बुढापा भी शरीर की शक्ति को और सौन्दर्य को हरण कर लेता है।

"यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः।" २३

(मनु-स्मृति)

भावार्थः—जो युवा होने पर भी अनुभवी है, उसको तेजस्वी पुरुष स्थविर ही समझते हैं।

"वपुषि जरसाग्रस्ते वाक्यं शृणोति न देहजः।" २४

(सुभाषित रत्न संदोह)

भावार्थः—शरीर में बुढापा आ जाने पर पुत्र भी बात नहीं सुना करता है।

"चेतः प्रसक्तिमाधत्ते वृद्धसेवावलम्बिनाम्।" २५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—वृद्ध पुरुषों के सेवकों का चित्त उत्साह को धारण किये हुए होता है।

"ध्रुवमिह मनुजानां वृद्धसेवैव साध्वी।" २६

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—इस नश्वर संसार में मनुष्यों के लिए वृद्ध पुरुषों की सेवा ही निश्चय में पुण्यशील है—कल्याणकारी है।

(७२)

आयु-शरीर और आत्मा का नश्वर सम्बन्ध
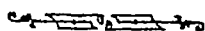
"जीवितं विद्युता तुल्यम् ।" १

(तत्त्वामृत)

भावार्थ.—जीवन विद्युत के समान चञ्चल है।

"शारदाभ्रमिव चंचलमायुः ।" २

(उपदेशमाला)

भावार्थः—आयु शरद् ऋतु के बादल के समान चपल है—अस्थिर है।

"आयुष्यं जललोलबिन्दुचपलम् ।" ३

भावार्थः—प्राणियों की आयु जल में उत्पन्न होने वाले चंचल परपोटे के समान ही चपल है, जो कि शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाली है।

"तडिल्लतातुल्यमेवायुः ।" ४

भावार्थः—आयु बिजली रूप लता के समान ही शीघ्र नष्ट हो जाने वाली है।

"गलत्यायु र्न पापधीः।" ५

—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—आश्चर्य है कि आयु तो प्रति क्षण क्षीण होती रहती है, परन्तु पाप-बुद्धि ज्यों की त्यों ही बनी रहती है।

"तडिच्चपलमायुष्यम्।" ६

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—आयु विजली के समान चपल है, याने अचानक और शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाली है।

'विलंबो नैव कर्त्तव्यः आयुर्याति दिने दिने।" ७

भावार्थः—धर्म-कार्य में देर मत करो, क्योंकि आयु प्रतिदिन घटती ही जा रही है।

"आयुः क्षणलवमात्रं न लभ्यते हेमकोटिभिः क्वापि।" ८

(सुबोध पद्माकर)

भावार्थः—करोडों तोला सोना देने पर भी आयुष्य का एक क्षण भी कभी भी और कहीं पर भी नहीं बढ़ाया जा सकता है।

"अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः।" ९

भावार्थः—जीवन-काल तो थोड़ा है, जब कि इसमें विघ्नों की, रोगों की और आपत्तियों की—भरमार है।

"नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि ।" १०

भावार्थः—यदि आयुष्य-बल बलवान् है तो, सैकड़ों तीरों से भिद जाने पर भी प्राणी अकाल में नहीं मर सकता है ।

"जीवितेनापि किं तेन कृता यत्र न निर्जरा ।" ११

(तत्वामृत)

भावार्थः—मानव-शरीर प्राप्त करके भी यदि इस जीवन में निर्जरा की उपार्जना नहीं की तो ऐसे जीवन से क्या लाभ होने वाला है ?

"अनित्यं खलु जीवितम् ।" १२

(मत्स्य पुराण)

भावार्थः—जीवन निश्चय ही क्षण-भंगुर है ।

"शारदाम्बुदविलासि जीवितम् ।" १३

(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—जीवन शरद्-ऋतु के बादल के समान क्षण भर में ही लुप्त हो जाने वाला है ।

"अस्थिरं जीवितं लोके ।" १४

भावार्थः—यह जीवन संसार में अस्थिर है । किसी भी प्राणी का जीवन टिक कर रहने वाला नहीं है ।

"नो शक्तास्त्रुटितं सुरासुरनराः सन्धातुमायुर्बलम् ।" १५

भावार्थः—टूटे हुए आयुष्य को जोड़ने में न तो देवता ही और न यक्ष आदि दानव ही तथा न कोई मनुष्य-प्राणी ही समर्थ हो सकता है। अतः समय रहते ही धर्म की आराधना कर लेना चाहिये।

'प्रयात्यशेषम् तु ममायुरुत्तमं न सेक्षणोऽपीह विलोकयाम्यहम्।'

—ब्रह्मानन्द

भावार्थः—मेरी संपूर्ण उत्तम आयु फूटे घड़े में से क्रमशः झरने वाले जल के समान ही क्रमशः घटती जा रही है, फिर भी आश्चर्य ही है कि मैं इसको देखता हुआ भी नहीं देख रहा हूँ। अर्थात् धर्म-कार्यों से मैं उदासीन हूं।

—※—

(७३)

प्रकीर्णक-उपयोगी-शिक्षाएँ
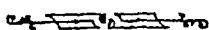
"प्रमाणं परमं श्रुतिः।" १

भावार्थः—किसी भी सिद्धान्त में शंका उपस्थित हो जाने पर उसके निवारण के लिये आगम-शास्त्र ही—(आप्तवचन ही) श्रेष्ठ प्रमाण स्वरूप होते हैं।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" २

(भगवद् गीता)

भावार्थः—तुम्हारा कर्त्तव्य—अथवा तुम्हारा अधिकार यही है कि तुम बिना विश्राम ग्रहण किये ही निरन्तर उद्यम-शील रहो, याने सत्कार्यों में संलग्न रहो और अपने परिश्रम के फल की ओर उदासीन ही रहो। तात्पर्य यह है कि अनासक्ति पूर्वक एवं निष्कामना पूर्वक सत्-कार्य में तल्लीन रहो।

"हतं निर्नायकं सैन्यम्।" ३

भावार्थः—जिस समाज का कोई एक नेता नहीं होता है अथवा जिस सेना का कोई एक सेनापति नहीं होता है, वह समाज और वह सेना नष्ट हो जाने वाली होती है।

"कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यम् प्राणैः कंठगतैरपि ।" ४

भावार्थः—प्राणान्त कष्ट के उपस्थित होने पर भी जो काम करने के योग्य है, उसी को करना चाहिये। नहीं करने योग्य काम में कदापि हाथ नहीं डालना चाहिये।

"न विश्वासस्तु कर्त्तव्यः कृतवैरे कथंचन ।" ५

भावार्थः—जिस मनुष्य के साथ हमारा वैर-भाव हो, उसमें कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

"प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।" ६

भावार्थः—कीचड़ के मार्ग पर चल कर लगे हुए कीचड़ को धोने की अपेक्षा से तो पहले से ही कीचड़ से दूर रहना और उसको नहीं छूना, इसी में बुद्धिमानी है। इसी तरह से पाप मार्ग पर चल कर पाप का प्रायश्चित करने की अपेक्षा से तो पाप के कामों से दूर रहना ही अधिक श्रेयस्कर है।

"नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा स्यात् ।" ७

भावार्थः—अपने आश्रय में रहे हुए प्राणियों की गुण-दोष रूप विचारणा नहीं हुआ करती है।

'अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसंति ।'८

भावार्थः—तेज धार देने वाले पत्थर विशेष की छिलके उतार देने वाली रगड़ खाये विना मणियाँ कभी भी राजाओं के मुकुट में स्थान नहीं प्राप्त कर सकती हैं।

"न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे।" ६

भावार्थः—*किसी भी संकट की उपस्थिति की संभावना के पूर्व ही उसको निवारण करने की योजना बना लेना चाहिये, ऐसा न हो कि घर में आग लगने पर उसको बुझाने के लिये कुआँ खोदना।*

"या लोकद्वयसाधनी तनुभृतां सा चातुरी चातुरी।" १०

भावार्थः—*बुद्धिमानी उसी का नाम है, जो कि मनुष्य के इस भव को और पर भव को-दोनों को—सुधार देती हो।*

"बधिरान्मन्दकर्णः श्रेयान्।" ११

भावार्थः—*सर्वथा ही नहीं सुनने की अपेक्षा से तो थोड़ा सुनना लाभ प्रद ही है।*

"शास्त्राद्रूढि र्बलीयसी।" १२

भावार्थः—*शास्त्र की आज्ञा की अपेक्षा से तो परम्परागत रूढ़ि ही बलवती होती है।*

"अगम्यं मन्यते सुगमं।" १३

भावार्थः—*बुद्धिमानी के साथ साधना करने पर अगम्य भी—अति कठिन कार्य भी—सरल बन जाया करता है।*

"अंकानाम् वामतो गतिः।" १४

भावार्थः—*श्लोक बद्ध अंकों की गणना करने की परिपाटी में अंकों का स्थान विपरीत रूप से ही गिना जाता है।*

"प्रकृतिकोपः सर्वकोपेभ्यो गरीयान् ।" १५

भावार्थः—*जल-प्रलय, पृथ्वी-कंपन, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग-उत्पत्ति आदि-आदि प्राकृतिक कोप अन्य सभी कोपों की अपेक्षा से अत्यधिक भयानक हुआ करते हैं।*

"परबुद्धिर्विनाशाय ।" १६

भावार्थः—*हर काम में दूसरे की बुद्धि के अनुसार चलना अपने लिए विनाश को निमन्त्रण देना है।*

"यथा नासा तथार्जवम् ।" १७

भावार्थः—*सामुद्रिक शास्त्र का कथन है कि जिस ढंग की—सरल अथवा असरल नाक होती है, वैसी ही सरलता अथवा कुटिलता उसके हृदय में निवास किया करती है।*

"यथानेत्रं तथा शीलम् ।" १८

भावार्थः—*जैसा आँख का रंग-ढंग हुआ करता है, प्रायः वैसा ही स्वभाव भी हुआ करता है।*

"प्रज्ञासदृशागमः ।" १९

भावार्थः—*बुद्धि की मात्रा के अनुसार ही आगम ज्ञान अथवा शास्त्रीय ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है।*

"सर्वं रत्नमुपद्रवेण सहितं निर्दोषमेकं यशः ।" २०

भावार्थः—सभी रत्न उपद्रव सहित हैं, किन्तु केवल यश ही एक ऐसा रत्न है, जो कि निर्दोष है।

"कुकर्मान्तं यशो नृणाम्।" २१

भावार्थः—कुत्सित प्रवृत्तियों का अन्त कर देने के बाद ही मनुष्यों के यश में वृद्धि हुआ करती है।

"अतिपरिचयादवज्ञा।" २२

भावार्थः—अत्यधिक समागम एवं परिचय बढ जाने के पश्चात् अनादर हुआ करता है।

"पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।" २३

भावार्थः—यह प्राकृतिक नियम है कि अवनति के बाद प्रायः उन्नति हुआ करती है।

"संततगमनादनादरो भवति।" २४

भावार्थः—एक ही स्थान पर निरन्तर आना-जाना रखने से अनादर होने लगता है।

"शुभकृन्नहि सीदति।" २५

भावार्थः—शुभ कार्य करता हुआ मनुष्य दुःखी नहीं हो सकता है।

"परिचितजनद्वेषी लोको नवं नवमीहते।" २५

—माघ-कवि

भावार्थः—लोक-समूह की यह प्रवृत्ति होती है कि वह परिचित व्यक्तियों के प्रति तो अनादर और उपेक्षा की भावना रखता है, और नित्य नये-नये की आकांक्षा किया करता है।

"नवनवगुणरागी प्रायशः सर्वलोकः ।" २६

भावार्थः—प्रायः करके लोक-समूह नित्य नये-नये गुणों के प्रति अभिरुचि रखने वाला होता है।

"श्रुत्वा तथा स्वमर्माणि बाधिर्यं कार्यमुत्तमैः ।" २७

(विवेक-विलास)

भावार्थः—जब खल पुरुष अपने मर्म को चोट पहुंचाने वाली बात कर रहे हों, तो ऐसे समय में उसको सुनकर भी सज्जन पुरुषों को चाहिये कि वे उसे अनसुनी ही कर दें। अर्थात् बहिरापन धारण करलें।

"प्रदीपाः क्वोपयुज्यन्ते तमोघ्नी दृष्टिरेव चेत् ?" २८

(ज्ञानसागर)

भावार्थः—यदि दृष्टि में ही ऐसी शक्ति है कि वह अन्धकार का विनाश कर सकती है, तो ऐसी स्थिति में दीपक कैसे उपयोगी हो सकते हैं ?

"भवेन्नहि फलैस्तृप्तिः पानीयप्रतिबिम्बितैः ।" २९

(विवेक-विलास)

भावार्थः—जल में दिखाई देने वाली फलाकृतियों से मन में तृप्ति नहीं हुआ करती है।

"नास्ति नादसमो रसः ।" ३०

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—संगीत के समान दूसरा कोई रस नहीं है ।

"वसंति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु ।" ३१

भावार्थः—प्रेम में ही गुणों का वास-स्थान है, न कि वस्तुओं में ।

"पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।" ३२

(सुभाषित सचय)

भावार्थः—इस पृथ्वी पर तीन ही रत्न हैं—जल, अन्न और सूक्तियाँ ।

"न भवति वियोगः स्नेहविच्छेदहेतुः ।" ३३

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—वियोग मात्र हो जाना ही स्नेह टूटने का कारण नहीं हुआ करता है ।

"तिमिरं हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ।" ३४

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—अन्धकार में ही उल्लूओं की दृष्टि रूप को—मूर्तिमान् पदार्थों को देख सकती है, वैसे ही दुर्जनों की बुद्धि भी दुष्ट कार्यों में शीघ्रतापूर्वक गति किया करती है ।

"व्याघ्रस्य चोपवासस्य पारणं पशुमारणम् ।" ३५

भावार्थः—जैसे सिंह-बाघ आदि हिंसक पशुओं के उपवास का पारणा पशुओं की मृत्यु के रूप में ही होता है, वैसे ही दुर्जनों की आजीविका भी गरीबों के शोषण पर ही निर्भर है ।

"पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।" ३६

भावार्थः—जिस वस्तु का जैसा उपयोग होता है, आवश्यकता पड़ने पर उसका वैसा ही उपयोग किया जा सकता है, न कि अन्य रीति से । इसीलिए कहा जाता है कि प्यासे मनुष्यों द्वारा काव्य शास्त्र के ज्ञाता होने पर भी काव्य-रस नहीं पिया जाता है । प्यास जल से ही बुझा करती है, न कि काव्य-ज्ञान से ।

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।" ३७
(भगवत्-गीता)

भावार्थः—अपनी मर्यादा और अपने ही व्रत-नियमों में रहते हुए ही मृत्यु प्राप्त करना कल्याणकारी है । क्यों कि अन्य की मर्यादा और व्रत-नियम आदि अपरिचित होने से भयंकर रूप ही हैं ।

"मुक्त्यङ्गं लिंगमादाय न श्लाघ्यं लोकरंजनम् ।" ३८
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—मुक्ति के साधन रूप साधु-वेश को धारण करके लोक-रंजक क्रियाऐं करना कदापि प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती है ।

"न ध्यानं न विवेचनम् न च तपः कर्त्तुं वराकाः क्षमाः । ३९
—शुभचन्द्राचार्य

भावार्थः—क्षुद्र प्रकृति वाले पुरुष ध्यान, व्याख्या, व तपश्चर्या करने के योग्य नहीं होते हैं, क्योंकि उनका कषाय प्रबल होता है।

"वराश्वपादेनहतोऽपि शोभते न रासभस्योऽपरिसंस्थितो नरः।"

(सुभाषित-संचय)

भावार्थः—घोड़े पर सवारी करने के लिये घोड़े के पैर से चोट खाना अच्छा है, परन्तु चोट से बचने के लिये गधे के ऊपर बैठना शोभा जनक नहीं हो सकता है। इसी तरह से सज्जन पुरुष से उपालंभ प्राप्त करना अच्छा है, परन्तु दुर्जन से सन्मान प्राप्त करना अच्छा नहीं है।

न जानंति परं तत्त्वं दर्वी पाकरसं यथा।" ४१

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—जैसे चम्मच स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थ में निरन्तर रहता हुआ भी उसके स्वाद का अनुभव नहीं करता है, वैसे ही जो कषाय-शील होते हुए केवल बाह्य धार्मिक कियाएँ करते रहते हैं; वे परम तत्त्व को--याने आत्मा और ईश्वर के स्वरूप को--नहीं जान सकते हैं।

करंजमारोप्य तु केन भुज्यते, फलं रसालस्य बतेयमज्ञता।"

(ब्रह्मानंद)

भावार्थः—करंज-नामक जंगली लघु वृक्ष बोकर के उस वृक्ष से आम का फल कौन प्राप्त करके खाया करता है? अरे! खेद की

बात है कि यह मूर्खता कैसी है? क्या कभी पाप-क्रियाओं से भी सुख-संपत्ति मिली है?

"वासपादपविनाशेन पक्षिण आहिंडंते।" ४३

भावार्थः—आधार भूत वृक्ष के नष्ट हो जाने पर सभी पक्षी उड़ जाया करते हैं; वैसे ही पुण्य कर्मों के और शुभ कर्मों के समाप्त हो जाने पर सुख-संपत्ति आदि सभी प्रिय पदार्थ एक एक करके नष्ट हो जाया करते हैं।

"दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितम्।" ४४

भावार्थः—दरिद्रता पूर्ण जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा तो मर जाना अधिक अच्छा है। मालूम होता है कि इस सिद्धान्त को समझ करके ही और इसकी अच्छाई का समर्थन करने के लिये ही मानों मृत कलेवर चुपचाप होकर पड़ा हुआ है।

"शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति।" ४५

भावार्थः—बुद्धि के सुस्थिर होने पर शास्त्र-ज्ञान कहाँ सफल नहीं हुआ करता है?

"रंगः शुक्लपटे यथा।" ४६

भावार्थः—जैसे सफेद कपड़े पर मन चाहा रंग चढाया जा सकता है; वैसे ही कषाय-रहित आत्मा इच्छानुसार ज्ञान प्राप्त कर सकती है।

"ये यथा माम् प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।" ४७
(गीता)

भावार्थः—"जो जिस तरह से मेरी शरण ग्रहण करते हैं; मैं उन्हें उसी तरह से फल प्रदान कर दिया करता हूँ।" ऐसी अन्तःस्थ आत्मा की ध्वनि है।

"कुमंत्री राज्यस्य दूषणं।" ४८

भावार्थः—कुत्सित विचारों वाला मंत्री राज्य के लिये दूषण रूप होता है।

"आपदामापतन्तीनाम् हितोऽप्यायाति हेतुताम्।" ४९
(हितोपदेश)

भावार्थः—आपत्तियों से ग्रसित हुए पुरुषों के लिये दुर्दैव से हितरूप पदार्थ भी आपत्तियों का कारण बन जाया करता है।

"रात्रौ दीपशिखाकांतिर्न भानावुदिते सति।" ५०

भावार्थः—रात्रि के समय में ही दीपक की लौ सुन्दर दिखाई देती है; परन्तु सूर्य के उदय होते ही उसका सौन्दर्य और प्रकाश दोनों ही नष्ट हो जाया करते हैं। वैसे ही दुर्जन पुरुष भी तभी तक शोभा पाता है; जब तक कि सज्जन पुरुष विद्यमान न हो।

"नालं दुःखाय शत्रवः।" ५१

भावार्थः—यदि हमारा सौभाग्य सूर्य चमक रहा है तो शत्रुगण हमें दुःख देने के लिये समर्थ नहीं हो सकते हैं।

"जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव येषाम् प्रसादेन विचक्षणोऽहम् ।"

भावार्थः—मेरे शत्रु गण सदा ही जीवित रहें; जिससे कि मैं उनकी कृपा से सदा ही सचेत और सतर्क रहूँ । तात्पर्य यह है कि शत्रुओं द्वारा किये जाने वाले अनिष्ट कार्यों के निवारण के लिये मैं सदा ही सावधान रहूँ ।

"नोपेक्षितव्यो विद्वद्भिः शत्रुरल्पोऽप्यवज्ञया ।" ५३

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा अति सामान्य शत्रु की भी तिरस्कार पूर्वक उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये ।

"वासोविहीनं विजहाति लक्ष्मीः ।" ५४

भावार्थः—जो व्यवस्थित कपड़ों से रहित होता है, लक्ष्मी उसका साथ छोड दिया करती है ।

"नातिप्रसंगः प्रमदासु कार्यः ।" ५५

भावार्थः—स्त्रियों की संगति विकारों को बढाने वाली होती है; अतः स्त्रियों की संगति नहीं करना चाहिये । स्त्रियों से अति परिचय भी नहीं बढाना चाहिये ।

"मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।" ५६
(मनुस्मृति)

भावार्थः—पुरुष के अंग अंग में काम-वासना का प्रभाव रहा हुआ है; अतः पुरुष कभी भी एकान्त आसन पर माता के साथ, बहिन के साथ, अथवा पुत्री के साथ नहीं बैठे ।

"सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथापरे ।" ५७

(दक्षस्मृति)

भावार्थः—*जिस तरह से अपनी आत्मा को सुख दुःख प्रिय और अप्रिय है, उसी तरह से विश्व के प्राणी मात्र को भी सुख प्रिय है और दु ख अप्रिय है, अतः किसी भी प्राणी के साथ क्रूरता का व्यवहार नहीं करना चाहिये।*

नास्ति किंचित् अनुपद्रवं स्फुटम् ।" ५८

(धर्म बिन्दु)

भावार्थः—*संसार में ऐसा कोई भी भौतिक अथवा पौद्गलिक पदार्थ नहीं है, जो कि एकान्त रूप से सुखमय ही हो।*

"सुखं न कस्याऽपि भजेत् स्थिरत्वम् ।" ५६

भावार्थः—*इस क्षण-भंगुर संसार में चक्रवर्ती अथवा तीर्थंकर जैसे बडे से बड़े महापुरुष का और चींटी भंवरे आदि छोटे से छोटे प्राणी का, याने किसी का भी सांसारिक सुख अजर-अमर अथवा स्थायी नहीं रहा है।*

"रोग-जरा-मरण-भयैरव्यथितो स नित्यसुखी ।" ६०

(प्रशम रति)

भावार्थः—*जो प्राणी न तो रोग से, न बुढ़ापे से, न मृत्यु से और न किसी प्रकार के भय से घबड़ाता है, तथा न इनसे दु.खानुभव ही करता है, वही 'नित्य-सुखी' है।*

"भवन्ति न सुखान्यविघ्नानि ।" ६१

(पंच तंत्र)

भावार्थः—संसार का मूल स्वरूप दुःख रूप है इसीलिए कहा जाता है कि सुख विघ्न रहित नहीं हुआ करते हैं। अर्थात् इस संसार में सुख अचानक ही दुःखों से ग्रसित हो जाते हैं। जीवन में अचानक ही विघ्न उपस्थित हो जाया करते हैं।

"नास्ति बन्धुसमं बलम् ।" ६२

भावार्थः—संसार में कई प्रकार के भौतिक बल हुआ करते हैं, किन्तु उन सब में भाई के समान दूसरा कोई भी बल नहीं है।

"ज्येष्ठभ्राता पितुः समः ।" ६३

भावार्थः—बड़ा भाई पिता के समान ही होता है।

"विस्मयो हि न कर्त्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा ।" ६४

भावार्थः—प्रकृति की विचित्रताओं को देख करके आश्चर्य-चकित नहीं हो जाना चाहिए, क्योंकि यह पृथ्वी तो विविध भौतिक बहुमूल्य अनेक पदार्थों से परिपूर्ण है। इसीलिए विद्वानों ने इसका सुन्दर नाम 'वसुन्धरा' रक्खा है।

"न नाभिभंगे ह्यरका वहन्ति ।" ६५

भावार्थः—पहिये के मध्य का मूल स्थान "नाभि" अथवा "चाक" कहलाता है। यदि यह चाक टूट जाय, तो उसमें रहे हुए

"आरे" भार नहीं ढो सकते हैं। उसी प्रकार से महापुरुष नायक के अभाव में लोक-समूह का कार्य नहीं चल सकता है।

"छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।" ६६

भावार्थः—जब आपत्तिया आने वाली होती हैं, तो उस समय में एक साथ अनेक आपत्तिया आया करती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि विविध छेदों द्वारा विविध अनर्थ और अवांछनीय संकट उपस्थित हो जाया करते हैं।

"जीवो जीवस्य जीवनम्।" ६७

भावार्थः—संसार में कषाय का कितना शोचनीय तांडव नृत्य है कि प्रत्येक जीव किसी अन्य जीव के साथ भक्षक रूप से लगा हुआ है। इसीलिए कहा जाता है कि जीव ही जीव का जीवन है।

"न हि सवविदः सर्वे।" ६८

भावार्थः—इस संसार में छद्मस्थ प्राणियों में से कोई भी सब कुछ जानने वाला नहीं है।

"न भयं चास्ति जागृतः।" ६६

भावार्थः—जो इन्द्रिय भोगों के प्रति सावधान है—जागृत है, उसको किसी भी प्रकार का कोई भय नहीं है।

"पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी।" ७०

भावार्थः—धन-सम्पत्ति का यह प्रभाव ही होता है कि ज्यों-

ज्यों अधिकाधिक धन-वैभव बढ़ता है, त्यों-त्यों भोगवृत्ति एवं लालसा-वृत्ति भी बढ़ती ही जाती है।

"तैलमर्दनम् गुणवर्धनम्।" ७१

भावार्थः—तेल की मालिश करने से स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।

"पुनर्दारा पुनर्वित्तं।" ७२

भावार्थः—हे आत्मा! संसार में रहते हुए तो बार-बार पत्नी भी मिल सकती है और बार-बार धन भी मिल सकता है, परन्तु मानव-शरीर बार-बार प्राप्त कर सकना अति कठिन ही है।

"पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि।" ७३

भावार्थः—अरे लोगों! कलि-युग की विचित्रताओं को देखो।

"परोपदेशवेलायाम् शिष्टाः सर्वे भवंति वै।" ७४

भावार्थः—हित की बातों को स्वयं तो पालने के लिए तैयार नहीं होते हैं, परन्तु दूसरों को उपदेश देने के समय में तो निश्चित रूप से सभी शिष्ट और सज्जन बन जाया करते हैं।

"या गोविंदरसप्रमोदमधुरा सा माधुरी माधुरी।" ७५

भावार्थः—जो वाणी हरि-कीर्त्तन रूप रस के आनन्द से मधुर है, उसे ही सच्ची माधुरी कहना चाहिये। माधुरी का तात्पर्य मिठास सहित सौंदर्य है।

"द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।" ७६

भावार्थः—अति प्राचीनकाल से ही यह जूआ नामक व्यसन महती शत्रुता उत्पन्न करने वाला और अनेक संकटों को लाने वाला देखा गया है ।

"अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।" ७७

भावार्थः—जैसे तृण-घास रहित पृथ्वी पर गिरी हुई अग्नि स्वयमेव शांत हो जाती है, उसी प्रकार से विकारों के कारणों की उपस्थिति पर पूर्ण समता भाव धारण कर लेने से उन विकारों की उत्पत्ति का प्रसग ही नहीं आवेगा ।

"शत्रुर्दहति संयोगे वियोगे मित्रमप्यहो ।" ७८

भावार्थः—इस संसार में कैसी आश्चर्यजनक स्थिति है कि शत्रु तो संयोग अवस्था में कष्ट पहुंचाया करता है, परन्तु मित्र तो वियोग अवस्था में ही दुःख का अनुभव कराता है ।

"क्षमाऽऽर्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत् पिब ।" ७९
(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—हे आत्मा ! यदि तू परम शांति चाहती है तो क्षमा का, सरलता का, दया का, निष्कपटता का, और सत्यता का, अमृत के समान पान कर । अर्थात् उच्च गुणों का आचरण कर ।

"उपानद्-गूढ़पादस्य, ननु चर्मावृतैव भूः ।" ८०
(सूक्त मुक्तावली)

भावार्थः—*जिसने अपनी आत्मा को वश में कर लिया है, वह उसी प्रकार से सभी संकटों से निर्भय हैं, जिस प्रकार कि जूता पहिने हुए पुरुष कांटों से निर्भय होता है। अर्थात् जूते से आवृत पैर वाले के लिये मानों सारी पृथ्वी ही चमड़े से ढंकी हुई है।*

"मायायाः प्रतिकूलमार्जवमरे तस्याः समासेव्यताम्।" ८१

(संवेग द्रुम कंदली

भावार्थः—*अरे आत्मन्! यदि तू चिरशांति की आकांक्षा रखता है तो माया का सर्वथा विरोधी धर्म जो सरलता है, उसी की सम्यक् प्रकार से आराधना कर।*

"शुभस्य शीघ्रम्।" ८२

भावार्थः—*मंगल मय क्रियाओं के करने में भी विलंब नहीं करना चाहिये।*

"विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।" ८३

भावार्थः—*जब विनाश का समय उपस्थित हो जाता है, तो ऐसे समय में बुद्धि भी विपरीत हो जाया करती है।*

"न हि सर्वेऽपि कुर्वन्ति सभ्या युक्तिविवेचनम्।" ८४

भावार्थः—*समाज के सभी सदस्य युक्तिपूर्वक ही बातचीत नहीं किया करते हैं।*

"यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः।" ८५

भावार्थः—*यशस्वी पुरुषों द्वारा अपने यश की विघ्न-बाधाओं से रक्षा की जानी चाहिये।*

"याचनान्तं हि गौरवम्।" ८६

भावार्थः—*मनुष्य का गौरव माँगने के तत्काल पश्चात् ही नष्ट हो जाया करता है।*

"साक्षरा विपरीताश्चेत् राक्षसा एव केवलम्।" ८७

भावार्थः—*साक्षर लोग अर्थात् पढे लिखे आदमी जब तक अनुकूल रहते हैं, तब तक तो शांति ही रहती है, परन्तु जब ये प्रतिकूल हो जाते हैं, तो "साक्षरा का उल्टा राक्षसा" अर्थात् राक्षस जैसी कुत्सित प्रवृत्ति भी करने के लिये तैयार हो जाया करते हैं।*

"तुल्य प्रतिद्वन्द्वी बभूव युद्धम्।" ८८

भावार्थः—*समान स्थिति वालों में प्रतिस्पर्धारूप युद्ध हुआ ही करता है।*

"येन इष्टं तेन गम्यताम्।" ८९

भावार्थः—*जिस व्यक्ति द्वारा हमें इष्ट की प्राप्ति होती हो, उसके साथ हमें जाना चाहिये।*

"माधुर्यं मधु बिन्दुना रचयितुम् क्षारांबुधेः इहते।" ९०

भावार्थः—*जब अत्यंत कठिनाइयों से परिपूर्ण और महान् शक्ति-साध्य किसी कार्य को अति अल्प साधनों द्वारा करने के लिये*

कोई तैयार होता है, तो उस समय में ऐसा कहा जाता है कि "क्या तुम शहद की एक बूंद से सारे खारे समुद्र को मीठा बनाना चाहते हो ?"

"शस्त्राघाता न तथा सूचीक्षतवेदना यादृक् ।" ६१

भावार्थः—सूई के चुभोने से जैसी वेदना होती है; वैसी शस्त्र के आघात से भी नहीं होती है। अर्थात् मारडालने की अपेक्षा से भी मर्म घातक वाक्य बोलना अधिक पीड़ा कारक है।

"आहारो मैथुनं निद्रा सेवनात्तु विवर्धते ।" ६२

भावार्थः—आहार, मैथुन, और निद्रा का ज्यों ज्यों अधिकाधिक सेवन किया जाता है; त्यों त्यों उनके प्रति लालसा-भावना और भोगभावना अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।

"कृपणस्य कृपाणस्य च केवलमाकारतो भेदः ।" ६३

भावार्थः—कृपण और कृपाण में-(कंजूस और तलवार में) केवल आकार नामक अक्षर का ही-अथवा आकृति का ही-अन्तर है।

"गजा यत्र न गण्यंते मशकानाम् तु का कथा ? ।" ६४

भावार्थः—जिस समय में कोई असाधारण धमाल अथवा झमेला अव्यवस्थित रूप से विशाल पैमाने पर उपस्थित हो जाता है, और जहाँ ऐसे समय में बड़े बडे पुरुषों की बुद्धि भी थक कर निरर्थक हो जाती है, उस समय में यह सूक्ति कही जाती है कि "जहाँ बड़े बड़े हाथियों की भी गिनती नहीं है, वहाँ छोटे छोटे मच्छरों का तो कहना ही क्या है ?"

"सुखात् बहुतरं दुःखं जीविते नास्ति संशयः ।" ६५

भावार्थः—इसमें कोई संदेह नहीं है कि जीवन में सुख की अपेक्षा से दुःख की मात्रा अधिक ही है।

"युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ।" ६६

—हरिभद्र सूरि

भावार्थः—ज्ञान प्राप्त करने के समय में पक्षपात नहीं रखना चाहिये, और जिसके वचन युक्ति-युक्ति तथा तर्क से समर्थित मालूम पडे; उन्हीं को ग्रहण कर लेना चाहिये।

"निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ? ।" ६७

(वृद्ध चाणक्य नीति)

भावार्थः—जो न तो किसी भी प्रकार का दंड देता है और न किसी भी प्रकार से कृपा-वृष्टि ही करता है; ऐसा पुरुष यदि नाराज भी हो जाय, तो क्या हानि-लाभ पहुचा सकेगा ?

"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः ।" ६८

(वाशिष्ठ-स्मृति)

भावार्थः—दुराचारी पुरुष अवश्य ही लोक में निंदा का पात्र होता है।

"श्रियं रक्षेच्च मत्सरात् ।" ६६

(शांति पर्व)

भावार्थः—ईर्ष्या द्वेष का परित्याग करते हुए अपनी संपत्ति की रक्षा करो।

"रोषोऽपि निर्मलधियाम् रमणीय एव।" १००

भावार्थः—*निर्मल बुद्धि वाले सज्जन पुरुषों का क्रोध भी-रोष भी-शिक्षाप्रद और आकर्षक होता है।*

"वृथा दीपो दिवापि च।।" १०१

भावार्थः—*जैसे दिन में दीपक व्यर्थ होता है, वैसे ही अनुपयोगी वस्तुओं को एकत्र करना भी व्यर्थ ही है।*

"हा! हा! "चाहा" हत कलियुगे कर्षति प्राणवित्तम्।"

भावार्थः—*अरे! अरे! बहुत ही बुरी बात है कि इस कलियुग में चाय मनुष्यों के धन को और प्राणों को-दोनों को ही-नष्ट किया करती है।*

"विद्यते नहि स कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः।"

भावार्थः—*इस संसार में ऐसा कोई एक उपाय नहीं है, जो कि सभी मनुष्यों को संतुष्ट करने वाला हो।*

"ध्यातव्यो वीतरागस्तन्नित्यमात्मविशुद्धये।" १०४

(योग-सार)

भावार्थः—*अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये और विकास के लिये सदैव भगवान् वीतराग प्रभु का श्रद्धापूर्वक ध्यान करते रहना चाहिये।*

"तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मना कार्यम् ।" १०५

(प्रशमरति)

भावार्थः—अपनी आत्म-शक्ति द्वारा ही शाश्वत हित की साधना करते रहना चाहिये।

"न बन्धु-मध्ये धन-हीनजीवनम् ।" १०६

भावार्थः—इस ससार में सभी व्यावहारिक कार्य केवल धन द्वारा ही परिपूर्ण किये जाते हैं; अतः धन ही जीवन का माध्यम है, धन के अभाव में दीनता और गौरव हीनता का अनुभव करना पड़ता है। इसीलिये कहा जाता है कि बंधु-बाधवों में और समाज में धन-हीन जीवन जीवन नहीं है, परन्तु मृत-अवस्था है।

"विद्याहीनं गुरुम् त्यजेत् ।" १०७

भावार्थ—गुरु ज्ञान की प्राप्ति के लिये ही किये जाते हैं, और जब गुरु स्वयं ही ज्ञान हीन हो तो ऐसे गुरु का परित्याग ही कर देना चाहिये।

"अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ।" १०८

(मनुस्मृति)

भावार्थः—आत्म-विकास की साधना अवस्था में यदि किसी आवश्यक पदार्थ की प्राप्ति न हो तो उस समय में ग्लानि अथवा खेद कदापि अनुभव नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार से यदि आवश्यक पदार्थ मिल जाँय तो हर्ष भी प्रकट नहीं करना चाहिये।

"अतुच्छत्वेन तुच्छोऽपि वाच्यः परगुणः पुनः।" १०९

(विवेक विलास)

भावार्थः—हृदय की विशालता इसी में है कि दूसरों में रहे हुए अति सामान्य मात्रा वाले गुण को भी महान् गुण के रूप में कहना।

"यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत्।" ११०

(गरुड़-पुराण)

भावार्थः—जब तक इन्द्रियों में विकलता नहीं आई है, तब तक आत्म-विकास रूप हित-साधना का अभ्यास कर लो।

"वरम् देहत्यागो न पुनरधमागारमटनम्" १११

भावार्थः—प्राणों का परित्याग कर देना अधिक अच्छा है, परन्तु नीच-पुरुषों के घरों पर जाना अच्छा नहीं है।

"अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि।" ११२

भावार्थः—जो जन्म-ग्रहण नहीं किया करता है, उसको किसी भी प्रकार के संकट अपने वश में नहीं किया करते हैं, अतएव ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे जन्म-ग्रहण करना ही नहीं पडे। अर्थात् मोक्ष-साधना की ओर ही प्रयत्न करते रहना चाहिये।

"नैकेनापि समम् गता वसुमती मुंज! त्वया यास्यति।" ११३

भावार्थः—राजा भोज ने अपने बाल्य-काल में अपने चाचा मुंज के प्रति राज्य-लोभ पर कहा था किः—"हे मुंज! इस वसुन्धरा

पर आज दिन तक कई एक सम्राट्, चक्रवर्ती और राजा हो गये हैं; परन्तु किसी के भी साथ यह पृथ्वी नहीं गई है, परन्तु तू इस पृथ्वी के लिये आज बालहत्या करने के लिये तैयार हो गया है, तो मालूम होता है कि यह पृथ्वी अब तुम्हारे साथ आने वाली है।"

"अन्तः सारविहीनानामुपदेशो न विद्यते।" ११४

भावार्थः—जो हृदयहीन हैं, उनके लिये उपदेश व्यर्थ हैं। क्यों कि उपदेश का असर हृदय के अभाव में किस पर पडेगा?

"यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयं।" ११५

भावार्थः—जो बात कितनी भी शुद्धता युक्त हो, किन्तु लोक-परम्परा के विरुद्ध जाती हो, तो ऐसी स्थिति में उसको न तो शब्दों द्वारा प्रकट ही करना चाहिये और नही उसका आचरण ही किया जाना चाहिये।

"यदात्मनि इच्छेत् तत् परस्यापि चिन्तयेत्।" ११६

भावार्थः—जिन सुख-सुविधाओं को और अनुकूल साधनों को अपने लिये चाहते हो, वैसी ही सुख-सुविधाएँ और सुन्दर साधन अन्य के लिये भी हों, ऐसी ही भावना रक्खो।

"न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।" ११७

(महाभारत अनुशासन पर्व)

भावार्थः—जो स्थिति अपने आप के लिये प्रतिकूल मालूम होती है, वैसी स्थिति अन्य के लिये उपस्थित मत होने दो।

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत् ।" ११८

भावार्थः—जिन्हें हम अपने आपके लिये प्रतिकूल समझते हैं, तो यह हमारा कर्त्तव्य है कि वैसी प्रतिकूलताएँ हम अन्य प्राणियों के लिये उपस्थित नहीं करें।

"यथैवात्मा परस्तद्वद् दृष्टव्यः सुखमिच्छता ।" ११९

(दक्षस्मृति)

भावार्थः—जिसको वास्तव में आत्मिक सुख की आकांक्षा है तो प्राणी मात्र की आत्मा को अपनी आत्मा के समान ही समझना पड़ेगा। अर्थात् प्राणी मात्र को अभयदान देना पड़ेगा।

'स्मृत्वा पंचनमस्क्रियाम् कुरु करक्रोडस्थमिष्टम् सुखम् ।'१२०

(सिन्दूर प्रकरण)

भावार्थः—सदैव लगातार रूप से परम पवित्र, परम मंगलकारी, और प्रातः, स्मरणीय, परम पूज्य पंच परमेष्ठी रूप णमोक्कार मंत्र का जाप करते रहो, और परिणाम स्वरूप इष्ट सुखों को अपनी हथेली में प्राप्त हुए ही समझो।

"ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता ।" १२१

(भर्तृहरि)

भावार्थः—धन-संपत्ति और वैभव की शोभा सज्जनता पूर्ण व्यवहार पर ही निर्भर है।

"पूर्णोऽपि कुम्भो न करोति शब्दम् ।" १२२

(उद्भट सागर)

भावार्थः—जल से परिपूर्ण घड़ा शब्द नहीं किया करता है, वैसे ही सज्जन पुरुष भी अहंकार नहीं प्रदर्शित किया करते हैं।

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।" १२३

(हितोपदेश)

भावार्थः—"यह तो मेरा है और यह दूसरों का है" ऐसी तुच्छ गणना क्षुद्र हृदय वाले ओछे-हल्के-पुरुष किया करते हैं।

"गुणैरुत्तुंगताम् याति नोच्चैरासनसंस्थितैः ।" १२४

भावार्थः—व्यक्ति उच्च गुणों को धारण करने पर ही महान् गिना जाता है, न कि उच्च आसन पर बैठ जाने से महान् गिना जा सकता है।

"छेत्तुः पार्श्वगताम् छायां नोपसंहरते तरुः ।" १२५

भावार्थः—वृक्ष के हृदय की विशालता का अनुभव करो कि वृक्ष को काटने के लिये आने वाले पुरुष को शीतलता एवं शांति का अनुभव कराने वाली अपनी छाया को-जो कि उसके पास गई हुई हो-उसको-वह वृक्ष खींच करके समेटता नहीं है। यही वृत्ति सज्जन पुरुष की भी समझो।

"प्रीणाति नो नैव दुनोति चान्यान् सदोदासपरो हि योगी ।"

(हृदय-प्रदीप)

भावार्थः—उस महापुरुष को ही योगी कहना चाहिये, जो कि अन्य किसी भी प्राणी को न तो राग भावना से प्रसन्न करता है और न द्वेष-भावना से अप्रसन्न ही करता हैं, और जो सदा ही तटस्थ भावना से-समभावना से-उदासीन रहता है।

"गुणैरेव महत्त्वं स्यान्नांगेन वयसाऽपि वा।" १२७

(श्राद्ध प्रतिक्रमण)

भावार्थः—महत्त्व का पद और सम्माननीय स्थिति केवल गुणों द्वारा ही प्राप्त हुआ करती है। शरीर की स्थूलाकृति और जीवन आयु इस संबंध में कोई सहायता नहीं पहुँचाया करते हैं।

"रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम्।" १२८

भावार्थः—रत्नों की खान में ही रत्न की शोभा है, इसी तरह से सज्जन की शोभा भी विद्वानों की संगति करने में ही रही हुई है।

"वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः।" १२९

भावार्थः—योग्यता का प्राथमिक प्रभाव वेश-भूषा के ऊपर निर्भर होता है।

"निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्।" १३०

भावार्थः—प्रायः सार-हीन वस्तु का आडम्बर ही अधिक हुआ करता है।

"कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते।" १३१

भावार्थः—*क्रिया की अपेक्षा से ज्ञान अधिक विशेषता वाला होता है।*

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।" १३२

भावार्थः—*सम्यक् ज्ञान के अभाव में मुक्ति नही प्राप्त हो सकती है।*

"तदैव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।" १३३

(शार्ङ्गधर संहिता)

भावार्थः—*उसे ही ठीक औषध कहना चाहिये, जो कि सुन्दर स्वास्थ्य का निर्माण कर सके।*

"जनो दृष्टो यो वै जनयति सुखम् सोऽपि हि चलः।" १३४

(नलचंपू नाटक)

भावार्थः—*पुरुष कितना भी दर्शनीय और सौन्दर्य युक्त हो, तो भी वह अवश्यमेव मृत्यु-शील है। तात्पर्य यह है कि कोई भी इस विश्व में अजर-अमर नहीं है।*

"कृतं मयाऽरण्यविलापतुल्यं।" १३५

भावार्थः—*सत् कार्यों के अभाव में मेरा कथन केवल जंगल में निरर्थक रुदन करने के समान ही है।*

"को नामैष पिता न शिक्षयति यः पुत्रं हितार्थी भवन्।"

(धर्मकल्पद्रुम)

भावार्थः—उस महापुरुष को ही योगी कहना चाहिये, जो कि अन्य किसी भी प्राणी को न तो राग भावना से प्रसन्न करता है और न द्वेष-भावना से अप्रसन्न ही करता है, और जो सदा ही तटस्थ भावना से-समभावना से-उदासीन रहता है।

"गुणैरेव महत्त्वं स्यान्नांगेन वयसाऽपि वा।" १२७

(श्राद्ध प्रतिक्रमण)

भावार्थः—महत्त्व का पद और सम्माननीय स्थिति केवल गुणों द्वारा ही प्राप्त हुआ करती है। शरीर की स्थूलाकृति और जीवन आयु इस संबंध में कोई सहायता नहीं पहुँचाया करते हैं।

"रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम्।" १२८

भावार्थः—रत्नों की खान में ही रत्न की शोभा है, इसी तरह से सज्जन की शोभा भी विद्वानों की संगति करने में ही रही हुई है।

"वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः।" १२९

भावार्थः—योग्यता का प्राथमिक प्रभाव वेश-भूषा के ऊपर निर्भर होता है।

"निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्।" १३०

भावार्थः—प्रायः सार-हीन वस्तु का आडम्बर ही अधिक हुआ करता है।

"कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते।" १३१

भावार्थः—*क्रिया की अपेक्षा से ज्ञान अधिक विशेषता वाला होता है।*

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।" १३२

भावार्थः—*सम्यक् ज्ञान के अभाव में मुक्ति नही प्राप्त हो सकती है।*

"तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।" १३३

(शार्ङ्गधर संहिता)

भावार्थः—*उसे ही ठीक औषध कहना चाहिये, जो कि सुन्दर स्वास्थ्य का निर्माण कर सके।*

"जनो दृष्टो यो वै जनयति सुखम् सोऽपि हि चलः।" १३४

(नलचंपू नाटक)

भावार्थः—*पुरुष कितना भी दर्शनीय और सौन्दर्य युक्त हो, तो भी वह अवश्यमेव मृत्यु-शील है। तात्पर्य यह है कि कोई भी इस विश्व में अजर-अमर नहीं है।*

"कृतं मयाऽरण्यविलापतुल्यं।"-१३५

भावार्थः—*सत् कार्यों के अभाव में मेरा कथन केवल जंगल में निरर्थक रुदन करने के समान ही है।*

"को नामैष पिता न शिक्षयति यः पुत्रं हितार्थी भवन्।"

(धर्मकल्पद्रुम)

भावार्थः—जो पिता हितैषी भावना रखता हुआ भी अप पुत्र को यदि सुशिक्षित नहीं करता है, तो उसे "पिता" शब्द कैसे संबोधित किया जाय ?

"संजीवनीति वरमौषधमेकमेव व्यर्थश्रमप्रजननो न तु मूलभार

(हृदय-प्रदीप

भावार्थः—जीवन ज्योति जगाने वाली संजीवनी ही एक श्रेष्ठ औषध है, व्यर्थ श्रम पैदा करने वाला बड़ा भारी वनस्पतियों क बोझा किसी काम का नहीं।

"काष्टभारसहस्रेषु ह्येकं संजीवनं परम् ।" १३८

(गरूड़-पुराण

भावार्थः—लकड़ी के हजारों मन भार की अपेक्षा से त केवल एक संजीवनी का होना ही अधिक श्रेयस्कर है, तात्पर्य यह है कि विशाल ज्ञान की अपेक्षा से वह ज्ञान-अंश अधिक श्रेयस्कर है, जो कि सन्मार्ग की ओर प्रेरणा देता हो।

"महत्सेवाद्वारमाहुर्विमुक्तेः ।" १३९

भावार्थः—महा पुरुषों की सेवा करना मोक्ष का द्वार है।

"कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्र ... १४०

भावार्थः—भगवान् कृष्ण का कीर्त्तन-
प्रकार के बंधनों से मुक्त होता हुआ श्रेष्ठ ग

"सेवितव्यो महावृक्षः

भावार्थः—*विशाल वृक्ष की ही सेवा करनी चाहिए, क्योंकि यदि फल नहीं प्राप्त होंगे, तो भी छाया तो प्राप्त होगी ही। यही बात सत्संगति के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।*

"सततसुकृती भूयाद् भूयः प्रसादितमंडलः।" १४२

भावार्थः—*निरंतर की जाने वाली सत्प्रवृत्ति अति आनन्द का स्थान हुआ करती है।*

"यानि अनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि।" १४३

भावार्थः—*जो काम निर्दोष और सात्विक हैं उन्हीं में हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिये।*

"यानि अस्माकं सुचरितानि तान्येव त्वया उपास्यानि।"

भावार्थः—*जिन प्रवृत्तियों से हमारे सच्चरित्र का निर्माण होता हो, उन्हीं प्रवृत्तियों में हमें संलग्न रहना चाहिये।*

"यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।" १४५

(भगवद् गीता)

भावार्थः—*उत्तम पुरुष जिन-जिन प्रवृत्तियों में भाग लिया करते हैं, जन-साधारण भी उन्हीं में अपनी रुचि और प्रवृत्ति प्रदर्शित किया करता है।*

"पूज्यं वाक्यं ज्ञान-चारित्रसमृद्धस्य।" १४५

भावार्थः—*ज्ञान से समृद्ध और चारित्र से समृद्ध पुरुष के*

वाक्य ही सदा पूजनीय और आदरणीय तथा आचरणीय हुआ करते हैं।

"विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् ।" १४६

भावार्थः—विद्या अर्जन करने में और साहित्य रचना में कितना महान् परिश्रम करना पड़ता है, यह बात केवल विद्वान् ही जान सकता है, न कि मूर्ख मनुष्य जान सकता है।

"गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः ।"१४६

भावार्थः—केवल गुणी पुरुष ही गुण के महत्त्व को समझ सकता है, न कि गुणहीन पुरुष।

"बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बलः ।" १४७

भावार्थः—शक्तिशाली ही शक्ति का महत्त्व जानता है, न कि शक्तिहीन शक्ति के स्वरूप को समझ सकता है।

"सहवासी एव जानाति सहवासिविचेष्टितम् ।" १४८

भावार्थः—सहवासी के गुण-धर्म को केवल सहवासी ही जान सकता है।

"वेषं न विश्वसेत् प्राज्ञः ।" १४९

भावार्थः—बुद्धिमान् केवल बाह्य वेश-भूषा से ही किसी पर विश्वास नहीं करे, किन्तु गुण-अवगुण के आधार पर ही उसकी स्थिति का निर्णय करे।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम् स तं सदा निंदति नात्र चित्रम्।'

भावार्थः—जो जिसके गुण को नहीं जानता है, वह निरंतर उसकी निंदा ही किया करता है। इसमें आश्चर्य करने जैसी कोई बात नहीं है।

"नीरक्षीरपरीक्षायाम् हंसो हंसो बको बकः।" १५१

भावार्थः—दूध-पानी की परीक्षा करने के समय में ही सफेद सफेद दिखाई पड़ने वाले हंस की और बगुले की परीक्षा हुआ करती है। इसी तरह से गुण-दोष मय प्रवृति करने पर ही सज्जन और दुर्जन की भी परीक्षा हुआ करती है।

"विपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम्।" १५२

(व्यासदेव)

भावार्थः—विपत्ति रूप कसौटी द्वारा ही मनुष्य सार अथवा असार रूप तत्त्व के स्वरूप को समझ सकता है।

"मालतीमल्लिकामोदं घ्राणं वेत्ति न लोचनम् " १५३

भावार्थः—मालतीपुष्प की सुगंध के आनंद को केवल नाक ही जान सकता है, न कि आँख। इसी प्रकार से श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के स्वरूप को केवल सज्जन ही जान सकता है, न कि दुर्जन।

"कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः।" १५४

भावार्थः—कृतघ्न और लोभी उपकार के महत्त्व को समझने में सर्वथा ही असमर्थ होते हैं।

"गजानाम् पंकमग्नानाम् गजा एव धुरन्धराः ।" १५५

भावार्थः—कीचड़ में फसे हुए हाथियों का उद्धार करने में केवल हाथी ही समर्थ हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि महान् कार्य को केवल महान् पुरुष ही कर सकते हैं।

"जानन्ति पशवो गन्धात् " १५६

भावार्थः—पशु गंध द्वारा इष्ट पदार्थ की खोज कर लिया करते हैं। वसे ही ज्ञानी भी ज्ञान द्वारा वस्तु-स्वरूप को समझ लिया करते हैं।

"यथा किराती करिकुम्भजाताम् मुक्ताम्
परित्यज्य बिभर्ति गुंजाम् ।" १५७
(भर्तृहरि)

भावार्थः—जो जिसके गुण को जानता है, वही उसको अपनाया करता है। भीलनी गज-मोती के स्वरूप को नहीं जानती है, इसीलिये वह मोतियों को छोड़ कर केवल चिरमियों को ही सगृहीत किया करती है।

"बालः पश्यति बाह्यरूपम् ।" १५८

भावार्थः—मूर्ख केवल वेष भूषा पर ही विश्वास किया करता है, जब कि विवेकी प्रवृत्ति के अनुसार गुण-दोषों का निर्णय किया करता है।

"काव्यालंकरणज्ञमेत्य कविताकान्ता वृणीते स्वयम् ।" १५९

भावार्थः—काव्य और अलंकार के जानने वाले कवि को कविता रूप रमणी स्वयं ही अपना लिया करती है। अर्थात् गुण के महत्त्व को समझने वाले में गुण अपने आप ही उत्पन्न हो जाया करते हैं।

"चतुर्विधाशनत्याग उपवासो मतो जिनैः।" १६०

(सुभाषित रत्न सदोह)

भावार्थः—तीर्थंकरों ने चारों प्रकार के आहार का मन, वचन और काया द्वारा परित्याग करने को ही "उपवास" कहा है।

"उपवासः स विज्ञेयः सर्व-भोगविवर्जितः।" १६१

(मार्गशीर्ष एकादशी)

भावार्थः—सभी इन्द्रियों के सभी भोगों का परित्याग करना ही "उपवास" नामक व्रत है।

"पोषं धर्मस्य धत्ते यत् तद् भवेत् पोषधव्रतम्।" १६२

(उपदेश प्रासाद)

भावार्थः—जो धर्म-भावना को परिपुष्ट करे, उल्लासमय बनावे, उस सत्-प्रवृत्ति को ही पौषध व्रत कहते हैं।

"उत्पथप्रतिपन्नस्य दंडो भवति शासनम्।" १६३

(पच तंत्र)

भावार्थः—विपरीत और कुत्सित मार्ग पर चलने वाले के लिये दंड देना ही उपयुक्त शासन है।

"यावदर्धोदयस्तावत् प्रातः संध्याऽभिधीयते ।" १६४

(विवेक विलास)

भावार्थः—जब सूर्य आधा उदय हुआ हो, उसी का नाम "प्रातः काल" है और जब आधा अस्त हो गया हो, तभी संध्या-काल कहलाता है ।

"नित्यानित्यम् जगत् सर्वम् ।" १६५

(विवेक विलास)

भावार्थः—संपूर्ण जगत् नित्यानित्य स्वरूप है । द्रव्य-दृष्टि से नित्य हैं और पर्याय-दृष्टि से अनित्य हैं ।

"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् सत् ।" १६६

(आचार्य उमास्वाति)

भावार्थः—जिसमें उत्पत्तिशीलता, व्ययशीलता और ध्रौव्य-शीलता पाई जाय, वही सत् कहलाता है ।

"अनंतधर्मकम् वस्तु ।" १६७

(षड्-दर्शन समुच्चय)

भावार्थः—प्रत्येक वस्तु में अनंत गुण-धर्म पाये जाते हैं ।

"परमाणुषु वर्तन्ते विशेषा नित्यवृत्तयः ।" १६८

(विवेक विलास)

भावार्थः—परमाणुओं में विशेष धर्म भी नित्य रूप से पाये जाते हैं ।

"युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः । १६९

भावार्थः—जिसके वचन युक्ति-युक्त, तर्क सिद्ध और प्रमाण-युक्त हैं, वे ही ग्रहण करने के योग्य हैं।

"एकेन विज्ञातेन सर्वविज्ञातम् भवति।" १७०

भावार्थः—यदि किसी भी एक वस्तु का ज्ञान सम्यक् रीति से हो जाता है, तो शेष वस्तुओं का भी ज्ञान सरल रीति से हो जाया करता है।

"विचाराचारयोर्योगः सदाचारः स उच्यते।" १७१

भावार्थः—आचार और विचार दोनों का सम्मिलित नाम ही और सम्मिलित प्रवृत्ति ही सदाचार है।

"सकृदुक्तग्राही दक्षः प्रतिहारः प्रशस्यते।" १७२

(धर्मकल्पद्रुम)

भावार्थः—एक बार कहने पर ही उसे समझ लेने वाला चतुर द्वार-पाल कहा जाता है; और यही प्रशंसा का पात्र भी होता है।

"निग्रहो बाह्यवृत्तीनाम् दम इत्यभिधीयते।" १७३

(अपरोक्षानुभूति)

भावार्थः—विषयों में प्रवृत्त इन्द्रियों का रोकना ही दम-धर्म कहलाता है।

"विषयेभ्यः परावृत्तिः परमोपरतिर्हि सा ।" १७४

(अपरोक्षानुभूति)

भावार्थ.—*विषयों संबंधी भोगासक्ति से आत्यन्तिक रूप से निवृत्त हो जाना ही उत्कृष्ट उपरति है ।*

सहनं सर्वदुःखानाम् तितिक्षा सा शुभा मता ।" १७५

(अपरोक्षानुभूति)

भावार्थः—*अनासक्ति भावना के साथ और निष्काम निर्जरा के साथ सभी प्रकार के दुःखों को सहन करना ही श्रेष्ठ 'तितिक्षा' है ।*

"स चैव भेषजो श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ।" १७६

(शार्ङ्गधर संहिता)

भावार्थः—*जो रोगों से सर्वथा छुटकारा प्रदान कर दे, वही सर्व श्रेष्ठ औषध है ।*

'तत् कार्मुकम् कर्मसु यस्य शक्तिः ।" १७७

भावार्थः—*जिसकी शक्ति कर्म में योग्य है, वही सच्चा धनुष्य (मनुष्य) कहलाता है ।*

"सर्वेषामाश्रवाणाम् तु निरोधः संवरः स्मृतः ।" १७८

(योगशास्त्र)

भावार्थः—*सभी प्रकार के आश्रवों के द्वारों को रोक देना ही संवर धर्म है ।*

"उपयोगं धनं पात्रे यस्य याति स पण्डितः।" १७९

(तत्त्वामृत)

भावार्थः—*जिसका ज्ञान रूप धन सत्-पात्र में व्यय होता है, वही पंडित है।*

शिवस्य दर्शने तर्कौ उभौ न्यायविशेषकौ।" १८०

(विवेक विलास)

भावार्थः—*शैव-शास्त्र में दो प्रकार का तर्क शास्त्र है, एक नैयायिक और दूसरा वैशेषिक।*

"भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?" १८१

भावार्थः—*जल कर नष्ट हो जाने वाले इस शरीर की प्राप्ति पुनः होना अति कठिन है, अत. समय रहते इसका सदुपयोग करलो।*

"नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।" १८२

(भगवत् गीता)

भावार्थः—*ईश्वर न तो किसी के पाप को ही निष्फल किया करता है और न किसी को पुण्य-शाली ही बनाया करता है। पाप-पुण्य का भागी केवल यह अपनी आत्मा ही हुआ करती है। ईश्वर सांसारिक प्राणियों के पाप-पुण्य के प्रति सर्वथा ही तटस्थ और उदासीन एवं निष्क्रिय ही रहता है।*

"नाहं कर्त्तेति भूतानाम् यः पश्यति स पश्यति।" १८३

भावार्थः—*जन्म-मरण एवं सुख दुःख स्वकृत कर्मों का ही*

फल है; मैं इन प्राणियों का कर्त्ता नहीं हूँ, जो ऐसा देखता है अथवा ऐसे विचार रखता है, वही वास्तव में सच्चा द्रष्टा है।

"न नश्यति तमो नाम कृतया दीपवार्तया।" १८४

भावार्थः—दीपक को नहीं जला कर केवल "दीपक-दीपक" शब्द का रटन करने मात्र से ही अंधकार दूर नहीं हुआ करता है, इसी तरह से ज्ञान तब तक कोई लाभ नहीं पहुंचाया करता है, जब तक कि उच्च चारित्र का पालन नहीं किया जाय।

"न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्दतः।" १८५

(विवेक चूड़ामणि)

भावार्थः—औषध का सेवन किये विना और केवल औषध—औषध शब्द का रटन करने मात्र से रोग दूर नहीं हुआ करता है, वैसे ही आचरण के अभाव में ज्ञान भी कोई लाभ नहीं पहुंचाया करता है।

"भुंक्ते न केवली, न स्त्री मोक्षः, प्राहु दिगम्बराः।" १८६

(विवेक-विलास)

भावार्थः—दिगम्बर जैन संप्रदाय की मान्यता है कि केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद केवली—किसी भी प्रकार का आहार नहीं किया करते हैं और स्त्री वेद में रही हुई आत्मा भी मोक्ष में नहीं जाया करती हैं।

"सुज्ञेषु किम् बहुना ?" १८७

भावार्थः—विवेक-शील और विद्वान् के लिये अधिक कहना

निरर्थक होता है, क्योंकि वे थोड़े में ही सब कुछ समझ लिया करते हैं।

"अलम् अतिविस्तरेण।" १८८

भावार्थः—विस्तार पूर्वक कहने की अपेक्षा चतुराई के साथ थोड़े में ही अपना मन्तव्य प्रस्तुत कर देना लाभदायक एवं अधिक गुणकारक हुआ करता है।

इति शुभम्--

भावार्थः—इस प्रकार (यह ग्रंथ रचना) आनन्द-कारक, प्रेरणा-प्रदायक और कल्याण रूप हो।